जून, 2014

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय   जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – संज्ञेय मामलों में इत्तिला – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट – यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है तो उसे रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक है और कोई प्रारंभिक जांच अनुज्ञेय नहीं है किन्तु यदि इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता है और उससे जांच की आवश्यकता उपदर्शित होती है तो प्रारंभिक जांच केवल यह अभिनिश्चित करने के लिए की जा सकती है कि क्या संज्ञेय अपराध प्रकट होता है अथवा नहीं ।

ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** 331

संसद् के अधिनियम

पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, 1960 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (14) क्रमशः

पृष्ठ संख्या **295 – 458**   **[2014] 2 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

श्री प्रेम कुमार मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. विजय नारायण मणि, अधिवक्ता, (पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

प्रो. डा. वैभव गोयल,
लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उत्तराखण्ड)

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जून, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत **बनाम** जितेन्द्र कुमार सिंह	422
ललिता कुमारी **बनाम** उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य	331
विनोद कुमार एम. मालवीय और अन्य **बनाम** मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य	295
संसद् के अधिनियम	
पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, 1960 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (14)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 154 – संज्ञेय मामलों में इत्तिला – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट – यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है तो उसे रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक है और कोई प्रारंभिक जांच अनुज्ञेय नहीं है किन्तु यदि इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता है और उससे जांच की आवश्यकता उपदर्शित होती है तो प्रारंभिक जांच केवल यह अभिनिश्चित करने के लिए की जा सकती है कि क्या संज्ञेय अपराध प्रकट होता है अथवा नहीं ।

ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** 331

– धारा 154 [सपठित दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 166-क] – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट – दंड संहिता में धारा 166-क के पुरःस्थापन से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लेखबद्ध करने की अनिवार्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है ।

ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** 331

– धारा 154 – प्रथम इत्तिला – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है क्योंकि इस धारा में प्रयुक्त "शैल" शब्द पुलिस अधिकारी को प्रथम इत्तिला लेखबद्ध करने से पूर्व प्रारंभिक जांच करने का कोई विवेकाधिकार नहीं देता है और इसमें "इत्तिला" शब्द का किसी विशेषण के बिना प्रयोग करना यह द्योतित करता है कि पुलिस को वह इत्तिला लेखबद्ध करनी होगी भले ही उसकी युक्तियुक्तता या विश्वसनीयता के संबंध में उसका समाधान न हुआ हो ।

ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** 331

पृष्ठ संख्या

– धारा 154 – प्रथम इत्तिला – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच तभी अनुज्ञेय है यदि इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट नहीं होता है और प्रारंभिक जांच की परिधि, प्राप्त की गई इत्तिला की सत्यता या अन्यथा को सत्यापित करना नहीं है बल्कि केवल यह अभिनिश्चित करना है कि क्या इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट होता है ।

ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** 331

– धारा 154 – संज्ञेय मामलों में इत्तिला – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट – यदि प्रारंभिक जांच की परिणति शिकायत को बन्द करने में होती है तो ऐसी प्रविष्टि की एक प्रति इत्तिलाकर्ता को तत्काल उपलब्ध कराई जानी चाहिए और उसमें शिकायत को बन्द करने और आगे कार्यवाही न करने के कारण भी संक्षेप में दिए जाने चाहिएं ।

ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** 331

– धारा 154 [सपठित पुलिस अधिनियम, 1861 (1861 का 5) – धारा 44] – प्रथम इत्तिला का रजिस्ट्रीकृत किया जाना – चूंकि साधारण डायरी/थाना डायरी/दैनिक डायरी किसी पुलिस थाने में प्राप्त की जाने वाली समस्त इत्तिला का अभिलेख होता है इसलिए संज्ञेय अपराधों से संबंधित समस्त इत्तिला, चाहे उसके परिणामस्वरूप प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की जाती है या उसके परिणामस्वरूप कोई जांच की जानी है, उक्त डायरी में आज्ञापक रूप से और सूक्ष्म रूप से प्रतिबिंबित होनी चाहिए और प्रारंभिक जांच करने के विनिश्चय का भी उल्लेख अवश्य ही किया

पृष्ठ संख्या

जाना चाहिए ।

ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** 331

– धारा 154 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 21] – प्रारंभिक जांच किए बिना प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करना – चूंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के पश्चात् अन्वेषण करना विधि द्वारा स्थापित एक प्रक्रिया है इसलिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत करने से अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं होगा क्योंकि संहिता में ऐसे पर्याप्त रक्षोपायों का उपबंध है जो मिथ्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कराए जाने की दशा में किसी व्यक्ति की स्वाधीनता को संरक्षण प्रदान करते हैं ।

ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** 331

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49)

– धारा 3 और 4 – विशेष न्यायाधीश – अधिकारिता – धारा 3(1) में विनिर्दिष्ट अपराध किसी लोक सेवक या गैर-लोक सेवक द्वारा अकेले ही या संयुक्त रूप से कारित किया जा सकता है और ऐसे गैर-लोक सेवक के विरुद्ध कार्यवाही करने की अधिकारिता अधिनियम के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश को प्राप्त है तथा गैर-लोक सेवक का विचारण करने के लिए किसी लोक सेवक का संबद्ध होना आवश्यक नहीं है ।

राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत बनाम **जितेन्द्र कुमार सिंह** 422

– धारा 3 और 4 – विशेष न्यायाधीश द्वारा लोक

पृष्ठ संख्या

सेवक तथा गैर-लोक सेवक के विरुद्ध धारा 3 और भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किया जाना – आरोप विरचित होने के पश्चात् एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो जाना – अधिकारिता – आरोप विरचित हो जाने के पश्चात् विशेष न्यायाधीश की गैर-लोक सेवक का विचारण करने की अधिकारिता केवल इस तथ्य से निर्निहित नहीं हो जाएगी कि एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो गई है, क्योंकि लोक सेवक का संबद्ध होना आवश्यक नहीं है ।

राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत बनाम **जितेन्द्र कुमार सिंह** 422

– धारा 3 और 4(3) – विशेष न्यायाधीश – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों का विचारण करने की अधिकारिता – धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी अपराध का विचारण करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि अभियुक्त का साथ-ही-साथ धारा 3(1) में विनिर्दिष्ट अपराध के लिए भी विचारण किया जा रहा हो ।

राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत बनाम **जितेन्द्र कुमार सिंह** 422

– धारा 3 और 4(3) – लोक सेवक और गैर-लोक सेवकों के विरुद्ध अधिनियम और भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप पत्र फाइल किया जाना – विशेष न्यायाधीश द्वारा आरोप विरचित करने से पूर्व लोक सेवकों तथा कुछ गैर-लोक सेवक अभियुक्तों की मृत्यु हो जाना – चूंकि विशेष न्यायाधीश के लिए लोक सेवकों या गैर-लोक सेवकों के विरुद्ध धारा 3(1) के अधीन विनिर्दिष्ट किसी अपराध

पृष्ठ संख्या

का विचारण करने का ऐसा कोई अवसर था ताकि धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न अपराध का विचारण किया जा सके, इसलिए विशेष न्यायाधीश द्वारा अधिकारिता का तथ्य विद्यमान न होने के कारण गैर-लोक सेवक अभियुक्त के विरुद्ध अधिनियम से इतर अपराध का विचारण मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा किए जाने के लिए मामला प्रेषित करना उचित था ।

राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत बनाम **जितेन्द्र कुमार सिंह** 422

मुम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950

– धारा 18 [सपठित सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 13] – लोक न्यास – चर्चों का एकीकरण – फर्स्ट डिस्ट्रिक्ट चर्च आफ दि ब्रदर्न का चर्च आफ नार्थ इंडिया में एकीकरण के लिए विघटन – यदि कोई लोक न्यास धार्मिक स्वरूप का है तो वह सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन एक सोसाइटी भी हो सकता है इसलिए उसके विघटन की प्रक्रिया सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 में उपवर्णित अपेक्षाओं और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में अधिकथित प्रक्रिया के अनुरूप होनी चाहिए ।

विनोद कुमार एम. मालवीय और अन्य बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य** 295

– धारा 22 – पूर्त आयुक्त के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य की ग्राह्यता – चूंकि पूर्त आयुक्त से यह अपेक्षित नहीं है कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन प्रक्रिया का यथार्थ रूप में पालन करे इसलिए पूर्त आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया गया साक्ष्य तब तक ग्राह्य हो सकता है जब तक

पृष्ठ संख्या

कि वे साक्ष्य विधि के मूल सिद्धांतों के विरुद्ध न हों ।

विनोद कुमार एम. मालवीय और अन्य बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य** 295

– धारा 80 – सिविल न्यायालयों की अधिकारिता पर वर्जन – चूंकि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता है इसलिए कोई तृतीय पक्षकार अधिनियम के उपबंधों की जटिलताओं से बचने के लिए कोई वाद नहीं चला सकता है ।

विनोद कुमार एम. मालवीय और अन्य बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य** 295

सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21)

– धारा 5 – सोसाइटी की संपत्तियों के न्यासियों में निहित न होने का प्रभाव – यदि किसी सोसाइटी की संपत्ति उसके न्यासियों में निहित नहीं होती है तो वह तत्समय उस सोसाइटी के शासी निकाय में निहित रहेगी ।

विनोद कुमार एम. मालवीय और अन्य बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य** 295

– धारा 13 – सोसाइटी के विघटन और उसके कामकाज का समायोजन – निकाय का सृजन – विनियमनकारी कानून के उपबंधों का अनुपालन – किसी कानून द्वारा सृजित कोई निकाय आवश्यक रूप से विनियमनकारी कानून के उपबंधों के अनुरूप होना चाहिए ।

विनोद कुमार एम. मालवीय और अन्य बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य** 295

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – जून, 2014 [पृष्ठ संख्या 295 – 458]

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटोरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2014] 2 उम. नि. प.

अप्रैल-जून, 2014

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	सुन्दरगढ़ जिला आदिवासी एडवोकेट्स एसोसिएशन और अन्य **बनाम** उड़ीसा राज्य सरकार और अन्य (7 मई, 2013)	[2014] 2	1	2013	2108	(2013) 14	217
2.	सिस्टर मीना ललिता बरूआ **बनाम** उड़ीसा राज्य (5 दिसम्बर, 2013)		13	2014	782	–	–
3.	मदन और एक अन्य **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (6 दिसम्बर, 2013)		40		846	–	–
4.	डेफ एम्पलाइज़ वेल्फेयर एसोसिएशन और एक अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (12 दिसम्बर, 2013)		51		–	(2014) 3	173
5.	पेरूमल **बनाम** जानकी (20 जनवरी, 2014)		70		–	–	–

1	2	3		4		5	
6.	बिश्वनाथ भट्टाचार्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (21 जनवरी, 2014)	[2014] 2	86	2014	1003	(2014) 4	392
7.	मोंटफोर्ड ब्रदर्स आफ सेंट गेबरियल और एक अन्य **बनाम** यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस और एक अन्य आदि (28 जनवरी, 2014)		125		1550	3	394
8.	संजय कुमार **बनाम** बिहार राज्य और एक अन्य (28 जनवरी, 2014)		137		–	–	–
9.	भारत संचार निगम लिमिटेड **बनाम** भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और अन्य (6 दिसम्बर, 2013)		145			3	222
10.	वरिन्दर सिंह **बनाम** पंजाब राज्य और एक अन्य (16 जनवरी, 2014)		264		1817	3	151
11.	दीपक भंडारी **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड और अन्य (29 जनवरी, 2014)		275		961	–	–
12.	विनोद कुमार एम. मालवीय और अन्य **बनाम** मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य (30 सितम्बर, 2013)		295		–	–	–

1	2	3		4		5	
13.	ललिता कुमारी **बनाम** उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य (12 नवम्बर, 2013)	[2014] 2	331	2014	187	–	–
14.	राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत **बनाम** जितेन्द्र कुमार सिंह (5 फरवरी, 2014)		422		1169	–	–

[2014] 2 उम. नि. प. 295

विनोद कुमार एम. मालवीय और अन्य

बनाम

मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य

30 सितम्बर, 2013

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह निज्जर और न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष

मुम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950 – धारा 18 [सपठित सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 13] – लोक न्यास – चर्चों का एकीकरण – फर्स्ट डिस्ट्रिक्ट चर्च आफ दि ब्रदर्न का चर्च आफ नार्थ इंडिया में एकीकरण के लिए विघटन – यदि कोई लोक न्यास धार्मिक स्वरूप का है तो वह सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन एक सोसाइटी भी हो सकता है इसलिए उसके विघटन की प्रक्रिया सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 में उपवर्णित अपेक्षाओं और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में अधिकथित प्रक्रिया के अनुरूप होनी चाहिए ।

सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) – धारा 13 – सोसाइटी के विघटन और उसके कामकाज का समायोजन – निकाय का सृजन – विनियमनकारी कानून के उपबंधों का अनुपालन – किसी कानून द्वारा सृजित कोई निकाय आवश्यक रूप से विनियमनकारी कानून के उपबंधों के अनुरूप होना चाहिए ।

सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) – धारा 5 – सोसाइटी की संपत्तियों के न्यासियों में निहित न होने का प्रभाव – यदि किसी सोसाइटी की संपत्ति उसके न्यासियों में निहित नहीं होती है तो वह तत्समय उस सोसाइटी के शासी निकाय में निहित रहेगी ।

मुम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950 – धारा 22 – पूर्त आयुक्त के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य की ग्राह्यता – चूंकि पूर्त आयुक्त से यह अपेक्षित नहीं है कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन प्रक्रिया का यथार्थ रूप में पालन करे इसलिए पूर्त आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया गया साक्ष्य तब तक ग्राह्य हो सकता

है जब तक कि वे साक्ष्य विधि के मूल सिद्धांतों के विरुद्ध न हों ।

मुम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950 – धारा 80 – सिविल न्यायालयों की अधिकारिता पर वर्जन – चूंकि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता है इसलिए कोई तृतीय पक्षकार अधिनियम के उपबंधों की जटिलताओं से बचने के लिए कोई वाद नहीं चला सकता है ।

वर्तमान मामले के तथ्यों के संबंध में अधिक विवाद नहीं हैं और उसकी पृष्ठभूमि इस न्यायालय द्वारा चर्च ऑफ नार्थ इंडिया **बनाम** लावाजीभाई रतनजीभाई और अन्य, [(2005) 10 एस. सी. सी. 760] वाले मामले में न्यायनिर्णीत मामले के तथ्यों पर निर्भर करती है, अतः अन्तर्वलित पक्षकारों और संस्थाओं की विस्तृत पृष्ठभूमि का उल्लेख नहीं किया गया है और प्रश्नगत विवाद से संबंधित तथ्यों का ही वर्णन किया गया है । ऊपर उल्लिखित परिवर्तन रिपोर्टें फर्स्ट डिस्ट्रिक्ट चर्च ऑफ दि ब्रदर्न ('एफ. डी. सी. बी.') द्वारा फाइल की गई थीं, जोकि सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है, और बाद में मुम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950 के अधिनियमन के पश्चात् गुजरात में लोक न्यास के रूप में रजिस्ट्रीकृत हुई थी, जिसकी संपत्ति उसकी 'संपत्ति समिति' और चर्च ऑफ नार्थ इंडिया गुजरात डायोसीज़ में निहित है । चर्च ऑफ नार्थ इंडिया एक ऐसा लोक न्यास है जो 1971 से दिए गए रजिस्ट्रेशन द्वारा रजिस्ट्रीकृत है और न्यास का गठन तारीख 29 नवम्बर, 1970 को किया गया था । ये परिवर्तन रिपोर्टें छह चर्चों, जिनमें एफ. डी. सी. बी, यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका के 'ब्रदर्न चर्च' की प्रशाखा भी सम्मिलित थी (अन्य चर्च, उत्तरी भारत में दि कौंसिल ऑफ दि बेपटिस्ट चर्च, दि चर्च ऑफ इंडिया, पाकिस्तान, बर्मा और श्रीलंका, दि मेथोडिस्ट चर्च (ब्रिटिश एंड आस्ट्रेलियन कांफ्रेन्स), दि मेथोडिस्ट चर्च इन सदर्न एशिया और दि यूनाइटेड चर्च ऑफ नार्दर्न इंडिया) हैं, के 'दि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया' (जिसमें गुजरात अध्याय का प्रबंध चर्च ऑफ नार्थ इंडिया, गुजरात, डायोसीज़ द्वारा चलाया जाता है) एकल इकाई में एकीकरण को प्रभावी करने के लिए फाइल की गई थीं । यह एकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया का परिणाम है जो वर्ष 1929 से प्रारंभ हुई थी । वार्ता के लिए बैठकें वर्ष 1955 से प्रारंभ हुई थीं जिनमें एकीकृत किए जाने वाले चर्चों के प्रतिनिधि थे, जिन्होंने उद्भूत होने वाली इकाई के प्रत्येक पहलू पर बात-चीत की । इसका परिणाम 1965 में चर्च यूनियन की योजना थी, जिसे वार्ता समिति

द्वारा प्रकाशित और व्यापक रूप से परिचालित और एकीकृत होने वाले उन चर्चों द्वारा, जिन्होंने उसे अंगीकार किया था, विचार-विमर्शित एक मुद्रित पुस्तिका के रूप में चतुर्थ पुनरीक्षित संस्करण कहा जाता है । इस योजना का भाग-II एकीकरण के प्रक्रियात्मक विवरण से संबंधित है । यह योजना वर्ष 1955, 1956, 1957, 1961, 1964 और 1970 में बुलाई गई विभिन्न बैठकों के माध्यम से हुई वार्ताओं का परिणाम है । एफ. डी. सी. बी. की प्रबंध समिति ने जोकि "जिला समिति" थी, प्रारंभ में इन बैठकों में प्रेक्षक के रूप में भाग लिया, तथापि, वर्ष 1956 से यह वार्ता प्रक्रिया में सम्मिलित हो गई । यह अभिकथन किया गया है कि संकल्प सं. 70/08, 17 फरवरी, 1970 को पारित हुआ था, जिसके अनुसरण में छह चर्चों का विलयन करते हुए चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का गठन किया गया था । एफ. डी. सी. बी. ने, छह चर्चों में से एक चर्च होने के कारण, अपनी 21 सोसाइटियों के भीतर आंतरिक रूप से एकीकरण की चर्चा की थी और विभिन्न संगमों पर उस पर मतदान कराया था और अंतिम परिणाम के रूप में शासी निकाय के प्रतिनिधियों द्वारा 3/5 बहुमत से संकल्प पारित हुआ था । अभिकथित रूप से, 29 नवम्बर, 1970 को एफ. डी. सी. बी. का अन्य छह चर्चों में विलय हो गया जिससे चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का गठन हुआ और उसे अपने विधिक रूप में जारी रहने और उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार कर लिया और अपने अधिकार, हक, दावे और एफ. डी. सी. बी. के विशेषाधिकारों और बाध्यताओं सहित उसके हित चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में निहित कर दिए । वर्ष 1976 में चर्च ऑफ नार्थ इंडिया ट्रस्ट एसोसिएशन का भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत गठन हुआ था और उसे चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का न्यासी नियुक्त किया गया था । यह अभिकथन किया गया है कि एफ. डी. सी. बी. की वार्षिक बैठकें 1971 के पश्चात् बंद कर दी गई थीं । कतिपय सदस्यों ने, जिन्होंने संकल्प सं. 70/08 को अपनी सहमति दी थी, आक्षेप करने आरंभ कर दिए थे कि एफ. डी. सी. बी. की विद्यमानता जारी रहे । तत्पश्चात् मूल वादी (श्री ए. ओ. पटेल) ने इस घोषणा के लिए सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ खण्ड, भड़ौच के न्यायालय में वाद फाइल किया कि एफ. डी. सी. बी. का समापन हो गया है और यह कि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया उसका विधिक उत्तराधिकारी और निर्वाहक है । वाद के लम्बित रहने के दौरान चर्च ऑफ नार्थ इंडिया ने अपने आपको भूतलक्षी रूप से रजिस्ट्रीकृत करवा लिया और परिवर्तन रिपोर्ट सं. 44/81 और 665/81 पूर्त आयुक्त के समक्ष एकीकरण के परिणामस्वरूप परिवर्तनों को प्रभावी करने के लिए फाइल की गई थीं । ऊपर उल्लिखित वाद,

जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील करने के पश्चात् गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष पेश किया गया, जोकि खारिज कर दी गई थी और मामला इस न्यायालय के समक्ष आया । उस मामले में जो प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष उत्पन्न हुआ वह यह था कि क्या मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 80 सिविल न्यायालय की अधिकारिता पर वर्जन अधिरोपित करती है । तथापि, वर्तमान विवाद परिवर्तन रिपोर्ट सं. 44/81 और 665/81 के संबंध में पूर्त आयुक्त द्वारा किए गए न्यायनिर्णयन से उत्पन्न होने वाले आक्षेपों से उद्भूत हुआ है । वह कार्यवाही विनोद कुमार माथुरसेवा मालवीय और एक अन्य बनाम मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य (2006 की सिविल अपील सं. 1260, जिसका विनिश्चय 24 फरवरी, 2006 को किया गया) में इस न्यायालय के निदेश के पश्चात् प्रारंभ हुई । वह गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा एक नए न्यासी को नियुक्त करने वाले न्यास के आवेदन के संबंध में पारित आदेशों से उत्पन्न हुई थी । इस न्यायालय के समक्ष मामला चर्च ऑफ ब्रदर्न जनरल बोर्ड की स्कीम के खण्ड 9 के निर्वचन और लागू होने के संबंध में था । इस न्यायालय ने उन्हीं तथ्यों को लागू होने वाले इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय के प्रति निर्देश किया और उसके द्वारा संबंधित पूर्त आयुक्त को सभी लम्बित विवादों का न्यायनिर्णयन करने का निदेश दिया । पूर्त आयुक्त ने परिवर्तन रिपोर्ट सं. 44/81 और 665/81 से उद्भूत होने वाले विवादों का न्यायनिर्णयन किया । पूर्त आयुक्त ने एफ. डी. सी. बी. में निहित संपत्तियों को चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में निहित करने की मंजूरी देते हुए परिवर्तन रिपोर्टों के विरुद्ध उठाए गए आक्षेपों को खारिज कर दिया । पूर्त आयुक्त के ऊपर उल्लिखित आदेश के विरुद्ध परिवर्तन रिपोर्टों के आक्षेपकर्ताओं ने मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 72 के अधीन नगर सिविल न्यायालय, अहमदाबाद के समक्ष यह अभिकथित करते हुए सिविल प्रकीर्ण आवेदन फाइल किए कि न्यास का विधिपूर्ण विलयन नहीं हुआ था और संपत्ति समिति में निहित संपत्ति इसमें विद्यमान नहीं रही थी । सिविल न्यायालय न्यायाधीश का यह मत था कि एफ. डी. सी. बी. का विघटन नहीं हुआ है चूंकि उसका उचित सबूत नहीं था । इसके अलावा, चूंकि न्यास और समिति कानून द्वारा सृजित हैं इसलिए उनका विघटन तद्नुसार किया जाना चाहिए और विलयन का प्रश्न एक तथ्यात्मक प्रश्न है जिसमें विलय होने वाला न्यास तब तक विद्यमान बना रहता है जब तक कि उसे कानून के अधीन विनिर्दिष्ट रूप से विघटित नहीं कर दिया जाता है । इसके अलावा, मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 50-क का अनुसरण किए बिना, जोकि न्यास के विघटन के बारे में है, एफ.

डी. सी. बी. की संपत्ति चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में निहित नहीं की जा सकती हैं । इस प्रकार विद्वान् सिविल न्यायालय के न्यायाधीश ने पूर्त आयुक्त का आदेश अभिखंडित और अपास्त कर दिया । अपीलार्थियों ने गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम अपीलें फाइल कीं । एकल न्यायाधीश के समक्ष बुनियादी प्रश्न यह अवधारित करना था कि क्या चर्च ऑफ नार्थ इंडिया एफ. डी. सी. बी. का उत्तराधिकारी और विधिक निर्वाहक है अथवा नहीं । एकल न्यायाधीश ने उसका न्यायनिर्णयन करते हुए इस न्यायालय के उसी तथ्यात्मक आधार वाले पूर्ववर्ती विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया और पूर्ववर्ती निष्कर्षों के आधार पर अपीलों को खारिज कर दिया और सिविल न्यायालय के आदेश को पुष्ट कर दिया । उच्च न्यायालय के इस आदेश के कारण मामला इस न्यायालय में फाइल किया गया है । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – एकीकरण के विवाद्यक के संबंध में न्यायालय का यह मत है कि एकीकरण प्रक्रिया की विधिमान्यता के संबंध में प्रश्नों का उत्तर चर्च ऑफ नार्थ इंडिया बनाम लावाजीभाई रतनजीभाई वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों में दिया जा चुका है, जिसमें मामला मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 80 के अधीन सिविल न्यायालय की अधिकारिता के वर्जन के संबंध में था । इस न्यायालय ने मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 80 के अधीन प्राधिकारियों और सिविल न्यायालय की अधिकारिता को रेखांकित किया है और यह अंकित किया है कि किन परिस्थितियों में किस निकाय को अधिकारिता प्राप्त है । इस न्यायालय ने अपने निष्कर्ष पर पहुंचते हुए सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के उपबंधों और दोनों अधिनियमों के बीच संबंध के बारे में विस्तृत रूप से विचार किया और इस प्रकार अवधारित किया कि यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि संबंधित चर्चों का प्रबंध सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटियों द्वारा किया जा रहा था । किसी भी दशा में यह स्वीकार्य है कि सोसाइटियों के विघटन और उनके कार्यकलापों के समायोजन से संबंधित विवाद मूल सिविल अधिकारिता वाले मुख्य न्यायालयों को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए । प्रश्नगत विवाद भी सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 के उपबंधों के अनुरूप नहीं है । अधिनियम की धारा 20 में यह उपबंधित है कि उसमें प्रगणित सोसाइटियां ही उक्त अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत की जा सकती हैं । जब तक अधिनियम की धारा 13 के निबंधनानुसार कोई वाद फाइल नहीं किया

जाता है तब तक सोसाइटी का विघटन नहीं होता है । यह मान लेने पर भी कि सोसाइटी संगम ज्ञापन और संगम अनुच्छेदों के निबंधनानुसार विघटित हो जाती है तो इसका स्वयमेव यह अर्थ नहीं होगा कि संपत्तियां उक्त अधिनियम के उपबंधों के निबंधनानुसार सोसाइटी के सदस्यों के बीच समायोजित की जा सकती हैं । स्वीकार्यतः, न्यास की संपत्तियां धार्मिक न्यास की संपत्तियां होने के कारण ऐसे न्यास में निहित हो गई थीं । हमने इसमें इसके पूर्व यह पाया है कि ऐसा उपबंध मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में भी विद्यमान है । इस प्रकार, केवल इस कारण कि सोसाइटी का विघटन हो गया है, न्यास की संपत्तियों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वे स्वयमेव समायोजित हो गई थीं । अतः, अपीलार्थियों ने वादपत्र में यह प्रकथन किया है कि वाद का संबंध न्यास की संपत्ति और उनके प्रशासन से है । यदि चर्चों की संपत्तियां सोसाइटी की नहीं थीं तो इसमें के अपीलार्थी उनके उत्तराधिकारी के रूप में उनका दावा नहीं कर सकते हैं.......। (पैरा 11)

एकीकरण का किसी भी प्रकार का कोई विधिक आधार नहीं है । एफ. डी. सी. बी. सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत एक सोसाइटी है और इसकी संपत्ति मुम्बई लोक न्यास अधिनियम द्वारा विनियमित न्यास में निहित हैं । मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अनुसार एक लोक न्यास धार्मिक प्रकृति का होने के कारण सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन एक सोसाइटी भी हो सकता है । यह एक सुस्वीकृत सिद्धांत है कि कानून द्वारा सृजित निकाय को विनियमन करने वाले कानून के उपबंधों के अनुरूप होना चाहिए । वर्तमान मामले में एफ. डी. सी. बी. के विघटन के लिए प्रक्रिया सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 में उपवर्णित अपेक्षाओं और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में अधिकथित प्रक्रिया के अनुरूप नहीं है । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थियों का मामला उन संकल्पों और विचार-विमर्श पर आधारित है जिसे इसने विघटन और पश्चात्वर्ती एकीकरण के अपने दावे के समर्थन में अभिलेख पर प्रस्तुत किया है । तथापि, निचले न्यायालयों के निष्कर्ष के अनुसार ऐसा कोई संकल्प या ऐसे विचार-विमर्श के कार्यवृत्त कानूनों में अधिकथित प्रक्रिया का अनुपालन नहीं करते । निचले न्यायालय के अनुसार अभिलेख पर रखी गई समस्त सामग्री में केवल समामेलन की बात कही गई है और उसमें सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन यथापेक्षित एफ. डी. सी. बी. के विघटन के प्रति कोई निर्देश नहीं है । संकल्प सं. 70/08, जिस पर अपीलार्थियों का पक्षकथन आधारित है, क्या सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण

अधिनियम की अपेक्षाओं का अनुपालन करने अथवा न करने से एफ. डी. सी. बी. न्यास का विघटन नहीं होता है । इसलिए यह अनुचित होगा यदि एफ. डी. सी. बी., जोकि एक धार्मिक सोसाइटी है, निचले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर विघटित हो जाती है । इसलिए इस न्यायालय के ऊपर उल्लिखित निर्णय को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय और निचले न्यायालय द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित करना सही है । (पैरा 12)

सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 5 के अधीन एक यदि किसी सोसाइटी की संपत्ति न्यासियों में निहित नहीं है केवल तभी तत्समय ऐसी सोसाइटी के शासी निकाय में निहित होगी । एफ. डी. सी. बी. की संपत्ति ई-643/भड़ौच लोक न्यास में निहित है । एफ. डी. सी. बी. की आंतरिक बैठकों में पेश किए गए संकल्पों और किए गए विचार-विमर्श में केवल एफ. डी. सी. बी. का अन्य चर्चों में समामेलन किए जाने का उल्लेख है और उनसे सोसाइटी और रजिस्ट्रीकृत न्यास के विघटन का आशय संसूचित नहीं होता है और उससे ऐसा अर्थ नहीं लगाया जा सकता है । इन संकल्पों और विचार-विमर्शों के आधार पर अपीलार्थियों का यह दावा मान्य नहीं है कि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया, एफ. डी. सी. बी. की संपत्ति का, जोकि रजिस्ट्रीकृत न्यास में निहित थी, उत्तराधिकारी है । (पैरा 13)

अपीलार्थियों का यह दावा कि तात्पर्यित संकल्प के पश्चात् एफ. डी. सी. बी. का चर्च ऑफ नार्थ इंडिया के साथ एकीकरण होने के परिणामस्वरूप एफ. डी. सी. बी. का विघटन हो गया और चर्च ऑफ नार्थ इंडिया उसका विधिक उत्तराधिकारी और इसकी संपत्तियों का नियंत्रक बन गया, मान्य नहीं है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है । (पैरा 16)

मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के उपबंधों और उसकी स्कीम से किसी भी प्रकार से संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रहती है कि अधिनियम स्वतः एक पूर्ण संहिता है । इसमें न्यास में हितबद्ध किसी व्यक्ति के लिए पूर्त आयुक्त के समक्ष अपना दावा पेश करने के लिए पूर्ण व्यवस्था का उपबंध है, जोकि प्रश्न पर विचार करने के लिए सक्षम है और यदि वह किसी विनिश्चय से व्यथित है तो वह अपील फाइल कर सकता है । धारा 80 के अधीन सृजित अधिकारिता के वर्जन में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि अधिनियम के उपबंधों की कठोरता से बचने के लिए कोई पर-व्यक्ति वाद नहीं ला सकता है । तथापि, तब मामला भिन्न होगा यदि संपत्ति विधि की दृष्टि से न्यास की संपत्ति नहीं है । सिविल न्यायालय की अधिकारिता पर

वर्जन नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि इससे अधिकारिता का प्रश्न उद्भूत होता है । यदि कोई संपत्ति विधिमान्य रूप से किसी न्यास में निहित नहीं होती थी अथवा यदि कोई न्यास स्वयमेव विधि में मान्य नहीं है तो अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों के पास उक्त प्रश्न का अवधारण करने की कोई अधिकारिता नहीं होगी । (पैरा 22)

चूंकि पूर्त आयुक्त से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन प्रक्रिया का यथार्थ रूप में पालन करना अपेक्षित नहीं है इसलिए पूर्त आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया गया साक्ष्य तब तक ग्राह्य हो सकता है जब तक कि वे साक्ष्य विधि के मूल सिद्धांतों के विरुद्ध न हों । (पैरा 23)

सोसाइटी का यह कर्तव्य है कि वह उसके विघटन के लिए सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 के अनुसरण में कदम उठाए । जब तक न्यास में निहित संपत्तियां सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अनुसार निर्निहित नहीं की जाती, तब तक केवल परिवर्तन रिपोर्ट/रिपोर्टें फाइल करने मात्र से चर्च ऑफ नार्थ इंडिया चर्चों के विलयन का दावा नहीं कर सकता है और तद्द्वारा यह दावा नहीं कर सकता है कि न्यास में निहित संपत्तियां उनमें निहित हो जाएंगी । उठाए गए कदमों से केवल यह स्पष्ट होगा कि संकल्पों का पारित किया जाना और कुछ नहीं है बल्कि विलय करने का आशय दर्शित करने का सूचक है, इसके अलावा कुछ नहीं है । वास्तव में, नगर सिविल न्यायालय ने यह सही अभिनिर्धारित किया है, जिसकी उच्च न्यायालय ने अभिपुष्टि की है, कि सोसाइटी का कोई विघटन नहीं हुआ था और इसके अलावा विलयन विधि के उपबंधों के अनुसार नहीं किया गया था । इन परिस्थितियों में, चूंकि सोसाइटी और न्यास का सृजन कानून द्वारा हुआ था, इसलिए उनके समामेलन के लिए कानून द्वारा उपबंधित पद्धतियों का अवलंब लेना होगा और तथाकथित विलयन के बारे में यह नहीं माना जा सकता है कि इससे न्यास का विघटन हुआ है या वह न्यास के विघटन को प्रभावी नहीं कर सकता है । तथ्यों के आधार पर विधि के उपबंधों के अनुसार कोई कदम उठाए बिना विधि के अधिकार-क्षेत्र में संकल्पों और बात-चीत का प्रभाव स्वीकार्य नहीं है । विबंध का प्रश्न भी रुकावट नहीं बन सकता है क्योंकि उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह इंगित किया है कि संविधान के अधीन आस्था और धर्म के संबंध में गारंटीकृत स्वतंत्रता किसी भी समय नए सिरे से अवलोकन और विचार करने के पश्चात् आस्था और

धर्म में परिवर्तन करने के अधिकार को नहीं छीन सकती है और तद्द्वारा उसे विबंध के किसी भी नियम द्वारा आबद्ध नहीं किया जा सकता है । अतः, संकल्प द्वारा संयुक्त एकीकरण की सिफारिश को स्वीकार करने का संकल्प लिया गया है किन्तु यह विघटन के प्रति निर्देश नहीं करता है । इस मामले में तथ्यों और विधि का विश्लेषण करने के पश्चात् न्यायालय की यह राय है कि उच्च न्यायालय और नगर सिविल न्यायालय ने प्रश्नगत मामले का सही तौर पर न्यायनिर्णयन किया है और पूर्त आयुक्त द्वारा पारित आदेश को अपास्त करके सही किया है । (पैरा 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	(2006) 9 एस. सी. सी. 282 : **विनोद कुमार माथुरसेवा मालवीय और एक अन्य** बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य** ;	2, 3.6,7,14
[2005]	(2005) 10 एस. सी. सी. 760 : **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** बनाम **लावाजीभाई रतनजीभाई और अन्य** ;	3.1,3.5,3.6,7, 11,12,13,14,15,17,22,24
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 752 : **आर. वी. ई. वेंकटचला गौंडर** बनाम **अरुलमिगु विश्वेश्वरास्वामी एंड वी. पी. टैम्पल और एक अन्य** ;	23
[1968]	[1968] 2 उम. नि. प. 370 = [1968] 3 एस. सी. आर. 662 : **धूलाभाई और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	22
[1954]	ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 388 : **रतीलाल पन्नाचंद गांधी और अन्य** बनाम **मुम्बई राज्य और अन्य** ;	19,20
[1954]	ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 282 : **आयुक्त हिन्दू धार्मिक विन्यास, मद्रास** बनाम **श्री शिरूर मठ के श्री लक्ष्मेन्द्र तीर्थ स्वामीयार** ।	19,20

सिविल अपीली अधिकारिता : **2013 की सिविल अपील सं. 8800-8801.**

2009 की प्रथम अपील सं. 1535 और 1536 में गुजरात उच्च न्यायालय की अहमदाबाद न्यायपीठ के तारीख 23 अप्रैल, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री मिहिर जोशी, के. वी. विश्वनाथन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) मेघा जानी, (सुश्री) नेहा एस. वर्मा, मेहुल गुप्ता और दीप्ताकीर्ति वर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री आर. पी. भट्ट, ज्येष्ठ अधिवक्ता, शिव मंगल शर्मा, एम. आई. मर्चेंट, गौरव खन्ना, सीतेश नारायण सिंह, (श्रीमती) अभिनंदिनी शर्मा, (सुश्री) शर्मिला उपाध्याय, (सुश्री) हेमन्तिका वाही और (सुश्री) शुभदा देशपांडे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष ने दिया ।

न्या. घोष – इजाजत दी जाती है ।

2. ये अपीलें गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 23 अप्रैल, 2012 के एक ही निर्णय और आदेश (2009 की प्रथम अपील सं. 1535 और 1536 में) के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा नगर सिविल न्यायालय द्वारा पारित तारीख 3 फरवरी, 2009 के आदेश (2008 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 470 और 2008 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 630 में) को अभिपुष्ट किया गया था । नगर सिविल न्यायालय ने पूर्त आयुक्त द्वारा पारित तारीख 23 मई, 2008 के आदेश को अपास्त कर दिया था । पूर्त आयुक्त द्वारा उक्त अधिनिर्णय इस न्यायालय द्वारा **विनोद कुमार माथुरसेवा मालवीय और एक अन्य** बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य**[1] वाले मामले में [2005 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 24198 से उद्भूत 2006 की सिविल अपील सं. 1260, जिसका विनिश्चय तारीख 24 फरवरी, 2006 को किया गया था] एक पूर्ववर्ती अनुषंगी विवाद में पारित आदेश के अनुसरण में किया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने पूर्त आयुक्त को न्यास के विलयन और अन्य लंबित विवादों से संबधित सभी प्रश्नों का यथासंभव शीघ्र न्यायनिर्णयन करने का निदेश दिया था ।

[1] (2006) 9 एस. सी. सी. 282.

इस प्रकार पूर्त आयुक्त ने 1981 की परिवर्तन रिपोर्ट सं. 44 और 1981 की रिपोर्ट सं. 665 के विरुद्ध आक्षेपों के संबंध में न्यायनिर्णयन किया ।

3. मामले के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं :–

3.1 वर्तमान मामले के तथ्यों के संबंध में अधिक विवाद नहीं हैं और उसकी पृष्ठभूमि इस न्यायालय द्वारा **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** बनाम **लावाजीभाई रतनजीभाई और अन्य**[1] [2003 की सिविल अपील सं. 9419, जिसका विनिश्चय तारीख 3 मई, 2005 को किया गया] वाले मामले में न्यायनिर्णीत मामले के तथ्यों पर निर्भर करती है, अतः अन्तर्वलित पक्षकारों और संस्थाओं की विस्तृत पृष्ठभूमि का उल्लेख नहीं किया गया है और प्रश्नगत विवाद से संबंधित तथ्यों का ही वर्णन किया गया है ।

3.2 ऊपर उल्लिखित परिवर्तन रिपोर्टें फर्स्ट डिस्ट्रिक्ट चर्च ऑफ दि ब्रदर्न (जिसे इसमें इसके पश्चात् "एफ. डी. सी. बी." के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) द्वारा फाइल की गई थीं, जोकि सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है, जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. 1202/44 है और बाद में मुम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950 के अधिनियमन के पश्चात् गुजरात में रजिस्ट्रीकरण सं. ई-643/भड़ौच वाले लोक न्यास के रूप में रजिस्ट्रीकृत हुई थी, जिसकी संपत्ति उसकी "संपत्ति समिति" और चर्च ऑफ नार्थ इंडिया गुजरात डायोसीज़ में निहित है । चर्च ऑफ नार्थ इंडिया एक ऐसा लोक न्यास है जो तारीख 12 मई, 1970 को स्वीकृत आवेदन द्वारा 1971 से दिए गए रजिस्ट्रेशन द्वारा रजिस्ट्रीकृत है और न्यास का गठन तारीख 29 नवम्बर, 1970 को रजिस्ट्रीकरण सं. डी-17/अहमदाबाद द्वारा किया गया था ।

3.3 ये परिवर्तन रिपोर्टें छह चर्चों, जिनमें एफ. डी. सी. बी., यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका के "ब्रदर्न चर्च" की प्रशाखा भी सम्मिलित थी (अन्य चर्च, उत्तरी भारत में दि कौंसिल ऑफ दि बेपटिस्ट चर्च, दि चर्च ऑफ इंडिया, पाकिस्तान, बर्मा और श्रीलंका, दि मेथोडिस्ट चर्च (ब्रिटिश एंड आस्ट्रेलियन कांफ्रेन्स), दि मेथोडिस्ट चर्च इन सदर्न एशिया और दि यूनाइटेड चर्च ऑफ नार्दर्न इंडिया) हैं, के "दि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया" (जिसमें गुजरात अध्याय का प्रबंध चर्च ऑफ नार्थ इंडिया, गुजरात, डायोसीज़ द्वारा चलाया जाता है) एकल इकाई में एकीकरण को प्रभावी करने के लिए फाइल की गई थीं ।

---

[1] (2005) 10 एस. सी. सी. 760.

3.4 यह एकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया का परिणाम है जो वर्ष 1929 से प्रारंभ हुई थीं । वार्ता के लिए बैठकें वर्ष 1955 से प्रारंभ हुई थीं जिनमें एकीकृत किए जाने वाले चर्चों के प्रतिनिधि थे, जिन्होंने उद्भूत होने वाली इकाई के प्रत्येक पहलू पर बात-चीत की । इसका परिणाम 1965 में चर्च यूनियन की योजना थी, जिसे वार्ता समिति द्वारा प्रकाशित और व्यापक रूप से परिचालित और एकीकृत होने वाले उन चर्चों द्वारा, जिन्होंने उसे अंगीकार किया था, विचार-विमर्शित एक मुद्रित पुस्तिका के रूप में चतुर्थ पुनरीक्षित संस्करण कहा जाता है । इस योजना में उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का पता लगाया गया जिसके परिणामस्वरूप चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का सृजन हुआ था और उसके सभी पहलुओं पर विचार किया । उसका भाग-II एकीकरण के प्रक्रियात्मक विवरण से संबंधित है । यह योजना वर्ष 1955, 1956, 1957, 1961, 1964 और 1970 में बुलाई गई विभिन्न बैठकों के माध्यम से हुई वार्ताओं का परिणाम है । एफ. डी. सी. बी. की प्रबंध समिति ने जोकि "जिला समिति" थी, प्रारंभ में इन बैठकों में प्रेक्षक के रूप में भाग लिया, तथापि, वर्ष 1956 से यह वार्ता प्रक्रिया में सम्मिलित हो गई । यह अभिकथन किया गया है कि संकल्प सं. 70/08, 17 फरवरी, 1970 को पारित हुआ था, जिसके अनुसरण में छह चर्चों का विलयन करते हुए चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का गठन किया गया था । एफ. डी. सी. बी. ने, छह चर्चों में से एक चर्च होने के कारण, अपनी 21 सोसाइटियों के भीतर आंतरिक रूप से एकीकरण की चर्चा की थी और विभिन्न संगमों पर उस पर मतदान कराया था और अंतिम परिणाम के रूप में शासी निकाय के प्रतिनिधियों द्वारा 3/5 बहुमत से संकल्प पारित हुआ था । अभिकथित रूप से, 29 नवम्बर, 1970 को एफ. डी. सी. बी. का अन्य छह चर्चों में विलय हो गया जिससे चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का गठन हुआ और उसे अपने विधिक रूप में जारी रहने और उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार कर लिया और अपने अधिकार, हक, दावे और एफ. डी. सी. बी. के विशेषाधिकारों और बाध्यताओं सहित उसके हित चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में निहित कर दिए ।

3.5 वर्ष 1976 में चर्च ऑफ नार्थ इंडिया ट्रस्ट एसोसिएशन का भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत गठन हुआ था और उसे चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का न्यासी नियुक्त किया गया था । यह अभिकथन किया गया है कि एफ. डी. सी. बी. की वार्षिक बैठकें 1971 के पश्चात् बंद कर दी गई थीं । कतिपय सदस्यों ने, जिन्होंने संकल्प सं. 70/08 को अपनी सहमति दी थी, आक्षेप करने आरंभ कर दिए थे कि एफ. डी. सी.

बी. की विद्यमानता जारी रहे । तत्पश्चात् मूल वादी (श्री ए. ओ. पटेल) ने इस घोषणा के लिए सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ खण्ड, भड़ौच के न्यायालय में 1979 का सिविल वाद सं. 72 फाइल किया कि एफ. डी. सी. बी. का समापन हो गया है और यह कि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया उसका विधिक उत्तराधिकारी और निर्वाहक है । वाद के लम्बित रहने के दौरान चर्च ऑफ नार्थ इंडिया ने अपने आपको भूतलक्षी रूप से रजिस्ट्रीकृत करवा लिया और परिवर्तन रिपोर्ट सं. 44/81 और 665/81 पूर्त आयुक्त के समक्ष एकीकरण के परिणामस्वरूप परिवर्तनों को प्रभावी करने के लिए फाइल की गई थीं । ऊपर उल्लिखित वाद, जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील करने के पश्चात् 1986 की द्वितीय अपील सं. 303 के रूप में गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष पेश किया गया, जोकि खारिज कर दी गई थी और मामला इस न्यायालय के समक्ष **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** बनाम **लावाजीभाई रतनजीभाई और अन्य** (उपर्युक्त) (2003 की सिविल अपील सं. 9419, जिसका विनिश्चय 3 मई, 2005 को किया गया) के रूप में आया । उस मामले में जो प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष उत्पन्न हुआ वह यह था कि क्या मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 80 सिविल न्यायालय की अधिकारिता पर वर्जन अधिरोपित करती है ।

3.6 तथापि, वर्तमान विवाद परिवर्तन रिपोर्ट सं. 44/81 और 665/81 के संबंध में पूर्त आयुक्त द्वारा तारीख 23 मई, 2008 को किए गए न्यायनिर्णयन से उत्पन्न होने वाले आक्षेपों से उद्भूत हुआ है । वह कार्यवाही **विनोद कुमार माथुरसेवा मालवीय और एक अन्य** बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य** (उपर्युक्त) (2006 की सिविल अपील सं. 1260, जिसका विनिश्चय 24 फरवरी, 2006 को किया गया) में इस न्यायालय के निदेश के पश्चात् प्रारंभ हुई । वह गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा एक नए न्यासी को नियुक्त करने वाले न्यास के आवेदन के संबंध में 2005 की प्रथम अपील सं. 988 में पारित तारीख 6 अक्तूबर, 2005 और 10 अक्तूबर, 2005 के आदेशों से उत्पन्न हुई थी । इस न्यायालय के समक्ष मामला चर्च ऑफ ब्रदर्न जनरल बोर्ड की स्कीम के खण्ड 9 के निर्वचन और लागू होने के संबंध में था । इस न्यायालय ने उन्हीं तथ्यों को लागू होने वाले इस न्यायालय के **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** बनाम **लावाजीभाई रतनजीभाई और अन्य** (उपर्युक्त) वाले पूर्ववर्ती विनिश्चय के प्रति निर्देश किया और उसके द्वारा संबंधित पूर्त आयुक्त को सभी लम्बित विवादों का न्यायनिर्णयन करने का निदेश दिया ।

3.7 पूर्त आयुक्त ने परिवर्तन रिपोर्ट सं. 44/81 और 665/81 से उद्‌भूत होने वाले विवादों का न्यायनिर्णयन किया । पूर्ववर्ती श्री ए. ओ. पटेल द्वारा, जोकि ब्रदर्न न्यास के संविधान का इसके "संगम ज्ञापन" के साथ विघटन होने पर उसके "अप्रचलित" और अप्रभावी होने के कारण संबंधित ब्रदर्न न्यास का रिपोर्टिंग न्यासी था फाइल की गई थी (यह ध्यान देने योग्य है कि श्री ए. ओ. पटेल की कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी और उसके स्थान पर अपीलार्थी सं. 1 और 2 शामिल किए गए थे) । पश्चात्‌वर्ती रिपोर्ट चर्च ऑफ नार्थ इंडिया गुजरात डायोसीज़ ट्रस्ट द्वारा इस परिवर्तन के अनुरोध के साथ फाइल की गई थी कि चूंकि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया न्यास ब्रदर्न न्यास का विधिक निर्वाहक और उत्तराधिकारी बन गया है, इसलिए इसकी संबंधित जंगम और स्थावर संपत्ति चर्च ऑफ नार्थ इंडिया की संपत्तियों के साथ जोड़ी जानी चाहिए । परिवर्तन रिपोर्टों का श्री नित्यानन्द ठाकुर द्वारा आक्षेप किया गया था और अन्य आक्षेपकर्ताओं ने उसी प्रकार के आक्षेप आवेदन फाइल किए । इन व्यक्तियों ने इस विवाद में प्रत्यर्थी श्री शांतिलाल ठाकुर और श्री मगनलाल एम. गमेटी के साथ पूर्व में एकीकरण कार्यवाही को सहमति दी थी । इस प्रकार, पूर्त आयुक्त ने निम्नलिखित प्रश्नों पर न्यायनिर्णयन किया :–

(i) क्या परिवर्तन विधिमान्य है ?

(ii) क्या उक्त परिवर्तन रिपोर्टें और परिवर्तन रिपोर्टों में से कोई रिपोर्ट मंजूर किए जाने योग्य है ?

पूर्त आयुक्त ने दोनों प्रश्नों के उत्तर सकारात्मक दिए और एफ. डी. सी. बी. में निहित संपत्तियों को चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में निहित करने की मंजूरी देते हुए परिवर्तन रिपोर्टों के विरुद्ध उठाए गए आक्षेपों को खारिज कर दिया ।

3.8 पूर्त आयुक्त के ऊपर उल्लिखित आदेश के विरुद्ध परिवर्तन रिपोर्टों के आक्षेपकर्ताओं ने मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 72 के अधीन नगर सिविल न्यायालय, अहमदाबाद के समक्ष 2008 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 470 और 2008 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 630 फाइल किया । आवेदन यह अभिकथित करते हुए फाइल किए गए थे कि न्यास का विधिपूर्ण विलयन नहीं हुआ था और संपत्ति समिति में निहित संपत्ति इसमें विद्यमान नहीं रही थी । विद्वान् नगर सिविल न्यायाधीश के समक्ष उठाए गए प्रश्न निम्नलिखित हैं :–

(i) क्या सोसाइटी का विघटन हो गया है और द्वितीयतः क्या न्यास अर्थात् एफ. डी. सी. बी. का भी विघटन हो गया है ?

(ii) क्या चर्च ऑफ नार्थ इंडिया, न्यास अर्थात् एफ. डी. सी. बी. का उत्तराधिकारी है ?

(iii) क्या एफ. डी. सी. बी. का विभिन्न अन्य चर्चों में केवल विलयन होने के कारण संपत्तियां, किसी अन्य विधिक बाध्यता अथवा औपचारिकता का पालन किए बिना सोसाइटी के नियमों और विनियमों द्वारा स्वयमेव ही चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में निहित हो गई हैं ?

3.9 विद्वान् सिविल न्यायालय न्यायाधीश का मुम्बई लोक न्यास अधिनियम और सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अनेकों पहलुओं का विश्लेषण करने के पश्चात् यह मत था कि एफ. डी. सी. बी. का विघटन नहीं हुआ है चूंकि उसका उचित सबूत नहीं था । इसके अलावा, चूंकि न्यास और समिति कानून द्वारा सृजित हैं इसलिए उनका विघटन तद्नुसार किया जाना चाहिए और विलयन का प्रश्न एक तथ्यात्मक प्रश्न है जिसमें विलय होने वाला न्यास तब तक विद्यमान बना रहता है जब तक कि उसे कानून के अधीन विनिर्दिष्ट रूप से विघटित नहीं कर दिया जाता है । इसके अलावा, मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 50-क का अनुसरण किए बिना जोकि न्यास के विघटन के बारे में है, एफ. डी. सी. बी. की संपत्ति चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में निहित नहीं की जा सकती हैं । इस प्रकार विद्वान् सिविल न्यायालय के न्यायाधीश ने पूर्त आयुक्त का आदेश अभिखंडित और अपास्त कर दिया ।

3.10 अपीलार्थियों ने (जिनमें से अपीलार्थी सं. 1 उपर्युक्त वाद में एक प्रत्यर्थी था) गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष 2009 की प्रथम अपील सं. 1535 और 2009 की प्रथम अपील सं. 1536 फाइल की । विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष बुनियादी प्रश्न यह अवधारित करना था कि क्या चर्च ऑफ नार्थ इंडिया एफ. डी. सी. बी. का उत्तराधिकारी और विधिक निर्वाहक है अथवा नहीं । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उसका न्यायनिर्णयन करते हुए इस न्यायालय के उसी तथ्यात्मक आधार वाले पूर्ववर्ती विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया और पूर्ववर्ती निष्कर्षों के आधार पर अपीलों को खारिज कर दिया और सिविल न्यायालय के आदेश को पुष्ट कर दिया ।

3.11 उच्च न्यायालय के इस आदेश के कारण मामला इस न्यायालय में फाइल किया गया है ।

4. अपीलार्थी सं. 1 [2012 की विशेष इजाज़त याचिका (सिविल) सं. 16575 से उद्भूत 2013 की सिविल अपील सं. 8800 में] की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री मिहिर जोशी ने तर्क दिया कि छह चर्चों का एकीकरण एकीकृत होने वाले चर्चों द्वारा अनेक आंतरिक संकल्पों के माध्यम से प्रयोग की गई अपनी पसन्द के अनुसरण में किया गया है और वह एक ऐसा धार्मिक मामला है जिसमें आस्था का प्रश्न अंतर्वलित है और निचले न्यायालय उसका न्यायनिर्णयन नहीं कर सकते हैं चूंकि ऐसी पसन्द संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा संरक्षित है । उसने आगे यह दलील दी कि एकीकरण एक लम्बी प्रक्रिया है जिसकी परिणति 29 नवम्बर, 1970 को हुई थी जब चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का गठन हुआ था और वर्ष 1979 से उसकी वार्षिक बैठकें आयोजित हो रही हैं जिनमें प्रत्यर्थियों ने, जिन्होंने एकीकरण के संबंध में अपनी सहमति दी थी उन बैठकों में भाग लिया था । श्री जोशी ने आगे यह दलील दी कि प्रत्यर्थियों द्वारा लिए गए आधार में कोई बल नहीं है क्योंकि एफ. डी. सी. बी. द्वारा पारित आंतरिक संकल्पों में एकीकरण के संबंध में उनकी पूर्ववर्ती सहमति को दृष्टिगत करते हुए वे आक्षेप करने से विबद्ध हैं । इसके अलावा, जैसाकि श्री जोशी द्वारा तर्क दिया गया है, इन आक्षेपों में कोई सार नहीं है चूंकि प्रत्यर्थियों को अपनी आस्था बनाए रखने से निवारित नहीं किया गया है और चर्च ऑफ नार्थ इंडिया द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाओं में कोई परिवर्तन नहीं है, जोकि एकीकृत होने वाले चर्चों के समामेलन का परिणाम है । उसने आगे दलील दी कि धारा 22 के अधीन जांच की व्याप्ति के अनुसार पूर्त आयुक्त का विनिश्चय अपास्त नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि अधिनियम एक पूर्ण संहिता है ; यह कि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 50-क केवल प्रशासनिक प्रकृति की है किन्तु वर्तमान मामला किसी समुदाय द्वारा समग्र रूप से प्रयोग की गई पसन्द का मामला है ।

5. अपीलार्थी सं. 2 [2012 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 16576 से उद्भूत 2013 की सिविल अपील सं. 8801 में] की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री के. वी. विश्वनाथन ने श्री जोशी के तर्कों के अलावा यह दलील दी कि एकीकृत होने का अधिकार अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन प्रतिश्रुत समुदाय द्वारा प्रयोग किया जाने वाला अंतर्निहित अधिकार है । इसके अलावा, प्रत्यर्थियों ने एकीकरण को चुनौती नहीं दी है । इसलिए, उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण गलत है और पूर्त आयुक्त ने एकीकरण को प्रभावी करने वाली परिवर्तन रिपोर्टों को सही तौर पर स्वीकार किया है ।

6. प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह है कि एकीकरण से एफ. डी. सी. बी. का विघटन नहीं हुआ था क्योंकि सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में अधिकथित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था । इसके अलावा, वे अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन एकीकरण के संबंध में आक्षेप करने के लिए हकदार हैं क्योंकि उनकी आस्था से टकराव हो रहा है और इसलिए उन्हें विबंध द्वारा बाध्य नहीं किया जा सकता है । प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री भट्ट ने दलील दी है कि विलयन और इसके पश्चात् न्यास की संपत्ति के अंतरण का कोई प्रश्न नहीं है क्योंकि उन संकल्पों का, जिनका अपीलार्थियों द्वारा अवलंब लिया गया है, कोई विधिक महत्व नहीं है और उन्हें देश के कानून से ऊपर नहीं माना जा सकता है ।

7. श्री जोशी ने अपनी दलीलों को आगे बढ़ाया और निवेदन किया कि उच्च न्यायालय का यह अवधारण सही नहीं है कि उक्त संकल्पों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 में हस्तक्षेप किया गया है चूंकि वे एफ. डी. सी. बी. पर धार्मिक विश्वास और सिद्धांत अधिरोपित करते हैं, प्रथमतः इस कारण कि ऐसा विचारण धारा 22 के अधीन जांच की व्याप्ति के परे है और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की व्याप्ति के परे है क्योंकि यह धार्मिक कार्यों पर न्यायनिर्णयन की मांग करती है; द्वितीयतः वह पूर्त आयुक्त द्वारा विनिश्चित किए जाने के लिए उपयुक्त एक साधारण प्रश्न नहीं है और ऐसा प्रश्न नहीं है जिसे सिविल न्यायालय की अधिकारिता लागू होती है, जिसे मुम्बई लोक न्यास अधिनियम द्वारा इस पहलू में बाहर नहीं रखा गया है, वास्तव में यह प्रश्न मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की व्याप्ति से परे है । इसके अलावा, यह बताया गया कि धारा 22 के अधीन जांच केवल आरोप की वैधता से संबंधित है और साधारण विधि के अधीन पक्षकारों के अधिकारों के न्यायनिर्णयन तक विस्तारित नहीं होता है, इसलिए पूर्त आयुक्त ने सही तौर पर अभिनिर्धारित किया कि एकीकरण एक धार्मिक प्रक्रिया है; इसके अलावा एकीकरण वर्ष 1970 में हुआ था और उन आक्षेपकर्ताओं द्वारा इसे चुनौती नहीं दी गई है जो कि इस प्रक्रिया में भागीदार थे और उच्च न्यायालय ने इस प्रकार इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि विलयन का अधिकार एक धार्मिक मामला है और कानून का निर्वचन तदनुसार किया जाना चाहिए । इसके अलावा, उसने निवेदन किया कि संकल्प मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के प्रतिकूल नहीं हैं क्योंकि किसी भी उपबंध में पूर्त आयुक्त की पूर्व अनुज्ञा लेना उपबंधित नहीं है और भले ही कोई ऐसा उपबंध विद्यमान होता तो भी वह असांविधानिक होता, इसी

तरह धारा 50-क केवल एक समर्थकारी धारा है और उसके अन्तर्गत निहित शक्ति न्यासों के अच्छे प्रशासन के लिए है, जो कि वर्तमान मामले में कारण नहीं है; द्वितीयतः, एकमात्र प्रक्रिया जो अपनाई जानी थी, वह धारा 22 के अधीन आने वाली प्रक्रिया थी जो कि संकल्पों के कारण एकीकरण के अभिलिखित किए जाने के लिए है; तृतीयतः, चूंकि कोई विघटन नहीं हुआ है, इसलिए संपत्ति से जुड़ी बाध्यता वही है और विलयन के पश्चात् केवल प्रशासनिक मशीनरी में परिवर्तन हुआ है; अंततः, संपत्ति का कोई अंतरण नहीं हुआ है और बाध्यताएं वही रही हैं यद्यपि वे एक दूसरे नाम में हैं । आगे यह निवेदन किया गया कि यह दलील भ्रामक है कि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया वर्ष 1980 में अस्तित्व में आया, क्योंकि रजिस्ट्रीकरण केवल न्यास की अभिस्वीकृति है और इसका किसी कंपनी के निगमन से कोई संबंध नहीं है । इसके अलावा, यह निवेदन किया गया कि यह निष्कर्ष मान्य नहीं है कि सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन प्रक्रिया का अनुसरण अवश्य किया जाना चाहिए चूंकि आस्तियां सोसाइटी में निहित नहीं की गईं थीं और उनकी परीक्षा करने की आवश्यकता है; इसके अतिरिक्त, संकल्प सदस्यों द्वारा पारित किए गए थे और पूर्त आयुक्त को सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की परीक्षा करने की अधिकारिता नहीं थी और ऐसे आक्षेप उसके समक्ष नहीं उठाए जाने चाहिए थे; इसके अतिरिक्त किन्तु उस पर बिना किसी पूर्वाग्रह के यह भी निवेदन किया कि सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन 3/5 बहुमत की अपेक्षा का अनुपालन किया गया था और सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 के अधीन कोई विवाद नहीं किया गया था । इसके अलावा, यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही नहीं है कि एकीकरण सिद्धांतों के अधिरोपण की कोटि में आता है क्योंकि विलयन के पश्चात् वही धार्मिक पद्धति विद्यमान रहती है, यह एक ऐसा तथ्य है जिसे सिविल न्यायालय द्वारा भी स्वीकार किया गया है; इसके अतिरिक्त चूंकि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया एक समामेलित निकाय था, इसलिए अधिरोपण या अधिकार में लेने का कोई प्रश्न नहीं है । यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय द्वारा परिवर्तन रिपोर्टों का नामंजूर किया जाना अमान्य है क्योंकि पूर्त आयुक्त के समक्ष प्रदर्शित सभी दस्तावेज़ सिविल न्यायालय में सिद्ध हो चुके हैं और ऐसी कार्यवाहियों को साक्ष्य के कड़े नियम भी लागू होते हैं । यह निवेदन किया गया है कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष गलत है कि आक्षेपकर्ता विबंध द्वारा वर्जित नहीं है, क्योंकि आक्षेपों में सद्भाविकता की कमी है । अंत में, उसने दलील दी कि यह दलील कि विवाद्यक का

चर्च ऑफ नार्थ इंडिया बनाम **लावाजीभाई रतनभाई और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में विनिश्चय किया गया था, **विनोद कुमार माथुरसेवा मालवीय और एक अन्य** बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में पश्चात्वर्ती विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए सही नहीं है ।

8. अपीलार्थी सं. 2 ने श्री विश्वनाथन द्वारा तय किए गए अपने लिखित निवेदनों में इसके आगे यह जोड़ा और निवेदन किया कि चर्चों के विलयन का विवाद्यक न्यायालयों की अधिकारिता के अध्यधीन नहीं है और वह मुम्बई लोक न्यास अधिनियम से स्वतंत्र है क्योंकि यह एक धार्मिक अथवा चर्च संबंधी मामला है जोकि न्यायिक संवीक्षा के अध्यधीन नहीं आता है; कि उन्होंने विलयन का तथ्य सिद्ध करने के लिए पूर्त आयुक्त के समक्ष पर्याप्त साक्ष्य पेश किया है जिसे नगर सिविल न्यायालय ने भी मान्य ठहराया है; कि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 50-क की उपधारा (2) प्रवर्तन में तब जाती है जब पूर्त आयुक्त का यह मत हो कि न्यासों का कुप्रबंध होने के कारण विलयन किया जाना चाहिए, तथापि, वर्तमान मामले में विलयन धार्मिक और चर्च संबंधी कारणों से हुआ है और इसलिए धारा 50-क की उपधारा (2) लागू नहीं होती है; कि सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 लागू नहीं होती है क्योंकि यह चर्चों के विघटन का मामला नहीं है किन्तु उनके विलयन का मामला है, इसके अलावा, मुम्बई लोक न्यास अधिनियम एक पूर्ण संहिता है और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत न्यास का विलयन सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 12 के अधीन अपेक्षाओं पर समाश्रित नहीं किया जा सकता, इसके अतिरिक्त दोनों कानूनों का लागू होना एक विलक्षण स्थिति का सृजन करता है; आक्षेपकर्ताओं में से एक उस समय स्वयं न्यासी था जब परिवर्तन रिपोर्ट फाइल की गई थी और केवल एक बहुत छोटे दल ने परिवर्तन रिपोर्टों का विरोध किया था; कि एफ. डी. सी. बी. के आंतरिक निकायों द्वारा एफ. डी. सी. बी. के चर्च ऑफ नार्थ इंडिया के साथ विलयन के लिए पारित संकल्पों को सिविल न्यायालय के समक्ष किसी के द्वारा (जिनमें प्रत्यर्थी भी हैं) चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए ये संकल्प प्रत्यर्थियों सहित एफ. डी. सी. बी. के सभी सदस्यों पर बाध्यकारी बने रहे; और अन्ततः, यह कि पूर्त आयुक्त मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 22 के अधीन परिवर्तन के तथ्य और उसकी विधिमान्यता की जांच करता है और इसलिए पूर्त आयुक्त ने इसे ध्यान में रखते हुए एक सकारण आदेश पारित किया है ।

9. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी है कि चर्च ऑफ नार्थ

इंडिया की संपूर्ण विरचना में बहुत सी अस्पष्टीकृत कमियां हैं, प्रथम यह कि परिवर्तन रिपोर्टें मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 22 का उल्लंघन करते हुए अभिकथित परिवर्तन होने के ग्यारह वर्षों के बाद फाइल की गई हैं जो यह अपेक्षा करता है कि परिवर्तन होने के 90 दिनों के पश्चात् आज्ञापक रूप से इसकी रिपोर्ट की जानी चाहिए; द्वितीयतः चर्च ऑफ नार्थ इंडिया ट्रस्ट एसोसिएशन का, जो कि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का न्यासी है, गठन चर्च ऑफ नार्थ इंडिया के अभिकथित गठन के छह वर्ष पश्चात् किया गया था, जोकि 1980 में रजिस्ट्रीकृत हुआ था, जिसके द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी जहां कि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया न्यास में छह वर्षों तक कोई न्यासी नहीं था और वर्ष 1980 में इसके रजिस्ट्रीकरण होने तक उसकी कोई विधिक हैसियत नहीं थी; तृतीयतः, चर्च ऑफ नार्थ इंडिया ने केवल 1984 से पूर्व अपनी संपरीक्षित लेखा-बहियां प्रस्तुत की थीं; अन्त में, चर्च ऑफ नार्थ इंडिया दस वर्ष के अस्पष्टीकृत विलंब के पश्चात् रजिस्ट्रीकृत हुआ था और वह एकपक्षीय था; इसके अतिरिक्त, अपीलार्थियों के अनुसार चर्च ऑफ नार्थ इंडिया एफ. डी. सी. बी. का उत्तराधिकारी था; तथापि, पश्चात्वर्ती रजिस्ट्रीकरण के समय रजिस्ट्रीकरण प्ररूप में एफ. डी. सी. बी. की संपत्तियां चर्च ऑफ नार्थ इंडिया की संपत्तियों के रूप में दर्शित नहीं की गई थीं । इस पृष्ठभूमि में, प्रस्तुत परिवर्तन रिपोर्टें गलत हैं और धारा 22 के उल्लंघन में हैं क्योंकि वे एक ऐसे परिवर्तन को प्रभावी करने की ईप्सा की गई है जो कि न्यास के रजिस्ट्रीकरण के पूर्व हुआ था, इसके अतिरिक्त, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थियों का यह दावा कायम नहीं रखा जा सकता है कि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया तारीख 29 नवम्बर, 1970 को अपने गठन की तारीख से आज तक एफ. डी. सी. बी. का विधिक उत्तराधिकारी है । प्रत्यर्थियों ने आगे यह निवेदन किया कि स्वीकृततः एफ. डी. सी. बी. पहले सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत हुआ था और तत्पश्चात् जब मुम्बई लोक न्यास अधिनियम प्रवृत्त हुआ था तब उसके अधीन रजिस्ट्रीकृत हुआ था और इसलिए वे दोनों अधिनियमों द्वारा शासित होता है जो कि विनियामक प्रकृति के हैं; कि उपरोक्त के अतिरिक्त रजिस्ट्रीकृत न्यास की संपत्तियों के अन्यसंक्रामण की ईप्सा करने वाली वर्तमान परिवर्तन रिपोर्टें मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 36 और/या धारा 50-क, धारा 51 और धारा 50 के अनुपालन में नहीं हैं और यह कि न्यास जो कि शाश्वत रूप में विद्यमान हैं, पूर्त आयुक्त की घोषणा द्वारा विघटित नहीं हो गया है, जिसने सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 का अवलंब

लिए बिना ऐसी घोषणा की है; यह कि अन्य संप्रदाय भी जिनका चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में विलयन हुआ था, विद्यमान बने हुए हैं और संपत्ति पर उनका स्वामित्व है; यह कि अपीलार्थियों द्वारा रखे गए संकल्प विलयन के बारे में वर्णन करते हैं और अभिलेख पर ऐसी कोई बात नहीं है जिससे न्यास या सोसाइटी के विघटन का आशय दर्शित होता हो; यह कि सोसाइटी केवल सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रक्रिया का अनुपालन किए जाने के पश्चात् विघटित होती है और किसी सोसाइटी के विघटन से स्वयमेव यह अभिप्रेत नहीं है कि न्यास की संपत्तियों का भी समायोजन हो गया है; यह कि अनेक व्यक्तियों ने एकीकरण के संबंध में आक्षेप किए थे और एम. एम. गमेटी केवल मुख्य आक्षेपकर्ता है जिसने कभी कोई पद धारण नहीं किया है अथवा किसी दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं और हालांकि ऐसे दस्तावेज बिना किसी विधिक महत्व के हैं; और अंत में यह कि एकीकरण धार्मिक प्रक्रिया का अनुषंगी पंथनिरपेक्ष भाग है और इसलिए वह न्यायिक संवीक्षा के अध्यधीन है ।

10. परस्पर विरोधी दलीलों को सुनने और लिखित निवेदनों पर विचार करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि प्रमुख विवाद्यक जिसका उत्तर दिया जाना है, यह है : कि क्या फर्स्ट डिस्ट्रिक्ट चर्च ऑफ ब्रदर्न का चर्च ऑफ नार्थ इंडिया के साथ अभिकथित एकीकरण सही है या नहीं और उसी उत्तर से हमारे समक्ष उठाए गए सभी आनुषंगिक विवाद्यकों का उत्तर मिल जाता है ।

11. एकीकरण के विवाद्यक के संबंध में हमारा यह मत है कि एकीकरण प्रक्रिया की विधिमान्यता के संबंध में प्रश्नों का उत्तर **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** बनाम **लावाजीभाई रतनजीभाई** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों में दिया जा चुका है, जिसमें मामला मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 80 के अधीन सिविल न्यायालय की अधिकारिता के वर्जन के संबंध में था । इस न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित मामले में मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 80 के अधीन प्राधिकारियों और सिविल न्यायालय की अधिकारिता को रेखांकित किया है और यह अंकित किया है कि किन परिस्थितियों में किस निकाय को अधिकारिता प्राप्त है । इस न्यायालय ने अपने निष्कर्ष पर पहुंचते हुए सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के उपबंधों और दोनों अधिनियमों के बीच संबंध के बारे में विस्तृत रूप से विचार किया और निम्न प्रकार अवधारित किया कि :–

"61. यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि

संबंधित चर्चों का प्रबंध सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटियों द्वारा किया जा रहा था । किसी भी दशा में यह स्वीकार्य है कि सोसाइटियों के विघटन और उनके कार्यकलापों के समायोजन से संबंधित विवाद मूल सिविल अधिकारिता वाले मुख्य न्यायालयों को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए ।

62. प्रश्नगत विवाद भी सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 के उपबंधों के अनुरूप नहीं है ।

63. अधिनियम की धारा 20 में यह उपबंधित है कि उसमें प्रगणित सोसाइटियां ही उक्त अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत की जा सकती हैं ।

64. जब तक अधिनियम की धारा 13 के निबंधनानुसार कोई वाद फाइल नहीं किया जाता है तब तक सोसाइटी का विघटन नहीं होता है । यह मान लेने पर भी कि सोसाइटी संगम ज्ञापन और संगम अनुच्छेदों के निबंधनानुसार विघटित हो जाती है तो इसका स्वयमेव यह अर्थ नहीं होगा कि संपत्तियां उक्त अधिनियम के उपबंधों के निबंधनानुसार सोसाइटी के सदस्यों के बीच समायोजित की जा सकती हैं । स्वीकार्यतः, न्यास की संपत्तियां धार्मिक न्यास की संपत्तियां होने के कारण ऐसे न्यास में निहित हो गई थीं । हमने इसमें इसके पूर्व यह पाया है कि ऐसा उपबंध मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में भी विद्यमान है । इस प्रकार, केवल इस कारण कि सोसाइटी का विघटन हो गया है, न्यास की संपत्तियों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वे स्वयमेव समायोजित हो गई थीं । अतः, हमने इसमें इसके पूर्व यह अवेक्षा की है कि अपीलार्थियों ने वादपत्र में यह प्रकथन किया है कि वाद का संबंध न्यास की संपत्ति और उनके प्रशासन से है । यदि चर्चों की संपत्तियां सोसाइटी की नहीं थीं तो इसमें के अपीलार्थी उनके उत्तराधिकारी के रूप में उनका दावा नहीं कर सकते हैं....... ।"

(बल देने के लिए रेखांकित)

12. अपीलार्थियों द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि वे संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन अपने कार्यकलापों का प्रबंध करने के लिए हकदार हैं और चर्चों के एकीकरण का प्रश्न एक धार्मिक विनिश्चय है जिस पर न्यायालयों की कोई अधिकारिता नहीं है । हमारा यह मत है कि एकीकरण का किसी भी प्रकार का कोई विधिक आधार नहीं है । एफ. डी. सी. बी. सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत एक

सोसाइटी है और इसकी संपत्ति मुम्बई लोक न्यास अधिनियम द्वारा विनियमित न्यास में निहित हैं । मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अनुसार एक लोक न्यास धार्मिक प्रकृति का होने के कारण सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन एक सोसाइटी भी हो सकता है । यह एक सुस्वीकृत सिद्धांत है कि कानून द्वारा सृजित निकाय को विनियमन करने वाले कानून के उपबंधों के अनुरूप होना चाहिए । वर्तमान मामले में एफ. डी. सी. बी. के विघटन के लिए प्रक्रिया सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 में उपवर्णित अपेक्षाओं और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में अधिकथित प्रक्रिया के अनुरूप नहीं है जैसाकि **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** बनाम **लावाजीभाई रतनजीभाई और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में उल्लेख किया गया है । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थियों का मामला उन संकल्पों और विचार-विमर्श पर आधारित है जिसे इसने विघटन और पश्चात्‌वर्ती एकीकरण के अपने दावे के समर्थन में अभिलेख पर प्रस्तुत किया है । तथापि, निचले न्यायालयों के निष्कर्ष के अनुसार ऐसा कोई संकल्प या ऐसे विचार-विमर्श के कार्यवृत्त कानूनों में अधिकथित प्रक्रिया का अनुपालन नहीं करते । निचले न्यायालय के अनुसार अभिलेख पर रखी गई समस्त सामग्री में केवल समामेलन की बात कही गई है और उसमें सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन यथापेक्षित एफ. डी. सी. बी. के विघटन के प्रति कोई निर्देश नहीं है । अतः, उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह राय व्यक्त की है कि :–

> "..... तथापि, तथ्य यह शेष रह जाता है कि ऐसा कोई आधार अथवा नींव अथवा विधिक अथवा अन्य ढांचा नहीं है जिसे बाध्यकारी कहा जा सके और जिसका अपीलार्थी द्वारा अवलंब लिया जा सके ।"

संकल्प सं. 70/08, जिस पर अपीलार्थियों का पक्षकथन आधारित है, क्या सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की अपेक्षाओं का अनुपालन करने अथवा न करने से एफ. डी. सी. बी. न्यास का विघटन नहीं होता है । इसलिए यह अनुचित होगा यदि एफ. डी. सी. बी., जोकि एक धार्मिक सोसाइटी है, निचले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर विघटित हो जाती है । इसलिए इस न्यायालय के ऊपर उल्लिखित निर्णय को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय और निचले न्यायालय द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित करना सही है ।

13. सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 5 के अधीन एक यदि किसी सोसाइटी की संपत्ति न्यासियों में निहित नहीं है केवल तभी

तत्समय ऐसी सोसाइटी के शासी निकाय में निहित होगी । एफ. डी. सी. बी. की संपत्ति ई-643/भड़ौच लोक न्यास में निहित हैं । **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** बनाम **लावाजीभाई रतनजीभाई और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा भी इसकी मान्यता दी गई थी, जिसमें इस प्रकार संप्रेक्षण किया गया था :–

> "60. हमें इस तथ्य का भान है कि तारीख 17 फरवरी, 1970 को आयोजित बैठक में अंगीकृत संकल्प अभिकथित रूप से सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम में उपबंधित ऐसे संकल्प के लिए सभी अपेक्षाओं को पूरा करता था किन्तु अब यह किसी संविवाद के परे है कि ऐसी सोसाइटी द्वारा, जिसके पास अपनी संपत्ति नहीं है, किसी नई सोसाइटी में उनका अन्तरण विधि में अनुज्ञेय नहीं है । सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 5 के निबंधनानुसार सभी संपत्तियां न्यासियों में निहित होंगी और ऐसी संपत्तियों के न्यासियों में निहित होने के अभाव की दशा में ही उनके बारे में यह समझा जाएगा कि वे तत्समय ऐसी संपत्ति के शासी निकाय में निहित हो गई हैं । इस मामले में, यह स्पष्ट है कि संपत्तियां न्यासियों में न कि सोसाइटी के शासी निकाय में निहित हो गई हैं ।"

एफ. डी. सी. बी. की आंतरिक बैठकों में पेश किए गए संकल्पों और किए गए विचार-विमर्श में केवल एफ. डी. सी. बी. का अन्य चर्चों में समामेलन किए जाने का उल्लेख है और उनसे सोसाइटी और रजिस्ट्रीकृत न्यास के विघटन का आशय संसूचित नहीं होता है और उससे ऐसा अर्थ नहीं लगाया जा सकता है । इन संकल्पों और विचार-विमर्शों के आधार पर अपीलार्थियों का यह दावा मान्य नहीं है कि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया, एफ. डी. सी. बी. की संपत्ति का, जो कि रजिस्ट्रीकृत न्यास में निहित थी, उत्तराधिकारी है ।

14. जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित निर्णय में मत व्यक्त किया गया है, मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के विभिन्न उपबंधों का विश्लेषण करते समय पूर्त आयुक्त की पूर्व मंजूरी के बिना न्यास की जंगम संपत्ति का अन्यसंक्रामण धारा 36 के अधीन वर्जित है । इस न्यायालय ने **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** बनाम **लावाजीभाई रतनजीभाई और अन्य** (उपर्युक्त) और **विनोद कुमार माथुरसेवा मालवीय और एक अन्य** बनाम **मगनलाल मंगलदास गमेटी और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामलों में अपने निर्णयों में स्पष्ट रूप से यह कहा है कि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम एक पूर्ण संहिता है । इसके अतिरिक्त **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामले

में इस न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "69. हमने इसमें इसके पूर्व यह अवेक्षा की है कि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में धारा 21(2), धारा 22(3), धारा 26, धारा 36, धारा 41(2), धारा 51(4) और धारा 79(2) में पूर्त आयुक्त द्वारा पारित आदेश की अंतिमता और निश्चायकता का उपबंध है ।"

कानून में दावेदारों के लिए संपत्ति के अंतरण को अंगीकार करने के लिए एक समुचित प्रक्रिया का उपबंध किया गया है और उसका संप्रेक्षण नहीं किया गया है । अपीलार्थियों का पक्षकथन यह है कि सोसाइटी के विघटन से न्यास का स्वयमेव विघटन हो जाता है और न्यास की संपत्ति चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में निहित हो जाती है, जिसे उसके उत्तराधिकारी के रूप में अभिहित किया जाता है, जो कि अभिलेख पर रखे गए संकल्पों आदि पर आधारित होता है । तथापि, किसी न्यास के समामेलन के लिए प्रक्रिया मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की, जोकि एक पूर्ण संहिता है, धारा 50-क से प्रतिपादित स्कीम की अवहेलना की गई है । इसलिए, उच्च न्यायालय ने सिविल न्यायालय के निर्णय के प्रति निर्देश करते समय सही तौर पर यह मत व्यक्त किया है कि :–

> "........ विलयन के संबंध में यह स्पष्ट रूप से मत व्यक्त किया गया है कि ऐसी सोसाइटी से मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत न्यास होने के कारण मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 50-क(2) के अधीन अनुध्यात समामेलन या विलयन के लिए प्रक्रिया का पालन करना अपेक्षित है । इसके अतिरिक्त, चूंकि सोसाइटी और न्यास कानून द्वारा सृजित हैं उन्हें समामेलन के लिए कानून में उपबंधित रीतियों का पालन करना होगा और ऐसा विलयन किए जाने से पूर्व आवश्यक प्रक्रिया, जिसमें पूर्त आयुक्त का अनुमोदन भी है, अवश्य अपनाई जानी चाहिए । मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 50-क(2) के प्रति निर्देश करना उपयोगी होगा । <u>यह उल्लेख करना आवश्यक है कि ब्रदर्न चर्च द्वारा संकल्प पारित करके विलयन की अभिव्यक्ति या इच्छा व्यक्त करने का परिणाम तब तक विलयन नहीं होगा जब तक कि इसे मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया द्वारा अनुमोदन नहीं कर दिया जाता है । इसके अतिरिक्त, वे संपत्तियां जो ऐसे चर्च की समिति में, जोकि एफ. डी. सी. बी. के रूप में रजिस्ट्रीकृत हैं, निहित हैं, न्यास के क्रियाकलापों का प्रबंध करेगा और मुम्बई लोक</u>

न्यास अधिनियम के अधीन प्रक्रिया का अनुपालन किए बिना या पूर्त आयुक्त के अनुमोदन के बिना संपत्ति के साथ-साथ न्यास की सामग्री अंतरित नहीं की जा सकती है ।"

(बल देने के लिए रेखांकित)

इसके अतिरिक्त, चूंकि कानून में केवल धारा 50-क का उपबंध है, इसके द्वारा शासित व्यक्तियों को विधान के दायरे में रहकर कार्य करना चाहिए और इन आधारों पर विधायी विवेक को प्रश्नगत नहीं करना चाहिए कि किसी कानून में कतिपय पहलुओं का उपबंध नहीं किया गया है इसलिए उनका उनसे कोई संबंध नहीं है ।

15. उपरोक्त के अतिरिक्त, चर्च ऑफ नार्थ इंडिया के गठन में स्पष्ट त्रुटियां हैं जो उच्च न्यायालय द्वारा अपने निर्णय के पैरा 17 में संप्रेक्षित की गई हैं और हम भी उच्च न्यायालय के मत से सहमत हैं जिसमें प्रथमतः, यह अभिकथित किया गया है कि चर्च ऑफ नार्थ इंडिया का गठन तारीख 17 फरवरी, 1970 के संकल्प सं. 70/08 के पश्चात् तारीख 26 नवम्बर, 1970 को हुआ था, तथापि, उसे 1980 में रजिस्ट्रीकृत कराने की ईप्सा की गई थी और रजिस्ट्रीकरण को वर्ष 1971 से प्रभावी किया गया था । यह मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 18 में अधिकथित अपेक्षाओं के विपरीत है जिसमें किसी लोक न्यास को उपधारा (4) के खण्ड (ख) के अनुसार तीन मास के भीतर रजिस्ट्रीकृत कराने की अपेक्षा की गई है । अधिनियम भूतलक्षी प्रभाव से रजिस्ट्रीकरण के बारे में मौन है । किन्तु विवाद मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकरण की प्रक्रिया के निर्वचन के संबंध में नहीं है, इसलिए हम उस पर आगे विस्तार से विचार करने से विरत रहते हैं । दूसरी त्रुटि जो विद्यमान है, वह यह है कि वर्ष 1976 में चर्च ऑफ नार्थ इंडिया ट्रस्ट एसोसिएशन का भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन गठन किया गया था और उसे चर्च ऑफ नार्थ इंडिया के न्यासी के रूप में नियुक्त किया गया था, जोकि एक ऐसा न्यास था जो अभिकथित रूप से 1971 से विद्यमान था, जो 1970 में एफ. डी. सी. बी. के स्थान पर बना, जिसका अभिकथित रूप से विघटन हो गया था और इसकी वार्षिक बैठकें 1971 से बन्द हो गई थीं । चर्च ऑफ नार्थ इंडिया को एफ. डी. सी. बी. का उत्तराधिकारी घोषित करने के लिए 1979 में एक वाद फाइल किया गया था [जिसे **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संधार्य नहीं ठहराया गया था] । 1979 के वाद के लंबित रहने के दौरान 1981 की परिवर्तन रिपोर्ट सं. 44 और 1981 की परिवर्तन रिपोर्ट सं. 665 वर्ष 1980 में फाइल की गई थी । इस स्थिति

से एक ऐसा परिदृश्य उत्पन्न हो गया जहां एफ. डी. सी. बी. का 1970 के संकल्पों के पश्चात् पूर्णतः अंत हो गया और चर्च ऑफ नार्थ इंडिया ट्रस्ट एसोसिएशन बनने तक उसकी संपत्तियों का प्रबंध किसने किया यह एक असुलझा प्रश्न है जिसे **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिलक्षित किया गया, जिसमें यह कथन किया गया कि "..... इसके अतिरिक्त अभिलेख पर न्यास संपत्ति के प्रबंधन और नियंत्रण की पद्धति और रीति दर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है ।" तत्पश्चात् इस न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित मामले में मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन प्रक्रिया पर चर्चा की, जिसे नीचे इस प्रकार उद्धृत किया जाता है :–

> "70. .... मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में सिविल न्यायालय की अधिकारिता के स्पष्ट अपवर्जन का उपबंध किया गया है । अध्याय IV में अंतर्विष्ट विभिन्न उपबंधों में न्यास की जंगम और स्थावर संपत्ति, उसकी पहचान के प्रयोजनार्थ उसके वर्णन और उसकी विशिष्टियों के संबंध में जांच की शक्ति और तत्पश्चात् न्यायनिर्णयन की शक्ति प्रदत्त की गई है । वास्तव में, किसी लोक न्यास के न्यासी को रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन करने के कानूनी कर्तव्य से आदिष्ट किया गया है जिसमें न्यास की जंगम और स्थावर संपत्ति के सभी आवश्यक विवरण जिनमें उनकी पहचान के प्रयोजन के लिए उनके विवरण और विशिष्टियां भी हैं, प्रस्तुत किए जाने आवश्यक होते हैं । धारा 19 में अन्य बातों के साथ न्यासी के पद के उत्तराधिकार का ढंग तथा यह अभिनिश्चित करने की दृष्टि से कि क्या कोई संपत्ति ऐसे न्यास की संपत्ति है, रजिस्ट्रीकरण के लिए जांच का उपबंध करती है । जब कानूनी प्राधिकारी का न्यास की वास्तविकता और उसके द्वारा धारित संपत्तियों के संबंध में अपना समाधान हो जाता है केवल तभी अधिनियम की धारा 21 के उपबंधों के अनुरूप उसकी धारा 17 के निबंधनानुसार रखे गए रजिस्टरों और पुस्तकों आदि में प्रविष्टि की जाती है । ऐसी प्रविष्टि यह कहना पुनरावृत्ति होगी कि अंतिम और निश्चायक है । परिवर्तन केवल उसकी धारा 22 के निबंधनानुसार किए जा सकते हैं ।"

उक्त तथ्यों से स्पष्ट रूप से मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन प्रक्रिया की अननुपालन दर्शित होता है । यह तर्क कि संविधान के अनुच्छेद 254 के अनुसार सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम मुम्बई लोक न्यास

अधिनियम पर अभिभावी है अथवा यह कि सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम में परस्पर विरोध है, बिल्कुल भी सही नहीं है, चूंकि दोनों कानून परस्पर विरोध में नहीं हैं । इसके विपरीत, लोक और धार्मिक न्यासों के प्रशासन और विनियमन के संबंध में वे एक दूसरे के अनुरूप हैं ।

16. इसलिए हमारा यह मत है कि अपीलार्थियों का यह दावा कि तात्पर्यित संकल्प के पश्चात् एफ. डी. सी. बी. का चर्च ऑफ नार्थ इंडिया के साथ एकीकरण होने के परिणामस्वरूप एफ. डी. सी. बी. का विघटन हो गया और चर्च ऑफ नार्थ इंडिया उसका विधिक उत्तराधिकारी और इसकी संपत्तियों का नियंत्रक बन गया, मान्य नहीं है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने ठीक ही निम्न प्रकार मत व्यक्त किया कि :–

> "न्यास जिसका सृजन लोक न्यास के रूप में विनिर्दिष्ट उद्देश्य के लिए किया गया है और पूर्त अथवा धार्मिक प्रकृति का है अथवा सोसाइटी के सद्भाव के लिए है अथवा ऐसी संस्था जिसका ऐसे न्यासों द्वारा पूर्त और धार्मिक प्रयोजनों के लिए प्रबंध किया जाता है, शाश्वत रूप में विद्यमान रहेगा और सोच-विचार अथवा विचार-विमर्श अथवा संकल्प की किसी भी ऐसी प्रक्रिया द्वारा उनका अस्तित्व समाप्त नहीं होगा जिसे विधि का बल प्राप्त नहीं है ।"

17. चूंकि एफ. डी. सी. बी. न्यास का कभी विघटन नहीं हुआ था, इसलिए उसकी संपत्तियां चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में निहित नहीं होंगी । इससे पूर्व भी, इस न्यायालय ने **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इसी प्रकार मत व्यक्त किया था और यह कहा था :–

> "ब्रदर्न चर्च से संबद्ध चर्चों के तात्पर्यित संकल्प और उनका अपीलार्थी के साथ विलयन अधिनियम के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए उसके उपबंधों के अनुकूल किया जाना आवश्यक था । हमारे लिए इस बात पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या चर्चों के ऐसा विघटन और उनका अपीलार्थी में विलयन स्थावर संपत्ति के अन्यसंक्रामण की कोटि में आएगा किन्तु हम केवल यह उल्लेख करना चाहते हैं कि ऐसा अन्यसंक्रामण भी विधि में प्रतिषिद्ध है ।"

18. पूर्त आयुक्त की अधिकारिता और न्यायालयों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन गारंटीकृत स्वतंत्रताओं का अतिक्रमण करने

के संबंध में आक्षेप किए गए हैं । यह अभिकथित किया गया है कि न्यास में परिवर्तन अनुज्ञात करने से इनकार करने से समुदाय द्वारा ऐसे किसी मामले में प्रयोग किया गया विकल्प अकृत हो जाता है जोकि पूरी तरह से धार्मिक, आस्था संबंधी और चर्च संबंधी है; विशेष रूप से इस तथ्य पर विचार करते हुए कि नई सृजित इकाई भी उसी धर्म का पालन करती है । इसके अतिरिक्त, विबंध का विवाद्यक प्रत्यर्थियों द्वारा उठाए गए एकीकरण के आक्षेपों के संबंध में, जिन्होंने पूर्व में उसकी सहमति दी थी, इसी मुद्दे को ध्यान में रखते हुए उठाया गया है ।

19. प्रथमतः, हम पूर्त आयुक्त और निचले न्यायालयों की अधिकारिता के विवाद्यक का उत्तर देंगे । यहां समुदाय की पसन्द तात्पर्यित संकल्प और विचार-विमर्श हैं । ये संकल्प एफ. डी. सी. बी. न्यास संपत्तियों के प्रबन्ध-मण्डल और स्वामित्व में परिवर्तन को प्रभावी करने का ऐसी रीति में एक प्रयास है जोकि देश की विधि के विरुद्ध है । तथापि, अपीलार्थियों का यह पक्षकथन है कि अनुच्छेद 25 और 26 के अनुसार वे अपने कार्यकलापों का प्रबंध करने के लिए स्वतंत्र हैं और उन्होंने **आयुक्त हिन्दू धार्मिक विन्यास, मद्रास** बनाम **श्री शिरूर मठ के श्री लक्ष्मेन्द्र तीर्थ स्वामीयार**[1] और **रतीलाल पन्नाचंद गांधी और अन्य** बनाम **मुम्बई राज्य और अन्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलम्ब लिया है ।

20. हमारा यह मत है कि अपीलार्थियों द्वारा ऊपर उल्लिखित दो निर्णयों का अवलंब लेना भ्रामक है । **आयुक्त, हिन्दू धार्मिक विन्यास, मद्रास** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने मद्रास हिन्दू धार्मिक और पूर्त विन्यास अधिनियम, 1951 की धारा 21, धारा 30(2), धारा 31, धारा 55, धारा 56 और धारा 63 से धारा 69 की संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च), अनुच्छेद 25 और अनुच्छेद 26 के मुकाबले विधिमान्यता का न्यायनिर्णयन और कर और फीस के बीच विभेद की परीक्षा करते समय यह अभिनिर्धारित किया कि ये धाराएं अधिकारातीत थीं और मद्रास हिन्दू धार्मिक और पूर्त विन्यास अधिनियम, 1951 की धारा 76(1) शून्य थी । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि इस धारा के अधीन उद्ग्रहण को अनुच्छेद 27 लागू नहीं होता है क्योंकि यह कर होने के बावजूद धार्मिक न्यास के अनुरक्षण के लिए था । उपरोक्त के संबंध में विनिश्चय करते हुए इस न्यायालय ने धर्म की व्याप्ति के संबंध में अनेकों प्रश्नों पर विचार किया

[1] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 282.
[2] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 388.

और अनुच्छेद 25(2) के अधीन धर्म की स्वतंत्रता के बारे में शर्तों को मान्य ठहराया और कि राज्य ऐसी पंथनिरपेक्ष गतिविधियों के संबंध में विधान बनाने के लिए सशक्त है जो धर्म का पालन करने के लिए आनुषंगिक हैं और यह कि न्यायालय को इस बात का विनिश्चय करने की शक्ति है कि क्या वह धार्मिक पद्धति का अभिन्न अंग है अथवा एक पंथनिरपेक्ष अंग है । **रतीलाल पन्नाचंद गांधी** (उपर्युक्त) वाले मामले में, अनुच्छेद 25 और 26 के मुकाबले मुम्बई लोक न्यास अधिनियम की धारा 44 की विधिमान्यता और धारा 58 के अधीन उद्ग्रहण को प्रश्नगत किया गया था । इस न्यायालय के अनुसार, धारा 44 को असांविधानिक ठहराया गया था । तथापि, धारा 58 के अधीन उद्ग्रहण को फीस के रूप में माना गया था और उसे अनुज्ञात किया गया था । इस न्यायालय ने उसके बारे में विनिश्चय करते समय एक बार पुनः अनुच्छेद 25 के खण्ड (2) के अधीन अनुज्ञात धार्मिक पद्धति के पंथनिरपेक्ष पहलुओं का विनियमन करने के लिए विधान बनाने की सरकार की शक्ति पर जोर दिया । उच्च न्यायालय ने इसे ध्यान में रखते हुए, एकीकरण प्रक्रिया की अवहेलना करते हुए ठीक ही यह मत व्यक्त किया कि :–

> "....... यह इस बात को स्वीकार करने की कोटि में आएगा कि ऐसे संकल्प और विचार-विमर्श कानून से ऊपर हैं और कहीं भी पारित ऐसे किसी संकल्प का भारत के प्रभुतासंपन्न अधिकारी द्वारा सृजित विधि, जैसे कि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 और अनुच्छेद 26 के अधीन संविधान के उपबंधों के मुकाबले अधिक बाध्यकारी बल होगा । वस्तुतः, अनुच्छेद 26 जिसमें धार्मिक आस्था की स्वतंत्रता का उपबंध है और अनुच्छेद 26 जिसमें संपत्ति या न्यास का विधि के अनुसार अर्जन करने और प्रशासन करने की स्वतंत्रता का उपबंध है, जिसका तात्पर्य यह है कि मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के उपबंध, जिसका सृजन किया गया है, ऐसे संकल्प की आड़ में पुनः लागू नहीं होंगे । यहां तक कि संपत्ति अंतरण अधिनियम का भी कोई प्रभाव नहीं होगा और विभिन्न न्यासों और चर्चों की संपत्तियां विधि की किसी अपेक्षा को पूरा किए बिना, किसी दस्तावेज़ के बिना, किसी प्रकार के रजिस्ट्रीकरण, स्टांप इत्यादि के बिना स्वतः ही अंतरित या निहित हो जाएंगी इसलिए इस निवेदन को स्वीकार करना अत्यधिक सरलीकरण करना होगा कि चूंकि यह धर्म और आस्था के हेतुक के बेहतर बोध और अभिवर्धन के लिए विभिन्न चर्चों के विलयन या एकीकरण के लिए मात्र एक संकल्प

है इसलिए न्यायालयों को इस पहलू की परीक्षा नहीं करनी चाहिए भले ही इसका जोरदार विरोध हुआ है जिसके परिणामस्वरूप न्यायालयों के समक्ष माननीय उच्चतम न्यायालय तक मुकदमेबाजी के बारंबार दौर हुए । भले ही यह मान लिया जाए कि इसमें अंतर्निहित उद्देश्य अथवा प्रयोजन केवल बेहतर प्रशासन के लिए है तो भी यह सांविधानिक उपबंध या देश की विधि पर अभिभावी नहीं हो सकता है ।"

21. अपीलार्थियों द्वारा उठाए गए विबंध के विवाद्यक के संबंध में हम यह महसूस करते हैं कि उच्च न्यायालय के विचारों में हस्तक्षेप करने या उन्हें स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है, जोकि इस प्रकार हैं :–

"…….इसलिए, विबंध के आधार पर किया गया निवेदन कि एक बार संकल्पों को स्वीकार कर लेने अथवा संकल्प अथवा एकीकरण पर चर्चा के समय भाग लेने पर वही लोग उससे मुकर गए । अतः, उन्हें अब अपने आधार में परिवर्तन करने से रोकना निराधार और भ्रांतिपूर्ण है । आधार अथवा आस्था में परिवर्तन करने का कोई प्रश्न नहीं है किन्तु यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर विचार करना अपेक्षित है कि क्या एक संप्रदाय, जैसे कि चर्च ऑफ नार्दर्न इंडिया, धार्मिक आस्था अधिरोपित कर सकता है, न्यास और इसकी संपत्ति अर्जित कर सकता है और ऐसे न्यास के प्रबंध के लिए सभी कार्यकलापों को ग्रहण कर सकता है, जिन्हें विभिन्न स्तरों पर अनेकों चर्चों के प्रबंधन के लिए स्थापित किया गया है । ऐसे मामलों में विबंध अथवा वचन-विबंध के सिद्धांत लागू नहीं होते हैं ।"

इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने ठीक ही यह मत व्यक्त किया है कि :–

"…… अतः, किसी प्रकार का वचन दिए जाने का कोई प्रश्न नहीं है, जिसके लिए विबंध लागू हो सके । वास्तव में, यदि यह मान भी लिया जाता है कि कुछ लोगों ने प्रारंभ में किसी स्तर पर चर्च ऑफ ब्रदर्न ट्रस्ट के चर्च ऑफ नार्थ इंडिया में विलयन और एकीकरण के संबंध में भाग लिया था तो भी कोई भी व्यक्ति समस्त प्रसंग पर अब भी पुनः विचार या नए सिरे से विचार कर सकता है और पश्चात्वर्ती स्तर पर उसका मत भिन्न हो सकता है, जिसे प्रतिषिद्ध नहीं किया जा सकता है । अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन सांविधानिक उपबंध जोकि ऐसी स्वतंत्रता की उत्पत्ति है, जिसने ऐसा अधिकार प्रदान किया है, जिसे विबंध के आधार पर छीना नहीं जा सकता या उसे कम नहीं किया जा सकता ।"

इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने यथार्थतः निम्न प्रकार निष्कर्ष निकाला कि :–

> "......... केन्द्र-बिन्दु आस्था, धर्म और ऐसी आस्था और विश्वास को मानने की परम स्वतंत्रता पर होना चाहिए जिसे कोई व्यक्ति पसन्द करता है जिसे कम नहीं किया जा सकता है । वास्तव में, उपर्युक्त प्रक्रिया और मुकदमेबाजियों से, जिनकी बार-बार पुनरावृत्ति की गई है, यह प्रतिबिंबित होता है कि एकीकरण अथवा विलयन के नाम पर यह लक्ष्यित किया जाता है कि न केवल संपत्तियों और चर्चों पर पूर्ण नियंत्रण हो बल्कि इसका अंततोगत्वा प्रभाव विशेष आस्था और विश्वास अधिरोपित करना होगा, जोकि अनुज्ञेय नहीं है ।"

22. सिविल न्यायालयों की अधिकारिता के विवाद्यक के संबंध में : क्या धारा 80 एक पूर्ण वर्जन अधिरोपित करती है अथवा नहीं और किन परिस्थितियों में पूर्त आयुक्त और सिविल न्यायालयों के बीच अधिकारिता का विभाजन होता है ? हमारा मत यह है कि इन विवाद्यकों का इस न्यायालय द्वारा **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में पर्याप्ततः उत्तर दिया गया है, जिसमें इस न्यायालय ने मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अधीन अधिकारिता के बारे में अनेक महत्वपूर्ण मामलों के प्रति निर्देश करने के पश्चात्, जिनमें **धूलाभाई और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाला मामला भी है, विस्तार से विचार किया गया है । इस न्यायालय ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "82. अधिनियम के उपबंधों और उसकी स्कीम से किसी भी प्रकार से संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रहती है कि अधिनियम स्वतः एक पूर्ण संहिता है । इसमें न्यास में हितबद्ध किसी व्यक्ति के लिए पूर्त आयुक्त के समक्ष अपना दावा पेश करने के लिए पूर्ण व्यवस्था का उपबंध है, जोकि प्रश्न पर विचार करने के लिए सक्षम है और यदि वह किसी विनिश्चय से व्यथित है तो वह अपील फाइल कर सकता है । धारा 80 के अधीन सृजित अधिकारिता के वर्जन में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि अधिनियम के उपबंधों की कठोरता से बचने के लिए कोई पर-व्यक्ति वाद नहीं ला सकता है । तथापि, तब मामला भिन्न होगा यदि संपत्ति विधि की दृष्टि से न्यास की संपत्ति नहीं है । सिविल न्यायालय की अधिकारिता पर वर्जन नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि इससे अधिकारिता का प्रश्न उद्भूत होता है । यदि

---

[1] [1968] 2 उम. नि. प. 370 = [1968] 3 एस. सी. आर. 662.

> कोई संपत्ति विधिमान्य रूप से किसी न्यास में निहित नहीं होती थी अथवा यदि कोई न्यास स्वयमेव विधि में मान्य नहीं है तो अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों के पास उक्त प्रश्न का अवधारण करने की कोई अधिकारिता नहीं होगी ।"

इसके अतिरिक्त इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपनी मताभिव्यक्ति को समाप्त किया कि :–

> "98....... सिविल न्यायालय को ऐसे किसी मामले के संबंध में कोई अधिकारिता नहीं होगी जिन मामलों में कानूनी प्राधिकारियों को अपेक्षित अधिकारिता प्राप्त है । दूसरी ओर यदि कोई ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है जोकि अधिनियम के कार्यक्षेत्र से बाहर है अथवा किसी ऐसे मामले के संबंध में है जिसका न्यास संपत्ति के प्रशासन अथवा कब्जे से असंबद्ध है तो सिविल न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त हो सकती है । इस मामले में, मुकदमेबाजी की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, सिविल न्यायालय की अधिकारिता स्पष्ट रूप से वर्जित थी ।"

वर्तमान विवाद में भी प्रत्यर्थियों ने अधिनियम की धारा 72(1) के अधीन सिविल न्यायालय में समावेदन किया और सिविल न्यायालय ने उस पर अधिकारिता का प्रयोग करके सही किया था ।

23. पूर्त आयुक्त के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य की ग्राह्यता से संबंधित प्रश्न पर उच्च न्यायालय द्वारा पर्याप्त रूप से विचार किया गया है और हम उसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं । इस संबंध में उच्च न्यायालय की मताभिव्यक्तियां इस प्रकार हैं : –

> "21. यह सुस्वीकृत है कि यद्यपि पूर्त आयुक्त न्यायालय नहीं होता है, तथापि, प्रक्रिया का अनुपालन सिविल न्यायालय की भांति करना होता है । सिविल प्रक्रिया संहिता में यथा-उपबंधित प्रक्रिया यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होगी । दूसरे शब्दों में, यद्यपि पूर्त आयुक्त को अपनी प्रक्रिया तैयार करने का विवेकाधिकार है तथापि, ऐसे मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन सामान्य प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है । यह उल्लेख करना आवश्यक है कि यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता यथार्थ रूप से लागू नहीं हो सकती है तथापि, दूसरे पक्षकार को प्रत्येक विवाद्यक पर, जिनमें वे दस्तावेज़ भी हैं जो प्रस्तुत किए जाने हैं, प्रतिवाद करने का, अवसर देने के लिए और उसके प्रदर्शित किए जाने के पश्चात् साक्ष्य अधिनियम के अनुसार

उसके प्रमाणक मूल्य का विनिश्चय करने के लिए प्रक्रिया का अनुसरण करना आवश्यक होता है । अतः, यह आवश्यक है कि ऐसे सभी संकल्प आदि अभिलेख पर रखे जाने चाहिए थे, जोकि नहीं किया गया है । इसलिए जो मूल कार्यवाहियों में अभिलेख का भाग गठित नहीं करता था, उसे अपील में स्पष्टीकरण के रूप में जोड़ने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है ।"

अपीलार्थियों ने इस संबंध में **आर. वी. ई. वेंकटचला गौंडर** बनाम **अरुलमिगु विश्वेश्वरास्वामी एंड वी. पी. टैम्पल और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को उद्धृत किया, जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि उच्च न्यायालय द्वारा दस्तावेज़ों की फोटो प्रतियों को अस्वीकार करना गलत था क्योंकि वे मूल प्रतियां नहीं थीं । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, चूंकि पूर्त आयुक्त से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन प्रक्रिया का यथार्थ रूप में पालन करना अपेक्षित नहीं है इसलिए पूर्त आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया गया साक्ष्य तब तक ग्राह्य हो सकता है जब तक कि वे साक्ष्य विधि के मूल सिद्धांतों के विरुद्ध न हों ।

24. अंत में, अपीलार्थियों द्वारा अधिनियम की धारा 22 के अधीन पूर्त आयुक्त की जांच की व्याप्ति के संबंध में उठाए गए प्रश्न का उत्तर देते हुए इस न्यायालय ने **चर्च ऑफ नार्थ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में धारा 22 के अवलोकन पर ठीक ही सरसरी तौर पर दृष्टिपात किया, जिसमें निम्नलिखित उपबंध किया गया है :–

"धारा 22 में ऐसे परिवर्तन के लिए उपबंध किया गया है जो ऐसा परिवर्तन होने की तारीख से 90 दिनों के भीतर समुचित आवेदन करने के लिए धारा 17 के अधीन रखे गए रजिस्टर में अभिलिखित किसी भी प्रविष्टि में हो सकता है । धारा 22 की उपधारा (1क) इस प्रकार है :–

"(1क) जहां उपधारा (1) के अधीन रिपोर्ट किए जाने वाले परिवर्तन का संबंध किसी स्थावर संपत्ति से है वहां न्यासी रिपोर्ट के साथ विहित प्ररूप में एक ज्ञापन धारा 18 की उपधारा (7) में निर्दिष्ट उप-रजिस्ट्रार को अग्रेषित करने के लिए भेजेगा, जिसमें ऐसे लोक न्यास की स्थावर संपत्ति में किसी परिवर्तन से

[1] (2003) 8 एस. सी. सी. 752.

> संबंधित विवरण (जिनमें लोक न्यास के नाम और वर्णन भी शामिल हैं) अंतर्विष्ट हों ।"
>
> 31. धारा 22 की उपधारा (2) उप-पूर्त आयुक्त अथवा सहायक पूर्त आयुक्त को धारा 17 के अधीन रखे गए रजिस्टर में प्रविष्टियों की शुद्धता सत्यापित करने के प्रयोजनार्थ अथवा यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या उसमें अभिलिखित किसी भी विवरण में कोई परिवर्तन हुआ है, जांच कराने के लिए सशक्त है । धारा 17 के अधीन रखे गए रजिस्टर में अभिलिखित प्रविष्टियों में किसी भी प्रविष्टि में परिवर्तन हुआ पाए जाने की दशा में उप-पूर्त आयुक्त अथवा सहायक पूर्त आयुक्त से यह अपेक्षित है कि वह कोई निष्कर्ष लेखबद्ध करे और उस प्रभाव के कारण भी दे । ऐसा आदेश पूर्त आयुक्त के समक्ष अपीलनीय है । उन परिवर्तनों के कारण जोकि हो गए पाए जाते हैं, रजिस्टर में की प्रविष्टियां संशोधित की जानी अपेक्षित होती हैं । परिवर्तन होने पर ऐसा संशोधन अंतिम और निश्चायक होता है ।"

25. इस मामले में तथ्यों और विधि का विश्लेषण करने के पश्चात् हमने यह अवेक्षा की है कि सोसाइटी का यह कर्तव्य है कि वह उसके विघटन के लिए सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 13 के अनुसरण में कदम उठाए । हमने आगे यह भी अवेक्षा की है कि जब तक न्यास में निहित संपत्तियां सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम के अनुसार निर्निहित नहीं की जाती, तब तक केवल परिवर्तन रिपोर्ट/रिपोर्टें फाइल करने मात्र से चर्च ऑफ नार्थ इंडिया चर्चों के विलयन का दावा नहीं कर सकता है और तद्द्वारा यह दावा नहीं कर सकता है कि न्यास में निहित संपत्तियां उनमें निहित हो जाएंगी । हमारी राय में, उठाए गए कदमों से केवल यह स्पष्ट होगा कि संकल्पों का पारित किया जाना और कुछ नहीं है बल्कि विलय करने का आशय दर्शित करने का सूचक है, इसके अलावा कुछ नहीं है । वास्तव में, हमारी राय में नगर सिविल न्यायालय ने यह सही अभिनिर्धारित किया है, जिसकी उच्च न्यायालय ने अभिपुष्टि की है, कि सोसाइटी का कोई विघटन नहीं हुआ था और इसके अलावा विलयन विधि के उपबंधों के अनुसार नहीं किया गया था । इन परिस्थितियों में, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि चूंकि सोसाइटी और न्यास का सृजन कानून द्वारा हुआ था, इसलिए उनके

समामेलन के लिए कानून द्वारा उपबंधित पद्धतियों का अवलंब लेना होगा और तथाकथित विलयन के बारे में यह नहीं माना जा सकता है कि इससे न्यास का विघटन हुआ है या वह न्यास के विघटन को प्रभावी नहीं कर सकता है । तथ्यों के आधार पर हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि विधि के उपबंधों के अनुसार कोई कदम उठाए बिना विधि के अधिकार-क्षेत्र में संकल्पों और बातचीत का प्रभाव स्वीकार्य नहीं है । विबंध का प्रश्न भी रुकावट नहीं बन सकता है क्योंकि उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह इंगित किया है कि संविधान के अधीन आस्था और धर्म के संबंध में गारंटीकृत स्वतंत्रता किसी भी समय नए सिरे से अवलोकन और विचार करने के पश्चात् आस्था और धर्म में परिवर्तन करने के अधिकार को नहीं छीन सकती है और तद्द्वारा उसे विबंध के किसी भी नियम द्वारा आबद्ध नहीं किया जा सकता है । अतः, संकल्प द्वारा संयुक्त एकीकरण की सिफारिश को स्वीकार करने का संकल्प लिया गया है किन्तु यह विघटन के प्रति निर्देश नहीं करता है ।

26. इस मामले में तथ्यों और विधि का विश्लेषण करने के पश्चात् हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय और नगर सिविल न्यायालय ने प्रश्नगत मामले का सही तौर पर न्यायनिर्णयन किया है और पूर्त आयुक्त द्वारा पारित आदेश को अपास्त करके सही किया है ।

27. तद्नुसार, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट करते हैं ।

28. ऊपर दर्शित कारणों से, हम वर्तमान अपीलों में कोई सार नहीं पाते हैं और वे तद्नुसार खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

ग्रो.

ललिता कुमारी

बनाम

उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य

12 नवम्बर, 2013

मुख्य न्यायमूर्ति पी. सतशिवम्, न्यायमूर्ति डा. बी. एस. चौहान, न्यायमूर्ति रंजना प्रकाश देसाई, न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति एस. ए. बोब्डे

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – संज्ञेय मामलों में इत्तिला – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट – यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है तो उसे रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक है और कोई प्रारंभिक जांच अनुज्ञेय नहीं है किन्तु यदि इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता है और उससे जांच की आवश्यकता उपदर्शित होती है तो प्रारंभिक जांच केवल यह अभिनिश्चित करने के लिए की जा सकती है कि क्या संज्ञेय अपराध प्रकट होता है अथवा नहीं ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 [सपठित दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 166-क] – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट – दंड संहिता में धारा 166-क के पुरःस्थापन से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लेखबद्ध करने की अनिवार्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – प्रथम इत्तिला – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है क्योंकि इस धारा में प्रयुक्त "शैल" शब्द पुलिस अधिकारी को प्रथम इत्तिला लेखबद्ध करने से पूर्व प्रारंभिक जांच करने का कोई विवेकाधिकार नहीं देता है और इसमें "इत्तिला" शब्द का किसी विशेषण के बिना प्रयोग करना यह द्योतित करता है कि पुलिस को वह इत्तिला लेखबद्ध करनी होगी भले ही उसकी युक्तियुक्तता या विश्वसनीयता के संबंध में उसका समाधान न हुआ हो ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – प्रथम इत्तिला – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच तभी अनुज्ञेय है यदि इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट नहीं होता है और प्रारंभिक जांच की परिधि, प्राप्त की गई इत्तिला की सत्यता

या अन्यथा को सत्यापित करना नहीं है बल्कि केवल यह अभिनिश्चित करना है कि क्या इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट होता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – संज्ञेय मामलों में इत्तिला – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट – यदि प्रारंभिक जांच की परिणति शिकायत को बन्द करने में होती है तो ऐसी प्रविष्टि की एक प्रति इत्तिलाकर्ता को तत्काल उपलब्ध कराई जानी चाहिए और उसमें शिकायत को बन्द करने और आगे कार्यवाही न करने के कारण भी संक्षेप में दिए जाने चाहिएं ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 [सपठित पुलिस अधिनियम, 1861 (1861 का 5) – धारा 44] – प्रथम इत्तिला का रजिस्ट्रीकृत किया जाना – चूंकि साधारण डायरी/थाना डायरी/दैनिक डायरी किसी पुलिस थाने में प्राप्त की जाने वाली समस्त इत्तिला का अभिलेख होता है इसलिए संज्ञेय अपराधों से संबंधित समस्त इत्तिला, चाहे उसके परिणामस्वरूप प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की जाती है या उसके परिणामस्वरूप कोई जांच की जानी है, उक्त डायरी में आज्ञापक रूप से और सूक्ष्म रूप से प्रतिबिंबित होनी चाहिए और प्रारंभिक जांच करने के विनिश्चय का भी उल्लेख अवश्य ही किया जाना चाहिए ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 21] – प्रारंभिक जांच किए बिना प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करना – चूंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के पश्चात् अन्वेषण करना विधि द्वारा स्थापित एक प्रक्रिया है इसलिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत करने से अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं होगा क्योंकि संहिता में ऐसे पर्याप्त रक्षोपायों का उपबंध है जो मिथ्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कराए जाने की दशा में किसी व्यक्ति की स्वाधीनता को संरक्षण प्रदान करते हैं ।

इस निर्देशित मामले में जो महत्वपूर्ण विवाद्यक विचारार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि क्या कोई पुलिस अधिकारी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) की धारा 154 के अधीन संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित कोई इत्तिला प्राप्त करने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के लिए बाध्य है या पुलिस अधिकारी के पास उसे रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व ऐसी इत्तिला की सत्यता की परीक्षा करने की दृष्टि से प्रारंभिक जांच करने की शक्ति है ? संविधान के अनुच्छेद 32 के

अधीन प्रस्तुत रिट याचिका ललिता कुमारी (अवयस्क) द्वारा अपने पिता के माध्यम से उसकी अवयस्क पुत्री के, जिसका अपहरण किया गया है, संरक्षण के लिए प्रस्तुत प्रत्यर्थियों के विरुद्ध बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट या इसी प्रकृति के निदेश जारी करने के लिए फाइल की गई है । उक्त रिट याचिका में शिकायत यह है कि याची द्वारा तारीख 11 मई, 2008 को संबंधित पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी जिसने उस पर कोई कार्रवाई नहीं की थी । इसके पश्चात्, जब पुलिस अधीक्षक के समक्ष समावेदन किया गया था तब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई थी । याची के अनुसार, इसके पश्चात् भी अभियुक्तों को गिरफ्तार करने या अवयस्क बालिका की बरामदगी के लिए कोई कदम नहीं उठाए गए थे । इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य [(2008) 7 एस. सी. सी. 164] वाले मामले में संपूर्ण देश में भिन्न-भिन्न मामलों के आधार पर पुलिस अधिकारियों द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्टें रजिस्ट्रीकृत करने में बरती जाने वाली विषमता की अवेक्षा करने के पश्चात् भारत संघ, समस्त राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के मुख्य सचिवों और पुलिस महानिदेशकों/पुलिस आयुक्तों को इस आशय की सूचना जारी की कि यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्टें रजिस्ट्रीकृत करने के लिए तुरंत कदम नहीं उठाए गए और उनकी प्रतियां परिवादियों को सौंपी नहीं गईं तो वे संबंधित मजिस्ट्रेटों के समक्ष परिवाद याचिकाएं फाइल करके पुलिस को तुरंत मामला रजिस्ट्रीकृत करने और अभियुक्त व्यक्तियों को गिरफ्तार करने के लिए समुचित निदेश देने के लिए समावेदन कर सकते हैं जिसके न हो सकने पर ऐसे अपचारी पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध, यदि पर्याप्त हेतुक दर्शित नहीं किया जाता है तो अवमान कार्यवाहियां अवश्य आरंभ की जानी चाहिए । उपरोक्त निदेशों के अनुसरण में जब मामले की उसी न्यायपीठ द्वारा ललिता कुमारी वाले उपरोक्त मामले में सुनवाई की गई थी तब याची की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने अपने इस दावे को प्रक्षेपित किया कि किसी पुलिस थाने के भारसाधक पुलिस अधिकारी द्वारा संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली इत्तिला प्राप्त करने पर उसके लिए संहिता की धारा 154 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत करना अपरिहार्य है । दूसरी ओर, महाराष्ट्र राज्य की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी ऐसी इत्तिला प्राप्त करने पर, जिससे कोई संज्ञेय अपराध कारित किया जाना प्रकट होता है, विधि के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत करने के लिए बाध्य नहीं है बल्कि समुचित मामलों में

उसे रिपोर्ट में किए गए दोषारोपणों की सत्यता या अन्यथा के संबंध में किसी प्रकार की प्रारंभिक जांच कराने का विवेकाधिकार प्राप्त है । इस मुद्दे के संबंध में इस न्यायालय के परस्पर-विरोधी विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए उक्त न्यायपीठ ने इसे किसी बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित कर दिया । उपरोक्त निदेश का अनुपालन करते हुए ललिता कुमारी से संबंधित मामले की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [(2012) 4 एस. सी. सी. 1] वाले मामले में सुनवाई की गई थी जिसमें इस न्यायालय ने भारत संघ, राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले विभिन्न काउन्सेलों को सुनने के पश्चात् और सभी परस्पर-विरोधी विनिश्चयों का विस्तारपूर्वक उल्लेख करने के पश्चात् यह मामला एक संविधान पीठ को निर्देशित कर दिया । अतः, इस संविधान पीठ के समक्ष एकमात्र प्रश्न संहिता की धारा 154 के निर्वचन और आनुषंगिक रूप से धारा 156 और धारा 157 पर भी विचार करने से संबंधित है । उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्देश का तदनुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – हमारे देश की दंड विधि प्रक्रिया में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट एक प्रासंगिक दस्तावेज़ है और इत्तिला करने वाले के दृष्टिकोण से इसका मुख्य उद्देश्य दंड विधि को गतिशील बनाना है और अन्वेषक प्राधिकारियों के दृष्टिकोण से अभिकथित दांडिक गतिविधि के बारे में जानकारी अभिप्राप्त करना है ताकि वह दोषी को ढूंढने और उससे पूछताछ करने के लिए उपयुक्त कदम उठाने में समर्थ हो सके । इतिहासपरक अनुभव के आधार पर दोनों पक्षों की ओर से मामलों का उल्लेख किया गया है जिनमें विधिमान्य प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत न किए जाने के पीड़ित/इत्तिलाकर्ता व्यक्ति तथा अभियुक्तों को अनावश्यक रूप से तंग किए जाने और मिथ्या आरोपों की जांच किए जाने की शिकायतें सही पाई गई हैं । (पैरा 23 और 24)

दंड संहिता की धारा 166-क में यह अधिकथित किया गया है कि यदि कोई पुलिस सेवक (पुलिस अधिकारी) धारा 326-क, धारा 326-ख, धारा 354, धारा 354-ख, धारा 370, धारा 370-क, धारा 376, धारा 376-क, धारा 376-ख, धारा 376-ग, धारा 376-घ, धारा 376-ङ या धारा 509 के अधीन दंडनीय संज्ञेय अपराधों के संबंध में संहिता की धारा 154(1) के अधीन उसे दी गई कोई इत्तिला लेखबद्ध करने में असफल रहता है तो उसे उस अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडित किया जाएगा जो छह मास

से कम नहीं होगा किन्तु जो दो वर्ष तक बढ़ाया जा सकेगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा । इस प्रकार, विद्वान् काउन्सेल का पक्षकथन यह है कि इस उपबंध से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना अनिवार्य है और पुलिस अधिकारी के पास उक्त धारा में विनिर्दिष्ट अपराधों से संबंधित मामले में कोई विवेकाधिकार नहीं है । अतः, उसके अनुसार, विधान-मंडल ने यह स्वीकार किया है कि जहां तक अन्य संज्ञेय अपराधों का संबंध है, पुलिस के पास प्रारंभिक जांच करने का तब विवेकाधिकार है यदि इत्तिला की शुद्धता के बारे में कोई संदेह होता है । (पैरा 33)

निर्वचन की प्रत्येक पद्धति में किसी कानून के निर्वचन का सर्वप्रथम और प्रमुख सिद्धांत निर्वचन का शाब्दिक नियम है । प्रारंभ में यह देखना है कि उपबंध में क्या कहा गया है । परिणामस्वरूप, धारा 154 में प्रयुक्त भाषा विधायी आशय का निश्चायक कारक है । संहिता की धारा 154(1) के पठन मात्र से यह उपबंधित है कि संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी । संहिता की धारा 154(1) की भाषा में कोई संदिग्धता नहीं है । (पैरा 36)

संहिता की धारा 154(1) में "शैल" शब्द का प्रयोग करने से यह विधायी आशय स्पष्टतः दर्शित होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक है यदि पुलिस को दी गई इत्तिला से संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट होता है । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि संहिता की धारा 154(1) के संदर्भ में "शैल" शब्द का प्रयोग करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पुलिस द्वारा सभी संज्ञेय अपराधों से संबंधित समस्त इत्तिला तुरंत रजिस्ट्रीकृत की जाए और विधि के उपबंधों के अनुसार उनका अन्वेषण किया जाए । अपराधों का अन्वेषण और अपराधियों का अभियोजन राज्य के कर्तव्य हैं । "संज्ञेय अपराधों" के लिए पुलिस पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने और संहिता की धारा 157 के अधीन विनिर्दिष्ट रूप से अन्यथा अनुज्ञात के सिवाय अन्वेषण करने का कर्तव्य डाला गया है । यदि पुलिस को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के मामले में कोई विवेकाधिकार, विकल्प या ढील अनुज्ञात की जाती है तो इससे लोक व्यवस्था की स्थिति में गंभीर परिणाम हो सकते हैं और इससे पीड़ितों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है जिसमें उनके समानता के

मूल अधिकार का अतिक्रमण भी है । अतः, वह संदर्भ जिसमें संहिता की धारा 154(1) में "शैल" शब्द प्रकट होता है, वह उद्देश्य जिसके लिए इसका प्रयोग किया गया है और वे परिणाम जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के निदेश का अतिलंघन करने से निकलेंगे, इन सभी कारकों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि धारा 154(1) में प्रयुक्त "शैल" शब्द को उसका साधारण अर्थ दिए जाने की आवश्यकता है क्योंकि उसका स्वरूप आज्ञापक है । संहिता की धारा 154(1) के उपबंधों का कानूनी स्कीम के प्रकाश में पठन करने पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच आरंभ करने के लिए कोई विवेकाधिकार प्रदान करने की गुंजाइश नहीं है । विधि की यह स्थापित स्थिति है कि यदि उपबंध असंदिग्ध है और विधायी आशय स्पष्ट है तो न्यायालय को अर्थान्वयन के किसी अन्य नियम को लागू करने की आवश्यकता नहीं है । उपरोक्त कारणों से संहिता की धारा 154(1) में इस संबंध में कोई संदिग्धता नहीं है और वह स्पष्ट निबंधनों में है । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि संहिता की धारा 39 प्रत्येक व्यक्ति पर कतिपय अपराध किए जाने के बारे में इत्तिला देने का कानूनी कर्तव्य अधिरोपित करती है जिनमें भारतीय दंड संहिता की धारा 121 से 126, 302, 64-क, 382, 392 इत्यादि के अंतर्गत आने वाले अपराध शामिल हैं । यह सुझाव देना असंगत होगा कि यद्यपि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह कोई अपराध किए जाने के बारे में इत्तिला दे किन्तु पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के लिए यह बाध्यकर नहीं है कि वह रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करे । संहिता की धारा 39 में आने वाले "शैल" शब्द को वही अर्थ दिया जाना है जो कि संहिता की धारा 154(1) में आने वाले "शैल" शब्द को दिया जाता है । (पैरा 40, 42, 43, 44 और 46)

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, वास्तव में वह इत्तिला है जो सबसे पहले प्राप्त होती है जो कि या तो लिखित में दी जाती है या लेखबद्ध की जाती है । राज्य सरकार द्वारा विहित डायरी में इसके केवल "सार" की प्रविष्टि नहीं की जाती है । "साधारण डायरी" (जो कि कुछ राज्यों में "थाना डायरी" या "दैनिक डायरी" के रूप में जानी जाती है) संहिता की धारा 154 के अधीन नहीं रखी जाती है बल्कि वह यथास्थिति, पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 44 के अधीन उन राज्यों में जिन्हें यह लागू होती है या किसी राज्य को लागू पुलिस अधिनियम के संबंधित उपबंधों के अधीन या किसी राज्य के पुलिस मैनुअल के अधीन रखी जाती है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का

रजिस्ट्रीकरण एक पुस्तक में जिसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक या प्रथम इत्तिला रजिस्टर कहा जाता है, करना होता है । निस्संदेह, इसके अलावा, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के सारांश या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के सार का उल्लेख इसके साथ-साथ सुसंगत राज्य उपबंधों के अधीन यथास्थिति, संबंधित पुलिस अधिनियम या नियमों में आदिष्ट साधारण डायरी में भी किया जा सकता है । साधारण डायरी किसी पुलिस थाने में होने वाले सभी महत्वपूर्ण संव्यवहारों/घटनाओं का अभिलेख है, जिसमें पुलिस कर्मचारियों का आना-जाना, कार्यभार का सौंपना या ग्रहण करना, किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी, विधि और व्यवस्था संबंधी कर्तव्यों के ब्यौरे, वरिष्ठ अधिकारियों के दौरे, इत्यादि भी हैं । इसी संदर्भ में ही पुलिस थाने में रजिस्ट्रीकृत की जा रही प्रत्येक प्रथम इत्तिला के सारांश या सार का उल्लेख भी साधारण डायरी में होता है चूंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना पुलिस थाने की बहुत महत्वपूर्ण घटना होती है । चूंकि साधारण डायरी एक ऐसा अभिलेख है जो कालानुक्रम में दैनिक आधार पर रखा जाता है (प्रत्येक दिन नए संख्यांक 1 से आरंभ होकर), इसलिए साधारण डायरी प्रविष्टि निर्देश का भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में साथ-साथ उल्लेख किया जाता है चूंकि ये दोनों एक साथ तैयार की जाती हैं । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक वार्षिक आधार पर दिए गए उसके संख्यांक सहित रखी जाती है । इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को दिया जाने वाला एक विशिष्ट वार्षिक संख्यांक होता है । यह उसी तरीके से होता है जैसे न्यायालयों में मामला संख्यांक दिए जाते हैं । इसी कारण, जहां कहीं भी आवश्यक हो, पर्यवेक्षी पुलिस अधिकारियों द्वारा और न्यायालयों द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्टों के रजिस्ट्रीकरण पर कड़ा नियंत्रण और नजर रखना संभव होता है । प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति वरिष्ठ अधिकारियों और संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजी जाती है । जैसे ही पुलिस थाने में शिकायत दी जाती है, शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर प्रथम इत्तिला पुस्तक में अभिप्राप्त किए जाते हैं । दूसरी ओर, साधारण डायरी में शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर अभिप्राप्त करने की ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है । इसके अलावा, कभी-कभी की गई शिकायत में पृष्ठों की संख्या काफी हो सकती है, इस दशा में साधारण डायरी में शिकायत का सारांश न कि पूरी शिकायत लेखबद्ध की जाती है । यह इस सुझाव से मेल नहीं खाता है कि साधारण डायरी में जो कुछ लेखबद्ध किया जाता है उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने संबंधी धारा 154 की अपेक्षा का पूरा किया जाना/अनुपालन समझा जाना चाहिए । वास्तव में, प्रायिक प्रक्रिया संपूर्ण शिकायत को प्रथम इत्तिला

रिपोर्ट की पुस्तक में लेखबद्ध करना है (या उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्ररूप के साथ उपाबद्ध करना है) किन्तु साधारण डायरी में लगभग एक या दो पैराग्राफ (इत्तिला का सारांश) ही लेखबद्ध करना है । (पैरा 48, 54, 55, 56 और 58)

यदि संहिता की धारा 154 और पुलिस अधिनियम की धारा 44 के उपबंधों में इस तथ्य के बारे में कोई विसंगति है कि क्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक में रजिस्ट्रीकृत की जानी है अथवा साधारण डायरी में रजिस्ट्रीकृत की जानी है, तो संहिता की धारा 154 के उपबंध अभिभावी होंगे और पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 44 के उपबंध (या अन्य संबंधित राज्यों में संबंधित तत्स्थानी पुलिस अधिनियम या नियमों के उपबंध) विरोध की सीमा तक शून्य होंगे । इस प्रकार, जैसा कि संहिता की धारा 154 के अधीन आदिष्ट है, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक में लेखबद्ध की जानी चाहिए और यह कहना सही नहीं है कि इत्तिला पहले साधारण डायरी में लेखबद्ध की जाएगी और प्रारंभिक जांच के पश्चात् ही, यदि अपेक्षित हो, इत्तिला प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत की जाएगी । अतः, यह असंदिग्ध रूप से स्पष्ट है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है और यह भी कि इसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक में प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को विशिष्ट वार्षिक संख्यांक देकर लेखबद्ध किया जाना होता है जिससे कि वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों द्वारा तथा सक्षम न्यायालय द्वारा, जिसे प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति भेजी जानी आवश्यक है, उसका यथार्थतः पता लगाया जा सके । (पैरा 61 और 63)

विधान-मंडल ने धारा 41(1)(क) और (छ) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति के मुकाबले, जहां किसी व्यक्ति को वारंट के बिना गिरफ्तार करने के लिए प्रयोग की गई अभिव्यक्ति "युक्तियुक्त परिवाद" या "विश्वसनीय इत्तिला" है, संहिता की धारा 154(1) में सोचसमझकर "इत्तिला" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया है । संहिता की धारा 154(1) के अधीन अभिव्यक्ति को आगे "युक्तियुक्त" या "विश्वसनीय" शब्द से विशेषित नहीं किया गया है । संहिता की धारा 41(1)(क) और (छ) की तरह धारा 154(1) में "इत्तिला" शब्द को अविशेषित करने का कारण यह है कि पुलिस अधिकारी को संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित किसी इत्तिला को इस आधार पर लेखबद्ध करने से इनकार नहीं करना चाहिए कि इत्तिला की युक्तियुक्तता या विश्वसनीयता के संबंध में उसका समाधान नहीं हुआ है । दूसरे शब्दों में,

उक्त इत्तिला की युक्तियुक्तता या विश्वसनीयता किसी मामले को रजिस्ट्रीकृत करने की पूर्व-शर्त नहीं है । (पैरा 64)

संहिता की धारा 154 में प्रयुक्त भाषा के निबंधनानुसार पुलिस संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में इत्तिला (अर्थात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट) प्राप्त किए बिना भी ऐसे अपराध का अन्वेषण करने की कार्यवाही करने के लिए कर्तव्यबद्ध है यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को अन्यथा ऐसा कोई अपराध किए जाने का संदेह होता है । अतः, विधायी आशय पूर्णतः स्पष्ट है, अर्थात्, यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक संज्ञेय अपराध के संबंध में विधि के अनुसार तत्परता से अन्वेषण किया जाए । यह विधिक स्थिति होने के कारण इस संबंध में कोई कारण नहीं है पुलिस के पास प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने या न करने का कोई विवेकाधिकार या विकल्प होना चाहिए जब कि संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में इत्तिला दी जाती है । प्रत्येक संज्ञेय अपराध का तत्परता से अन्वेषण किया जाना चाहिए और संहिता की धारा 154 के अधीन संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में दी गई समस्त जानकारी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत की जानी चाहिए जिससे कि अपराध के संबंध में कार्यवाही आरंभ की जा सके । संहिता की धारा 154 की अपेक्षा केवल यह है कि रिपोर्ट से संज्ञेय अपराध का किया जाना अवश्य प्रकट होना चाहिए और अन्वेषक मशीनरी को गतिशील बनाने के लिए यही पर्याप्त है । धारा 154 की उपधारा (3) को संशोधन द्वारा अंतःस्थापित करने से विधान-मंडल का यह सुनिश्चित करने का आशय प्रकट होता है कि संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में किसी भी इत्तिला को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए या उस पर ऐसी कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए जिसके परिणामस्वरूप अभिकथित आरोपी/अपराधी को अन्यायोचित्यपूर्ण संरक्षण प्राप्त होगा । अतः, संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के पश्चात् अपराध का अन्वेषण करना "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" है और इस प्रकार वह संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुरूप है । तदनुसार, संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन अभियुक्त के अधिकार को संरक्षण प्राप्त हो जाता है यदि सबसे पहले प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की जाती है और उसके बाद विधि के उपबंधों के अनुसार अन्वेषण किया जाता है । यह स्पष्ट है कि संहिता के अधीन जांच का संबंध न्यायिक कृत्य से है न कि पुलिस द्वारा उठाए जाने वाले उन कदमों से है जो या तो संहिता की धारा 154 के प्रक्रम के पश्चात् अन्वेषण करना है जिसे प्रारंभिक जांच कहा जाता है और

जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पहले उठाए जाते हैं भले ही साधारण डायरी/थाना डायरी/दैनिक डायरी में कोई प्रविष्टि नहीं की गई है । (पैरा 73, 74, 76 और 77)

सर्वप्रथम प्राप्त इत्तिला को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत करके प्राप्त किया जाने वाला उद्देश्य अन्य बातों के साथ-साथ दोहरा है : एक यह कि दांडिक प्रक्रिया गतिशील हो जाती है और वह आरंभ से ही भली प्रकार प्रलेखित होती है और दूसरा यह कि कोई संज्ञेय अपराध किए जाने के संबंध में प्राप्त सर्वप्रथम इत्तिला लेखबद्ध की जाती है जिससे कि बाद में कोई अतिरंजन न हो । लोकतंत्र और स्वाधीनता के सिद्धांत पुलिस शक्तियों पर नियमित और पर्याप्त नियंत्रण की मांग करते हैं । ऐसी शक्तियों वाले प्राधिकारियों पर नियंत्रण रखने का एक तरीका उनके प्रत्येक कार्य को प्रलेखित करना है । तदनुसार, संहिता के अधीन पुलिस के कार्य इत्यादि को लिखने और प्रलेखित करने के उपबंध किए गए हैं । (पैरा 83 और 84)

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण का आधार न केवल दांडिक न्याय परिदान प्रणाली में पारदर्शिता सुनिश्चित करना है बल्कि न्यायिक दूरदर्शिता सुनिश्चित करना भी है । धारा 157(1) में "तत्काल" शब्द का प्रयोग किया गया है । इस प्रकार, धारा 154(1) के अधीन या अन्यथा प्राप्त किसी इत्तिला की सम्यक् जानकारी मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट के रूप में की जानी होगी । इस प्रकार संज्ञेय अपराध किए जाने की जानकारी न केवल अन्वेषक अभिकरण को बल्कि अधीनस्थ न्यायपालिका को भी की जाती है । संहिता में दो किस्म की प्रथम इत्तिला रिपोर्टें अनुध्यात हैं । धारा 154(1) के अधीन सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट इत्तिलाकर्ता द्वारा पुलिस थाने के संबंधित अधिकारी को की जाती है । दूसरी किस्म की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट वह हो सकती है जो पुलिस द्वारा स्वयं प्राप्त किसी इत्तिला द्वारा या किसी इत्तिलाकर्ता से भिन्न किसी माध्यम से रजिस्ट्रीकृत की जाती है [धारा 157(1)] और यह इत्तिला भी सम्यक् रूप से लेखबद्ध करनी होती है और इसकी प्रति तत्काल मजिस्ट्रेट को भेजी जानी चाहिए । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का या तो संहिता की धारा 154(1) के अधीन इत्तिलाकर्ता द्वारा दी गई इत्तिला के आधार पर या अन्यथा संहिता की धारा 157(1) के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया जाना बाध्यकर है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने की बाध्यता में ये लाभ अंतर्निहित हैं : (क) यह किसी पीड़ित व्यक्ति के लिए न्याय तक पहुंच का

पहला कदम है । (ख) इससे "विधि का शासन" कायम होता है चूंकि एक साधारण व्यक्ति संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में जानकारी राज्य को प्रकट करता है । (ग) इससे द्रुत अन्वेषण और कभी-कभी अपराध का निवारण भी सुकर होता है । दोनों दशाओं में इससे विधि व्यवस्था कार्यान्वित होती है । (घ) इसके परिणामस्वरूप दांडिक मामलों में छलसाधन में कमी आती है और पूर्व-दिनांकित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या जानबूझकर विलंबित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की घटनाओं में कमी आती है । (पैरा 86, 87 और 88)

उद्देश्यों और कारणों के कथन के अनुसार गरीबों के हितों का संरक्षण करना स्पष्ट रूप से संहिता के मुख्य उद्देश्यों में से एक है । कोई संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित इत्तिला को रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक बनाना समाज के लिए, विशेष रूप से देश के ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों के लिए सहायक होगा । (पैरा 92)

अपराध को दबाए जाने के परिणामस्वरूप अल्पकालिक रूप से विधिसम्मत शासन का तनुकरण होता है और दीर्घकालिक रूप से इसका विधिसम्मत शासन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है क्योंकि लोग विधिसम्मत शासन का सम्मान करना बन्द कर देते हैं । इस प्रकार, इतनी बड़ी संख्या में प्रथम इत्तिला रिपोर्टों का रजिस्ट्रीकृत न किए जाने के परिणामस्वरूप समाज में एक निश्चित अराजकता पैदा हो जाती है । अतः, धारा 154 का किसी अन्य रूप में पठन करना न केवल समिति की स्कीम के लिए अहितकर होगा बल्कि व्यापक रूप से समाज के लिए भी अहितकर होगा । इस प्रकार यह दृष्टव्य है कि इस न्यायालय ने विभिन्न विनिश्चित मामलों में बारंबार यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक है यदि पुलिस को संहिता की धारा 154 के अधीन दी गई इत्तिला से किसी संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है । (पैरा 95 और 96)

प्रारंभिक जांच के समर्थन में दिया गया उद्दीपित करने वाला एक अन्य तर्क यह है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आज्ञापक रजिस्ट्रीकरण के परिणामस्वरूप मनमानी गिरफ्तारी होगी जिससे प्रत्यक्षतः संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा । जबकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है, किन्तु अभियुक्त को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने पर तुरंत गिरफ्तार करना बिल्कुल भी अनिवार्य नहीं है । वास्तव में, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना और

अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाना विधि के अधीन दो पूर्णतः भिन्न-भिन्न संकल्पनाएं हैं और गिरफ्तारी के विरुद्ध अनेक रक्षोपाय उपलब्ध हैं । इसके अलावा, यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि अभियुक्त व्यक्ति के पास संहिता की धारा 438 के उपबंधों के अधीन अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का अधिकार भी है यदि उसमें उल्लिखित शर्तें पूरी होती हैं । इस प्रकार, समुचित मामलों में, वह न्यायालय के आदेश प्राप्त करके उस उपबंध के अधीन गिरफ्तारी से बच सकता है । संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना और धारा 41 के अधीन अभियुक्त व्यक्ति का गिरफ्तार किया जाना, ये दोनों पूर्णतः भिन्न-भिन्न बातें हैं । यह कहना सही नहीं है कि केवल इस कारण कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई है इसलिए अभियुक्त व्यक्ति को तुरंत गिरफ्तार किया जा सकता है । यह काल्पनिक भय है कि मात्र इस कारण कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई है, इसलिए अभियुक्त को गिरफ्तार किया जाना अपेक्षित होगा और इसके परिणामस्वरूप उसकी प्रतिष्ठा की हानि होगी और इस न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्तियों को इस प्रकार परेशानी से बचाने के लिए यह अभिनिर्धारित करना अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक नहीं है । इसका उपचार उन रक्षोपायों को कड़ाई से प्रवर्तित कराने में निहित है जो पुलिस द्वारा की गई मनमानी गिरफ्तारियों के विरुद्ध उपलब्ध हैं न कि पुलिस को तब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आज्ञापक रजिस्ट्रीकरण से बचाने के लिए अनुज्ञात करने में निहित है जब इत्तिला से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है । (पैरा 97, 98 और 100)

संहिता में पुलिस को अन्वेषण से पूर्व या उसके पश्चात् दोनों दशाओं में मामले को बन्द करने की शक्ति दी गई है । कोई पुलिस अधिकारी संहिता की धारा 157 के अधीन अन्वेषण से पूर्ण किसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को पुरोबंध कर सकता है यदि उसे यह प्रतीत होता है कि उसका अन्वेषण करने का कोई पर्याप्त आधार नहीं है । इस धारा में ही यह कहा गया है कि कोई पुलिस अधिकारी अन्वेषण आरंभ कर सकता है जब उसके पास कोई अपराध किए जाने का संदेह करने का कारण हो । इसलिए, संहिता की धारा 157 के अधीन अन्वेषण करने की अपेक्षाएं संहिता की धारा 154 के अधीन अपेक्षाओं से अधिक हैं । पुलिस अधिकारी किसी विशेष मामले में मामले का अन्वेषण कर सकता है और उसके बाद मामले को बन्द करने की ईप्सा करते हुए संहिता की धारा 173 के अधीन अंतिम रिपोर्ट फाइल कर सकता है । इसलिए, पुलिस प्रत्येक ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में जो

संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित इत्तिला प्राप्त होने पर आज्ञापक रूप से रजिस्ट्रीकृत की जाती है, अन्वेषण आरंभ करने के लिए दायी नहीं है । (पैरा 102)

यह सही है कि समाज के हित और किसी व्यष्टि की स्वाधीनता को संरक्षित करने के बीच एक सूक्ष्म संतुलन बनाए रखना होगा । जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, संहिता में पहले ही ऐसे पर्याप्त रक्षोपायों का उपबंध किया गया है जो मिथ्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कराने की दशा में किसी व्यष्टि की स्वाधीनता को सम्यक् रूप से संरक्षा प्रदान करते हैं । इसके साथ-साथ, धारा 154 पीड़ित व्यक्ति और समाज के हितों को ध्यान में रखते हुए प्रारूपित की गई थी । अतः, हमारा यह सशक्त मत है कि संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला का अनिवार्यतः रजिस्ट्रीकृत किया जाना, जैसा विभिन्न काउन्सेलों द्वारा अर्थ लगाया गया है, संविधान के अनुच्छेद 21 के उल्लंघन में नहीं होगा । (पैरा 105)

अतः, रजिस्ट्रीकृत करने या रजिस्ट्रीकृत न करने के संबंध में विभिन्न परस्पर विरोधी दावों को ध्यान में रखते हुए केवल इतना आवश्यक है कि पुलिस को दी गई इत्तिला से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होना चाहिए । ऐसी स्थिति में, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है । तथापि, यदि दी गई इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध साबित नहीं होता है तो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को तुरंत रजिस्ट्रीकृत करना आवश्यक नहीं है और संभवतः पुलिस यह अभिनिश्चित करने के सीमित प्रयोजन के लिए कि क्या कोई संज्ञेय अपराध किया गया है अथवा नहीं, किसी प्रकार का प्रारंभिक सत्यापन या जांच कर सकती है । किन्तु यदि दी गई इत्तिला में स्पष्ट रूप से किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने का उल्लेख होता है तो तत्काल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं होता है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किए जाने के प्रक्रम पर अन्य विचारणाएं सुसंगत नहीं हैं, जैसे क्या इत्तिला मिथ्या रूप से दी गई है, क्या इत्तिला सही है, क्या इत्तिला विश्वसनीय है, इत्यादि । ये ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अन्वेषण के दौरान सत्यापित किया जाना है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के प्रक्रम पर केवल यह देखा जाना है कि क्या दी गई इत्तिला प्रत्यक्षतः संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट करती है । यदि अन्वेषण के पश्चात् दी गई इत्तिला मिथ्या पाई जाती है तो परिवादी को मिथ्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल करने के लिए अभियोजित करने का सदैव विकल्प रहता है । (पैरा 110)

अतः यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि – (i) संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है यदि इत्तिला से किसी संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है और ऐसी स्थिति में कोई प्रारंभिक जांच अनुज्ञेय नहीं है । (ii) यदि इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता है किन्तु उससे जांच की आवश्यकता उपदर्शित होती है तो प्रारंभिक जांच केवल यह अभिनिश्चित करने के लिए की जा सकती है कि क्या संज्ञेय अपराध प्रकट होता है अथवा नहीं । (iii) यदि जांच से कोई संज्ञेय अपराध किया गया प्रकट होता है तो प्रथम इत्तिला अवश्य रजिस्ट्रीकृत की जानी चाहिए । ऐसे मामलों में, जहां प्रारंभिक जांच का अंत परिवाद को बन्द करने से होता है वहां ऐसे बन्द करने की प्रविष्टि की प्रति प्रथम इत्तिलाकर्ता को तत्काल किन्तु एक सप्ताह के अपश्चात् प्रदत्त की जानी चाहिए । इसमें परिवाद को बन्द करने और उस पर आगे कार्यवाही न करने के कारण संक्षेप में प्रकट किए जाने चाहिएं । (iv) पुलिस अधिकारी अपराध रजिस्ट्रीकृत करने संबंधी अपने कर्तव्य से तब बच नहीं सकता है यदि संज्ञेय अपराध प्रकट होता है । ऐसे दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई अवश्य की जानी चाहिए जो तब भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत नहीं करते हैं यदि उनके द्वारा प्राप्त इत्तिला से संज्ञेय अपराध प्रकट होता है । (v) प्रारंभिक जांच की परिधि, प्राप्त की गई इत्तिला की सत्यता या अन्यथा को सत्यापित करना नहीं है बल्कि केवल यह अभिनिश्चित करना है कि क्या इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट होता है । (vi) यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि किस प्रकार की और किन मामलों में प्रारंभिक जांच की जानी है । उन मामलों के प्रवर्ग, जिनमें प्रारंभिक जांच की जा सकती है, ये हैं – (क) विवाह-विषयक विवाद/कौटुम्बिक विवाद (ख) वाणिज्यिक अपराध (ग) चिकित्सीय उपेक्षा वाले मामले (घ) भ्रष्टाचार के मामले (ङ) ऐसे मामले, जिनमें दांडिक अभियोजन आरंभ करने में असामान्य विलंब/अतिविलंब किया गया है, उदाहरणार्थ, मामले के संबंध में रिपोर्ट करने में हुए विलंब के लिए कारणों को समाधानप्रद रूप से स्पष्ट किए बिना तीन मास से अधिक का विलंब होता है । उपर्युक्त मामले केवल दृष्टांतस्वरूप हैं और इससे वे स्थितियां निःशेष नहीं हो गई हैं जिनमें प्रारंभिक जांच आवश्यक हो सकती है । (vii) अभियुक्त और परिवादी के अधिकारों को सुनिश्चित और संरक्षित करते हुए प्रारंभिक जांच समयबद्ध की जानी चाहिए और किसी भी दशा में इसकी अवधि सात दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए । ऐसे विलंब संबंधी तथ्य और उनके कारण साधारण

डायरी प्रविष्टि में प्रतिबिंबित किए जाने चाहिएं । (viii) चूंकि साधारण डायरी/थाना डायरी/दैनिक डायरी किसी पुलिस थाने में प्राप्त की जाने वाली समस्त इत्तिला का अभिलेख होता है इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि संज्ञेय अपराधों से संबंधित समस्त इत्तिला, चाहे उसके परिणामस्वरूप प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की जाती है या उसके परिणामस्वरूप कोई जांच की जानी है, उक्त डायरी में आज्ञापक रूप से और सूक्ष्म रूप से प्रतिबिंबित होनी चाहिए और प्रारंभिक जांच करने का विनिश्चय भी, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अवश्य ही प्रतिबिंबित होना चाहिए । (पैरा 111)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 4 एस. सी. सी. 1 : **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	5
[2011]	(2011) 4 एस. सी. सी. 266 : **बी. प्रेमानंद और अन्य** बनाम **मोहन कोइकल और अन्य** ;	9,12,37
[2011]	(2011) 3 एस. सी. सी. 758 : **अशोक कुमार टोडी** बनाम **किश्वर जहां और अन्य** ;	13
[2011]	(2011) 3 एस. सी. सी. 496 : **मोना पनवर** बनाम **इलाहाबाद उच्च न्यायालय** ;	71
[2011]	(2011) 1 एस. सी. सी. 577 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सारंगधर सिंह शिवदास सिंह चव्हाण और एक अन्य** ;	25,71
[2010]	(2010) 7 एस. सी. सी. 667 : **प्रीति गुप्ता** बनाम **झारखंड राज्य** ;	27,70
[2010]	(2010) 3 एस. सी. सी. 571 : **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **कमेटी फार प्रोटेक्शन आफ डैमोक्रेटिक राइट्स, पश्चिमी बंगाल** ;	12
[2008]	(2008) 14 एस. सी. सी. 337 : **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** ;	4
[2008]	(2008) 7 एस. सी. सी. 164 : **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य** ;	3

[2007]	(2007) 10 एस. सी. सी. 69 : **राजेन्द्र सिंह कटोच** बनाम **चंडीगढ़ प्रशासन** ;	4,11,12
[2007]	(2007) 6 एस. सी. सी. 171 : **एलेक पदमासी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	10,11,12, 17,18,26
[2007]	(2007) 1 एस. सी. सी. 630 : **शशिकांत** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** ;	4,11,13,71
[2007]	(2007) 1 एस. सी. सी. 1 : **प्रकाश सिंह बादल** बनाम **पंजाब राज्य** ;	4,16,17,18,66
[2006]	(2006) 12 एस. सी. सी. 229 : **लल्लन चौधरी और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य** ;	10,12,69
[2006]	(2006) 2 एस. सी. सी. 677 : **रमेश कुमारी** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली)** ;	4,10,11,12 16,17,18,67
[2005]	(2005) 6 एस. सी. सी. 1 : **जैकब मैथ्यु** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य** ;	11,20,107
[2005]	(2005) 5 एस. सी. सी. 294 : **रंजीतसिंह ब्रह्मजीतसिंह शर्मा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	70
[2005]	(2005) 1 एस. सी. सी. 496 : **जिला रजिस्ट्रार और कलक्टर, हैदराबाद** बनाम **केनरा बैंक** ;	70
[2004]	(2004) 6 एस. सी. सी. 626 : **ललित मोहन पांडे** बनाम **पूरन सिंह** ;	20
[2003]	(2003) 6 एस. सी. सी. 195 : **भारत संघ** बनाम **प्रकाश पी. हिन्दूजा** ;	13
[2003]	(2003) 6 एस. सी. सी. 175 : **पुलिस अधीक्षक, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** बनाम **तपन कुमार सिंह** ;	12,17,20, 62,71,90,109

[2002]	(2002) 3 एस. सी. सी. 533 : **पदम सुन्दर राव (मृत) और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य** ;	13
[2002]	2002 क्रिमिनल ला जर्नल 2113 : **गिरधारी लाल कनक** बनाम **राज्य और अन्य** ;	16
[2002]	2002 (2) क्राइम्स 143 : **कट्टेरी मोइद्दीन कुट्टी हाजी** बनाम **केरल राज्य** ;	16
[2001]	(2001) 9 एस. सी. सी. 581 : **मोहिन्द्रो** बनाम **पंजाब राज्य** ;	16
[1999]	(1999) 6 एस. सी. सी. 667 : **कामन काज़, एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी** बनाम **भारत संघ** ;	70
[1998]	(1998) 1 एस. सी. सी. 226 : **विनीत नारायण** बनाम **भारत संघ** ;	71
[1997]	(1997) 8 एस. सी. सी. 476 : **मधु बाला** बनाम **सुरेश कुमार** ;	53,91
[1997]	(1997) 1 एस. सी. सी. 416 : **डी. के. बसु** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	70
[1996]	(1996) 11 एस. सी. सी. 714 : **उमा शंकर सितानी** बनाम **पुलिस आयुक्त,** **दिल्ली और अन्य** ;	70
[1994]	(1994) 4 एस. सी. सी. 260 : **जोगिन्दर कुमार** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	99
[1992]	1992 क्रिमिनल ला जर्नल 1558 : **मुन्ना लाल** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** ;	16
[1991]	[1991] 2 उम. नि. प. 812 = (1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 335 : 4,10,11,12,13 **हरियाणा राज्य** बनाम **भजन लाल** ;	16,17,18,38,53,65
[1990]	(1990) 1 एस. सी. सी. 328 : **एस. एम. डी. किरन पाशा** बनाम **आन्ध्र प्रदेश सरकार** ;	70

[1985]	(1985) 1 एस. सी. सी. 552 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **राम सागर यादव और अन्य** ;	71
[1983]	(1983) एल. डब्ल्यू. (क्रि.) 121 : **एलूमलाई** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	71
[1981]	(1981) सप्ली. एस. सी. सी. 630 : **सेवी** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	4,11,17,19,71
[1981]	(1981) 1 एस. सी. सी. 608 : **फ्रांसिस कोराली मुलिन** बनाम **प्रशासक, दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र** ;	70
[1980]	[1980] 1 उम. नि. प. 321 = (1979) 2 एस. सी. सी. 322 : **राम लाल नारंग** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** ;	10,68
[1978]	(1978) 4 एस. सी. सी. 371 : **गणेश भवन पटेल और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	10
[1978]	(1978) 1 एस. सी. सी. 248 : **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ** ;	19,70,104
[1977]	(1977) 2 एस. सी. सी. 256 : **अध्यक्ष, खनन परीक्षा बोर्ड और खान मुख्य-निरीक्षक और एक अन्य** बनाम **रामजी** ;	20
[1975]	(1975) 2 एस. सी. सी. 482 : **गोविन्दलाल छगनलाल पटेल** बनाम **कृषि उपज विपणन समिति, गोधरा और अन्य** ;	9
[1974]	(1974) 4 एस. सी. सी. 3 : **ई. पी. रायप्पा** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	70
[1973]	(1973) 3 एस. सी. सी. 114 : **एप्रेन जोसेफ** बनाम **केरल राज्य** ;	71
[1973]	(1973) 1 एस. सी. सी. 216 : **मैसर्स हीरालाल रतनलाल और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	9,12,37

[1972]	(1972) 4 एस. सी. सी. 773 : **शेख हसीब** उर्फ **तबारक** बनाम **बिहार राज्य** ;	13
[1972]	(1972) 3 एस. सी. सी. 393 : **थुलिया काली** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	89
[1971]	ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 186 : **ए. लक्ष्मणराव** बनाम **न्यायिक मजिस्ट्रेट, पार्वतीपुरम** ;	71
[1970]	(1970) 1 एस. सी. सी. 653 : **एस. एन. शर्मा** बनाम **बिपन कुमार तिवारी** ;	13
[1970]	(1970) 1 एस. सी. सी. 595 : **पी. सिराजुद्दीन** बनाम **मद्रास राज्य** ;	4,11,12,13, 17,19,71,108
[1967]	ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1074 : **खूब चन्द** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	12,41
[1967]	ए. आई. आर. 1967 कलकत्ता 478 : **मन्नालाल खटिक** बनाम **राज्य** ;	13
[1964]	[1964] 4 एस. सी. आर. 69 : **प्रतिव बोस** बनाम **कुमार रुपेन्द्र देव रायकट** ;	20
[1964]	[1964] 3 एस. सी. आर. 71 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **भगवन्त किशोर जोशी** ;	11,12, 13,17,19,71
[1955]	ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 196 : **एच. एन. ऋषब्द और इंदर सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य** ;	13
[1949]	ए. आई. आर. 1949 मद्रास 663 : **सुब्बारत्नम और अन्य के संदर्भ में** ;	17
[1945]	ए. आई. आर. 1945 प्रिवी कौंसिल 18 : **किंग एम्परर** बनाम **ख्वाजा नाज़िर अहमद** ।	71

आरंभिक (दांडिक) अधिकारिता : **2008 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 68, 2006 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 5986, 2009 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 5200, 2011 की दांडिक अपील सं. 1410, 2007 की दांडिक अपील सं. 1267 तथा 2008 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 68 में 2008 की अवमान याचिका (सिविल) सं. डी. 26722.**

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिकाएं ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री मोहन पराशरन, महासालिसिटर, के. वी. विश्वनाथन, ए. एस. चंडियोक, सिद्धार्थ लूथरा, अपर महासालिसिटर, एस. बी. उपाध्याय, आर. के. दास, (सुश्री) विभा दत्त मखीजा, शेखर नफादे, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) कृष्णा सरमा, वी. मधुकर, सुब्रमण्यम् प्रसाद, मंजीत सिंह, डा. मनीष सिंघवी, अपर महाधिवक्ता, (श्रीमती) मोना के. राजवंशी, बी. के. शाही, अनुराग कश्यप, बी. पी. गुप्ता, अश्विनी कुमार, जी. शिवाबालामुरुगन, अनीस मोहम्मद, दयानंदन पांडेय, एल. के. पांडेय, अभिजात पी. मेध, (सुश्री) शालू शर्मा, सुदर्शन सिंह रावत, देवाशीष मिश्रा, (सुश्री) सत्या सिद्दीकी, सरफराज ए. सिद्दीकी, एस. के. मिश्रा, डी. एस. मेहरा, डा. अशोक धमीजा, राजीव नन्दा, (सुश्री) सोनिया धमीजा, पी. के. डे, टी. ए. खान, बी. वी. बलराम दास, गौरव श्रीवास्तव, (श्रीमती) अर्चना सिंह, अभीष्ठ

कुमार, विक्रांत यादव, कमलेन्द्र मिश्रा, सी. डी. सिंह, अर्जुन दीवान, (सुश्री) सुप्रिया जुनेजा, गुरमोहन सिंह बेदी, (सुश्री) आनंदना हांडा, (सुश्री) चारुल सरीन, मिश्रा सौरभ, संजय खरडे, शंकर चिल्लार्ज, सचिन पाटिल, (सुश्री) शुभांगी तुली, (सुश्री) आशा जी. नायर, रवीन्द्र केशवराव अदसुरे, मैसर्स अरपुथम अरुणा एंड कंपनी, (सुश्री) शर्मिला उपाध्याय, देवाशीष मिश्रा, (सुश्री) एना तोली सेमा, (सुश्री) हेमन्तिका वाही, (सुश्री) पारुल कुमारी, अनिल श्रीवास्तव, ऋतुराज बिस्वास, सपम विश्वजीत मेतयी, ख्वैरकम नोबिन सिंह, (सुश्री) कामिनी जायसवाल, जितेन्द्र कुमार भाटिया, मुकेश वर्मा, नरेश के. शर्मा, पी. वी. दिनेश, (सुश्री) अनीता शिनाय, गोपाल सिंह, मनीष कुमार, चन्दन कुमार, ऋतुराज बिस्वास, अनिल के. झा, रिकू सरमा, नवनीत कुमार, मैसर्स कारपोरेट ला ग्रुप की ओर से, (सुश्री) सुमिता हज़ारिका, सतीश विज, अरुणेश्वर गुप्ता, श्रीमती डी. भारती रेड्डी, वी. जी. प्रागसम, एस. जे. एरिस्टोटल, प्रभु रामासुब्रमण्यम्, धर्मेन्द्र कुमार सिन्हा, अजय पाल, आर. नेदुमरन, रंजन मुखर्जी, (सुश्री) ए. सुभाषिणी, डा. मोनिका गोसाईं, एस. धनंजय, सुदर्शन सिंह रावत, रामेश्वर प्रसाद गोयल, दिनेश शर्मा, परितोष अनिल, (सुश्री) अन्विता कोशिश, कुलदीप सिंह, एम. योगेश काना, (सुश्री) वनिता चन्द्रकांत गिरी, ए. शांता कुमार, (सुश्री) शशिकला, के. एन. मधुसूदन, आर. सतीश, (श्रीमती) विवेक्ता

सिंह, तरजीत सिंह, विकास शर्मा, विनय कुहार, कमल मोहन गुप्ता, अमित लभाया और इरशाद अहमद

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति पी. सतशिवम् ने दिया ।

मु. न्या. सतशिवम् – इस निर्देशित मामले में जो महत्वपूर्ण विवाद्यक विचारार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि क्या कोई पुलिस अधिकारी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) की धारा 154 के अधीन संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित कोई इत्तिला प्राप्त करने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के लिए बाध्य है या पुलिस अधिकारी के पास उसे रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व ऐसी इत्तिला की सत्यता की परीक्षा करने की दृष्टि से प्रारंभिक जांच करने की शक्ति है ?

2. संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन प्रस्तुत रिट याचिका ललिता कुमारी (अवयस्क) द्वारा अपने पिता, अर्थात् श्री भोला कामत के माध्यम से उसकी अवयस्क पुत्री के, जिसका अपहरण किया गया है, संरक्षण के लिए प्रस्तुत प्रत्यर्थियों के विरुद्ध बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट या इसी प्रकृति के निदेश जारी करने के लिए फाइल की गई है । उक्त रिट याचिका में शिकायत यह है कि याची द्वारा तारीख 11 मई, 2008 को संबंधित पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी जिसने उस पर कोई कार्रवाई नहीं की थी । इसके पश्चात्, जब पुलिस अधीक्षक के समक्ष समावेदन किया गया था तब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई थी । याची के अनुसार, इसके पश्चात् भी अभियुक्तों को गिरफ्तार करने या अवयस्क बालिका की बरामदगी के लिए कोई कदम नहीं उठाए गए थे ।

3. इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य**[1] वाले मामले में संपूर्ण देश में भिन्न-भिन्न मामलों के आधार पर पुलिस अधिकारियों द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्टें रजिस्ट्रीकृत करने में बरती जाने वाली विषमता की अवेक्षा करने के पश्चात् भारत संघ, समस्त राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के मुख्य सचिवों और पुलिस महानिदेशकों/पुलिस आयुक्तों को इस आशय की सूचना जारी की कि यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्टें रजिस्ट्रीकृत करने के लिए तुरंत कदम नहीं उठाए गए और उनकी प्रतियां परिवादियों को सौंपी नहीं गईं तो वे संबंधित मजिस्ट्रेटों

---

[1] (2008) 7 एस. सी. सी. 164.

के समक्ष परिवाद याचिकाएं फाइल करके पुलिस को तुरंत मामला रजिस्ट्रीकृत करने और अभियुक्त व्यक्तियों को गिरफ्तार करने के लिए समुचित निदेश देने के लिए समावेदन कर सकते हैं जिसके न हो सकने पर ऐसे अपचारी पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध, यदि पर्याप्त हेतुक दर्शित नहीं किया जाता है तो अवमान कार्यवाहियां अवश्य आरंभ की जानी चाहिए ।

4. उपरोक्त निदेशों के अनुसरण में जब मामले की उसी न्यायपीठ द्वारा **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य**[1] वाले मामले में सुनवाई की गई थी तब याची की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री एस. बी. उपाध्याय ने अपने इस दावे को प्रक्षेपित किया कि किसी पुलिस थाने के भारसाधक पुलिस अधिकारी द्वारा संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली इत्तिला प्राप्त करने पर उसके लिए संहिता की धारा 154 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत करना अपरिहार्य है और उसने **हरियाणा राज्य** बनाम **भजन लाल**[2], **रमेश कुमारी** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली)**[3] और **प्रकाश सिंह बादल** बनाम **पंजाब राज्य**[4] वाले मामलों में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चयों का अवलंब लिया । दूसरी ओर, महाराष्ट्र राज्य की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री शेखर नफादे ने यह दलील दी कि किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी ऐसी इत्तिला प्राप्त करने पर, जिससे कोई संज्ञेय अपराध कारित किया जाना प्रकट होता है, विधि के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत करने के लिए बाध्य नहीं है बल्कि समुचित मामलों में उसे रिपोर्ट में किए गए दोषारोपणों की सत्यता या अन्यथा के संबंध में किसी प्रकार की प्रारंभिक जांच कराने का विवेकाधिकार प्राप्त है । उसने अपनी दलील के समर्थन में **पी. सिराजुद्दीन** बनाम **मद्रास राज्य**[5], **सेवी** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[6], **शशिकांत** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो**[7] और **राजेन्द्र सिंह कटोच** बनाम **चंडीगढ़ प्रशासन**[8] वाले मामलों में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चयों का

---

[1] (2008) 14 एस. सी. सी. 337.

[2] [1991] 2 उम. नि. प. 812 = (1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 335.

[3] (2006) 2 एस. सी. सी. 677.

[4] (2007) 1 एस. सी. सी. 1.

[5] (1970) 1 एस. सी. सी. 595.

[6] (1981) सप्ली. एस. सी. सी. 630.

[7] (2007) 1 एस. सी. सी. 630.

[8] (2007) 10 एस. सी. सी. 69.

अवलंब लिया । इस मुद्दे के संबंध में इस न्यायालय के परस्पर-विरोधी विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए उक्त न्यायपीठ ने तारीख 16 सितम्बर, 2008 के आदेश द्वारा इसे किसी बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित कर दिया ।

5. उपरोक्त निदेश का अनुपालन करते हुए ललिता कुमारी से संबंधित मामले की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में सुनवाई की गई थी जिसमें इस न्यायालय ने भारत संघ, राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले विभिन्न काउन्सेलों को सुनने के पश्चात् और सभी परस्पर-विरोधी विनिश्चयों का विस्तारपूर्वक उल्लेख करने के पश्चात् निम्न प्रकार निष्कर्ष निकालते हुए यह मामला किसी संविधान पीठ को निर्देशित कर दिया :–

> "97. हमने इस न्यायालय द्वारा पिछली अनेक दशाब्दियों में दिए गए विभिन्न निर्णयों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया है । हम मुख्य विवाद्यक पर इस न्यायालय की भिन्न-भिन्न न्यायिक राय को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं : क्या दंड प्रकिया संहिता की धारा 154 के अधीन पुलिस अधिकारी तब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के लिए बाध्य है जब कोई संज्ञेय अपराध बनता है या उसे (पुलिस अधिकारी को) प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व किसी किस्म की प्रारंभिक जांच कराने का विकल्प, विवेकाधिकार या स्वतंत्रता प्राप्त है ।
>
> 98. भारत संघ और भिन्न-भिन्न राज्यों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेलों ने इस न्यायालय के समक्ष भी पूर्णतः भिन्न-भिन्न मत अभिव्यक्त किए हैं । इस न्यायालय ने भी संतोष कुमार और सुरेश गुप्ता वाले ऊपर उल्लिखित मामलों में चिकित्सा डाक्टरों के मामले में एक विशेष प्रवर्ग को रेखांकित किया है जिसमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच कराने की परिकल्पना की गई थी । कुछ काउन्सेलों ने यह भी दलील दी है कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के मैनुअल में भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व किसी प्रकार की प्रारंभिक जांच परिकल्पित है ।

---

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 1.

99. इन मामलों में जो विवाद्यक विचारार्थ उद्‌भूत हुआ है वह अत्यंत लोक महत्व का है । इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित अनेक मामलों में भिन्न-भिन्न राय को ध्यान में रखते हुए सभी संबंधित व्यक्तियों, न्यायालयों, अन्वेषक अभिकरणों और नागरिकों के फायदे के लिए इस न्यायालय की एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विधि और अधिनिर्णय की स्पष्ट प्रतिपादना कराना अत्यंत आवश्यक हो गया है ।

100. परिणामस्वरूप, हम माननीय मुख्य न्यायमूर्ति से इन मामलों को एक प्राधिकारपूर्ण निर्णय के लिए इस न्यायालय के कम से कम पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ को निर्देशित करने का अनुरोध करते हैं ।"

6. अतः, इस संविधान पीठ के समक्ष एकमात्र प्रश्न संहिता की धारा 154 के निर्वचन और आनुषंगिक रूप से धारा 156 और धारा 157 पर भी विचार करने से संबंधित है ।

7. याची के विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री एस. बी. उपाध्याय, भारत संघ की ओर से विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री के. वी. विश्वनाथन, छत्तीसगढ़ राज्य की ओर से विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री सिद्धार्थ लूथरा, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्य की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल क्रमशः श्री शेखर नफादे, श्री आर. के. दास, सुश्री विभा दत्त मखीजा, अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री जी. शिवाबालामुरुगन, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से विद्वान् काउन्सेल डा. अशोक धमीजा, पश्चिमी बंगाल राज्य की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री कल्याण बंदोपध्याय, राजस्थान राज्य की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता डा. मनीष सिंघवी और श्री सुदर्शन सिंह रावत को सुना गया ।

8. इस न्यायपीठ के समक्ष रखे गए मुख्य विवाद्यक का उत्तर देने के लिए संहिता की निम्नलिखित धाराओं के प्रति निर्देश करना लाभप्रद है :–

"**154. संज्ञेय मामलों में इत्तिला** – (1) संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और इत्तिला देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस

अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन अभिलिखित इत्तिला की प्रतिलिपि, इत्तिला देने वाले को तत्काल निःशुल्क दी जाएगी ।

(3) कोई व्यक्ति जो किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के उपधारा (1) में निर्दिष्ट इत्तिला को अभिलिखित करने से इनकार करने से व्यथित है, ऐसी इत्तिला का सार लिखित रूप में और डाक द्वारा संबद्ध पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है जो, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसी इत्तिला से किसी संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है तो, या तो स्वयं मामले का अन्वेषण करेगा या अपने अधीनस्थ किसी पुलिस अधिकारी द्वारा इस संहिता द्वारा उपबंधित रीति में अन्वेषण किए जाने का निदेश देगा और उस अधिकारी को उस अपराध के संबंध में पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की सभी शक्तियां होंगी ।

156. संज्ञेय मामलों का अन्वेषण करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति – (1) कोई पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी ऐसे संज्ञेय मामले का अन्वेषण कर सकता है, जिसकी जांच या विचारण करने की शक्ति उस थाने की सीमाओं के अंदर के स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को अध्याय 13 के उपबंधों के अधीन है ।

(2) ऐसे किसी मामले में पुलिस अधिकारी की किसी कार्यवाही को किसी भी प्रक्रम में इस आधार पर प्रश्नगत न किया जाएगा कि वह मामला ऐसा था जिसमें ऐसा अधिकारी इस धारा के अधीन अन्वेषण करने के लिए सशक्त न था ।

(3) धारा 190 के अधीन सशक्त किया गया कोई मजिस्ट्रेट पूर्वोक्त प्रकार के अन्वेषण का आदेश कर सकता है ।

157. अन्वेषण के लिए प्रक्रिया – (1) यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को, इत्तिला प्राप्त होने पर या अन्यथा, यह संदेह करने का कारण है कि ऐसा अपराध किया गया है जिसका अन्वेषण करने के लिए धारा 156 के अधीन वह सशक्त है तो वह उस अपराध की रिपोर्ट उस मजिस्ट्रेट को तत्काल भेजेगा जो ऐसे अपराध का पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान करने के लिए सशक्त है और मामले के तथ्यों और

परिस्थितियों का अन्वेषण करने के लिए, और यदि आवश्यक हो तो अपराधी का पता चलाने और उसकी गिरफ्तारी के उपाय करने के लिए, उस स्थान पर या तो स्वयं जाएगा या अपने अधीनस्थ अधिकारियों में से एक को भेजेगा जो ऐसी पंक्ति से निम्नतर पंक्ति का न होगा जिसे राज्य सरकार साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त विहित करे :

परंतु –

(क) जब ऐसे अपराध के किए जाने की कोई इत्तिला किसी व्यक्ति के विरुद्ध उसका नाम देकर की गई है और मामला गंभीर प्रकार का नहीं है तब यह आवश्यक न होगा कि पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी उस स्थान पर अन्वेषण करने के लिए स्वयं जाए या अधीनस्थ अधिकारी को भेजे ;

(ख) यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है तो वह उस मामले का अन्वेषण न करेगा :

परंतु यह और कि बलात्संग के अपराध के संबंध में, पीड़ित का कथन, पीड़ित के निवास पर या उसकी पसंद के स्थान पर और यथासाध्य, किसी महिला पुलिस अधिकारी द्वारा उसके माता-पिता या संरक्षक या नजदीकी नातेदार या परिक्षेत्र के सामाजिक कार्यकर्ता की उपस्थिति में अभिलिखित किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) के परंतुक के खंड (क) और (ख) में वर्णित दशाओं में से प्रत्येक दशा में पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी अपनी रिपोर्ट में उस उपधारा की अपेक्षाओं का पूर्णतया अनुपालन न करने के अपने कारणों का कथन करेगा और उक्त परंतुक के खंड (ख) में वर्णित दशा में ऐसा अधिकारी इत्तिला देने वाले को, यदि कोई हो, ऐसी रीति से, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए तत्काल इस बात की सूचना दे देगा कि वह उस मामले में अन्वेषण न तो करेगा और न कराएगा ।"

दलीलें

9. सर्वप्रथम, विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री एस. बी. उपाध्याय ने धारा 154 में उल्लिखित शर्तों को स्पष्ट करते हुए यह दलील दी कि धारा

154(1) आज्ञापक है क्योंकि उसमें "शैल" शब्द का प्रयोग विधान-मंडल के कानूनी आशय का द्योतक है । उसने यह दलील भी दी कि पुलिस अधिकारी के पास प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के सिवाय कोई विवेकाधिकार शेष नहीं बचा है । उसने उपरोक्त प्रतिपादना के समर्थन में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया, अर्थात्, **बी. प्रेमानंद और अन्य** बनाम **मोहन कोइकल और अन्य**[1], **मैसर्स हीरालाल रतनलाल और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[2] और **गोविन्दलाल छगनलाल पटेल** बनाम **कृषि उपज विपणन समिति, गोधरा और अन्य**[3] वाले मामले ।

10. श्री उपाध्याय ने, इसके अलावा हमारा ध्यान संहिता की धारा 154(1) में प्रयुक्त भाषा की ओर आकृष्ट करते हुए यह दलील दी कि इसमें मात्र "इत्तिला" का उल्लेख किया गया है और उसके आगे "युक्तियुक्त" या "विश्वसनीय" शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है । उसने इस दावे को सिद्ध करने की दृष्टि से निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया, अर्थात्, **भजन लाल** (उपर्युक्त), **गणेश भवन पटेल और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4], **एलेक पदमासी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[5], **रमेश कुमारी** (उपर्युक्त), **राम लाल नारंग** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[6] और **लल्लन चौधरी और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य**[7] वाले मामले । इसके अतिरिक्त, उसने पुलिस अधिकारियों को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच करने के लिए अनुज्ञात करने संबंधी विभिन्न प्रतिकूल प्रभावों की ओर भी प्रकाश डाला ।

11. भारत संघ की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री के. वी. विश्वनाथन ने यह दलील दी कि ऐसे सभी मामलों में जिनमें संहिता की धारा 154 के अधीन इत्तिला प्राप्त होती है, पुलिस के लिए तुरंत उन्हें उक्त प्रयोजन के लिए रखे जाने वाले रजिस्टर में प्रविष्ट करना आज्ञापक है यदि उनका संबंध कोई संज्ञेय अपराध कारित किए जाने से होता है । विद्वान् अपर महासालिसिटर के अनुसार, पुलिस

---

[1] (2011) 4 एस. सी. सी. 266.
[2] (1973) 1 एस. सी. सी. 216.
[3] (1975) 2 एस. सी. सी. 482.
[4] (1978) 4 एस. सी. सी. 371.
[5] (2007) 6 एस. सी. सी. 171.
[6] [1980] 1 उम. नि. प. 321 = (1979) 2 एस. सी. सी. 322.
[7] (2006) 12 एस. सी. सी. 229.

प्राधिकारियों के पास उसे रजिस्ट्रीकृत करने का विनिश्चय करने से पूर्व ऐसी इत्तिला की सत्यता अभिनिश्चित करने का किसी भी प्रकार का विवेकाधिकार या प्राधिकार नहीं है । उसने यह भी इंगित किया कि उस पुलिस अधिकारी को, जो संहिता की धारा 156 और धारा 157 के अधीन स्थल पर जाता है, या तो गुप्त जानकारी या स्रोत पर आधारित जानकारी या किसी अफवाह इत्यादि के आधार पर तुरंत संज्ञेय अपराध कारित किए जाने से संबंधित जानकारी इकट्ठी होने पर पुलिस थाने को रिपोर्ट (रुक्का) भेजनी होती है जिससे कि उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया जा सके । उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने, गिरफ्तारी करने, अभियुक्तों को प्रदान की गई विभिन्न संरक्षाओं और अन्वेषण बन्द करने के संबंध में पुलिस की शक्ति से संबंधित संहिता की स्कीम को भी उजागर किया । उसने अपने दावे के समर्थन में इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों, अर्थात्, **भजन लाल** (उपर्युक्त), **रमेश कुमारी** (उपर्युक्त) और **एलेक पदमासी** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चयों का अवलंब लिया । उसने ऐसे प्रभेद्य निर्णयों पर भी विचार-विमर्श किया जो आज्ञापक प्रतिपादना के विरोध में हैं, अर्थात् **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **भगवन्त किशोर जोशी**[1], **पी. सिराजुद्दीन** (उपर्युक्त), **सेवी** (उपर्युक्त), **शशिकांत** (उपर्युक्त), **राजेन्द्र सिंह कटोच** (उपर्युक्त), **जेकब मैथ्यु** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य**[2] वाले निर्णय । उसने यह कहकर अपनी दलीलें समाप्त कीं कि यदि किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली कोई ऐसी इत्तिला दी जाती है जिससे संहिता की धारा 154(1) की अपेक्षाएं पूरी होती हैं तो उक्त अधिकारी के पास उसके सार को विहित प्ररूप में प्रविष्ट करने, अर्थात्, ऐसी इत्तिला के आधार पर मामला रजिस्ट्रीकृत करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है । इसके अलावा, उसने मिथ्या मामला फाइल करने के विरुद्ध संहिता के अधीन उपबंधित विभिन्न सुरक्षोपायों पर जोर दिया ।

12. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से विद्वान् काउन्सेल डा. अशोक धमीजा ने यह दलील दी कि संहिता की धारा 154(1) के अधीन "शैल" शब्द के प्रयोग से स्पष्टतः यह आदिष्ट है कि यदि पुलिस अधिकारी को दी गई इत्तिला संज्ञेय अपराध किए जाने के संबंध में है तो उसके लिए अपराध रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक होता है । विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, इन

---

[1] [1964] 3 एस. सी. आर. 71.

[2] (2005) 6 एस. सी. सी. 1.

परिस्थितियों में पुलिस को कोई विकल्प या विवेकाधिकार नहीं दिया गया है । उसने आगे यह दलील दी कि "शैल" शब्द से स्पष्ट रूप से एक आज्ञा विवक्षित होती है और वह सुस्पष्टतः कानूनी आशय का द्योतक है । उसके अनुसार, जो कुछ आवश्यक है, वह केवल यह है कि पुलिस को दी गई इत्तिला से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होना चाहिए । उसने यह दलील भी दी कि संहिता की धारा 154 में मात्र "इत्तिला" शब्द का प्रयोग किया गया है और उसमें "विश्वसनीय इत्तिला" या "युक्तियुक्त शिकायत" जैसे विशेषक शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है । इस प्रकार प्रयुक्त भाषा से संसद् का यह आशय असंदिग्ध रूप से स्पष्ट होता है कि संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित इत्तिला मात्र ही प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के लिए पर्याप्त है । उसने **भजन लाल** (उपर्युक्त), **रमेश कुमारी** (उपर्युक्त), **एलेक पदमासी** (उपर्युक्त), **लल्लन चौधरी** (उपर्युक्त), **पुलिस अधीक्षक, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** बनाम **तपन कुमार सिंह**[1], **मैसर्स हीरालाल रतनलाल** (उपर्युक्त), **बी. प्रेमानंद** (उपर्युक्त), **खूब चन्द** बनाम **राजस्थान राज्य**[2], **पी. सिराजुद्दीन** (उपर्युक्त), **राजेन्द्र सिंह कटोच** (उपर्युक्त), **भगवन्त किशोर जोशी** (उपर्युक्त), **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **कमेटी फार प्रोटेक्शन आफ डैमोक्रेटिक राइट्स, पश्चिमी बंगाल**[3] वाले मामलों का भी अवलंब लिया । उसने मिथ्या मामला फाइल करने के विरुद्ध संहिता में उपबंधित विभिन्न सुरक्षोपायों को भी इंगित किया । अंत में, उसने इस बात पर जोर देते हुए अपनी दलील समाप्त की कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करना संहिता की धारा 154 के अधीन तब आज्ञापक है यदि इत्तिला से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है और ऐसी स्थिति में कोई प्रारंभिक जांच अनुज्ञेय नहीं है । इसके अलावा, उसने यह भी स्पष्ट किया कि कतिपय स्थितियों के अधीन केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो अपराध मैनुअल के अधीन यथा-उपबंधित प्रारंभिक जांच दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 में अंतर्विष्ट केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो से संबंधित विशेष उपबंधों के कारण भिन्न आधार पर आधारित है जो कि संहिता की धारा 4(2) और 5 के अधीन व्यावृत्त है ।

13. पश्चिमी बंगाल राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री कल्याण बंदोपध्याय ने यह दलील दी कि जब कभी

---

[1] (2003) 6 एस. सी. सी. 175.

[2] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1074.

[3] (2010) 3 एस. सी. सी. 571.

संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित कोई इत्तिला प्राप्त होती है तब पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी का यह कर्तव्य होता है कि वह उसे लेखबद्ध करे और ऐसी इत्तिला की एक प्रति संहिता की धारा 154(2) के अधीन इत्तिला देने वाले को तत्काल निःशुल्क दी जाएगी । उसके अनुसार, पुलिस अधिकारी के पास संज्ञेय अपराध के संबंध में इत्तिला को प्रथमतः लेखबद्ध करने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं होता है । उसने ऐसे विभिन्न पश्चात्वर्ती कदमों पर भी प्रकाश डाला जिनका अनुसरण पुलिस अधिकारी द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को रजिस्ट्रीकृत करने के अनुसरण में किया जाना होता है । संहिता की धारा 154 की परिधि के संबंध में उसने **एच. एन. ऋषब्द और इंदर सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य**[1], **भजन लाल** (उपर्युक्त), **एस. एन. शर्मा** बनाम **बिपन कुमार तिवारी**[2], **भारत संघ** बनाम **प्रकाश पी. हिन्दूजा**[3], **शेख हसीब** उर्फ **तबारक** बनाम **बिहार राज्य**[4], **शशिकांत** (उपर्युक्त), **अशोक कुमार टोडी** बनाम **किश्वर जहां और अन्य**[5], **पदम सुन्दर राव (मृत) और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य**[6], **पी. सिराजुद्दीन** (उपर्युक्त), **राजेन्द्र सिंह कटोच** (उपर्युक्त), **भगवन्त किशोर जोशी** (उपर्युक्त) और **मन्नालाल खटिक** बनाम **राज्य**[7] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

14. राजस्थान राज्य की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता डा. मनीष सिंघवी ने यह दलील दी कि संहिता की धारा 154(1) में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अनिवार्यतः रजिस्ट्रीकृत करना आदिष्ट है । उसने मिथ्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दाखिल करने के संबंध में संहिता में अंतर्निहित विभिन्न सुरक्षोपायों को भी उजागर किया । उसने यह भी इंगित किया कि एकमात्र अपवाद का संबंध उन मामलों से है जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन उद्भूत होते हैं क्योंकि उन मामलों में मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान करने से पूर्व मंजूरी आवश्यक होती है और लोक सेवकों को कुछ प्रकार का संरक्षण प्रदान किया जाता है जिससे कि उन्हें उत्पीड़ित करने के लिए तंग करने वाले मामले फाइल न किए जा सकें ।

---

[1] ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 196.
[2] (1970) 1 एस. सी. सी. 653.
[3] (2003) 6 एस. सी. सी. 195.
[4] (1972) 4 एस. सी. सी. 773.
[5] (2011) 3 एस. सी. सी. 758.
[6] (2002) 3 एस. सी. सी. 533.
[7] ए. आई. आर. 1967 कलकत्ता 478.

15. 2011 की दांडिक अपील सं. 1410 में अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री जी. शिवाबालमुरुगन ने पूर्ववर्ती इतिहास, अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1861, दंड प्रक्रिया संहिता, 1872, दंड प्रक्रिया संहिता, 1882 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के सुसंगत उपबंधों की रूपरेखा प्रस्तुत करने के पश्चात् इस बात पर जोर दिया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण क्यों आज्ञापक है । उसने विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट की सिफारिशों और तारीख 3 फरवरी, 2013 से दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 की धारा 13 के अंतःस्थापन पर भी प्रकाश डाला ।

16. उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री आर. के. दास ने यद्यपि आरंभ में यह प्राख्यान करते हुए अपनी दलीलें शुरू कीं कि बेईमान परिवादियों की प्रेरणा से निर्दोष व्यक्तियों को अनावश्यक रूप से उत्पीड़ित करने से रोकने के लिए यह वांछनीय है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के साथ ही अभिकथनों की प्रारंभिक जांच भी की जानी चाहिए किन्तु बाद में संहिता के विशिष्ट लक्षणों, विभिन्न उपबंधों, जैसे धारा 2(4)(ज), धारा 156(1), धारा 202(1) और धारा 164, उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों में के विभिन्न उपबंधों पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि संज्ञेय अपराध से संबंधित इत्तिला के मामले में उसकी सत्यता का या अन्यथा सत्यापन होने तक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का लेखबद्ध किया जाना किसी भी दशा में आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए । इसके अलावा, उसने इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का भी अवलंब लिया, जैसे **मोहिन्द्रो** बनाम **पंजाब राज्य**[1], **रमेश कुमारी** (उपर्युक्त), **मुन्ना लाल** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य**[2], **गिरधारी लाल कनक** बनाम **राज्य और अन्य**[3] और **कट्टेरी मोइद्दीन कुट्टी हाजी** बनाम **केरल राज्य**[4] वाले निर्णय । अंततः, उसने यह निष्कर्ष निकाला कि जब संहिता के अध्याय 12 में यथा-परिकल्पित कानूनी उपबंध स्पष्ट और असंदिग्ध हैं तब पुलिस को संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व अभिकथनों की प्रारंभिक जांच करने के लिए अनुज्ञात करना विधिक दृष्टि से अनुज्ञेय नहीं होगा ।

---

[1] (2001) 9 एस. सी. सी. 581.

[2] 1992 क्रिमिनल ला जर्नल 1558.

[3] 2002 क्रिमिनल ला जर्नल 2113.

[4] 2002 (2) क्राइम्स 143.

17. छत्तीसगढ़ राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री सिद्धार्थ लूथरा ने अपनी दलीलों का आरंभ संविधान पीठ के समक्ष निर्देश की परिधि पर जोर देते हुए किया । इसके पश्चात्, उसने विभिन्न निर्णयों पर विस्तारपूर्वक विचार किया जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अन्वेषक अधिकारी को संहिता की धारा 154 के अधीन संज्ञेय अपराध किए जाने की इत्तिला प्राप्त होने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच कराने की शक्ति है, अर्थात्, **भगवन्त किशोर जोशी** (उपर्युक्त), **पी. सिराजुद्दीन** (उपर्युक्त), **सेवी** (उपर्युक्त) और **राजेन्द्र सिंह कटोच** (उपर्युक्त) । इसके साथ-साथ उसने हमारा ध्यान निम्नलिखित विनिश्चयों की ओर भी दिलाया, अर्थात्, **भजन लाल** (उपर्युक्त), **रमेश कुमारी** (उपर्युक्त), **प्रकाश सिंह बादल** (उपर्युक्त) और **एलेक पदमासी** (उपर्युक्त), जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पुलिस अधिकारी संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट करने वाली इत्तिला की प्राप्ति पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के लिए कर्तव्यबद्ध है और धारा 154 की आज्ञा के अधीन प्रारंभिक जांच की शक्ति विद्यमान नहीं है । विद्वान् अपर महासालिसिटर ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 का तुलनात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया । उसने इस बात पर भी प्रकाश डाला कि प्रत्येक गतिविधि, जो किसी पुलिस थाने में होती है [धारा 2(थ)], पुलिस थाने में रखी गई डायरी में प्रविष्ट की जाती है जिसे साधारण डायरी, थाना डायरी या दैनिक डायरी कहा जा सकता है । उसने विभिन्न न्यायिक विनिश्चयों, जैसे **तपन कुमार सिंह** (उपर्युक्त), **सुब्बारत्नम और अन्य के संदर्भ में**[1], के प्रति निर्देश करते हुए साधारण डायरी की सुसंगति को रेखांकित किया । उसने आगे यह इंगित किया कि वर्तमान में संपूर्ण देश में विवाह-विषयक् वाणिज्यिक, चिकित्सीय उपेक्षा और भ्रष्टाचार से संबंधित अपराधों में संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किए बिना या उससे पूर्व पुलिस द्वारा जांच या प्रारंभिक जांच करने के लिए उपबंध विद्यमान हैं । इसने हमारा ध्यान उन विभिन्न पुलिस नियमों की ओर भी दिलाया जो पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, कोलकाता, मुम्बई इत्यादि में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व जांच कराने के संबंध में अभिभावी हैं । इसके अलावा, उसने इस बात पर जोर देने के लिए मामला रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच अनुज्ञेय है और विधि की दृष्टि से

---

[1] ए. आई. आर. 1949 मद्रास 663.

विधिसम्मत है, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के क्राइम मैनुअल से निष्कर्ष निकालने का प्रयास भी किया । उक्त दलीलों का उल्लेख करते हुए उसने यह अभिवाक् करके अपनी बात समाप्त की कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच अनुज्ञेय ठहराई जानी चाहिए । इसके अलावा, उसने इस बात पर जोर दिया कि पुलिस द्वारा जांच या प्रारंभिक जांच कराने की शक्ति से, जिसके बाद प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की जाती है, प्रक्रिया का दुरुपयोग समाप्त हो जाएगा क्योंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किया जाना किसी व्यक्ति के लिए विभिन्न महत्वपूर्ण क्रियाकलापों जैसे नौकरी या पासपोर्ट के लिए आवेदन करने के संबंध में एक अड़चन पैदा करता है । विद्वान् अपर महासालिसिटर ने इस न्यायालय से कतिपय ऐसे प्रवर्ग के मामलों के लिए जिनमें प्रारंभिक जांच की जानी चाहिए, दिशानिर्देश विरचित करने का अनुरोध किया ।

18. महाराष्ट्र राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री शेखर नफादे ने यह दलील दी कि साधारणतया थाना भारसाधक अधिकारी को संज्ञेय अपराध के संघटक प्रकट करने वाली शिकायत प्राप्त करने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लेखबद्ध करनी चाहिए किन्तु कतिपय स्थितियों में इत्तिला की शुद्धता या विश्वसनीयता के बारे में संदेह होने की दशा में उसके पास प्रारंभिक जांच करने का विवेकाधिकार होना चाहिए और इसके पश्चात् यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अन्वेषण के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है तो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करनी चाहिए । उसके ऊपर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने का आज्ञापक कर्तव्य थोपा नहीं जाना चाहिए । उसके अनुसार, इस निर्वचन से दो दूरतम स्थितियों में सामंजस्य बैठ जाएगा, अर्थात्, यह प्रतिपादना कि जिस क्षण संज्ञेय अपराध के संघटक प्रकट करने वाली शिकायत दाखिल की जाती है, पुलिस अधिकारी को किसी प्रकार की संवीक्षा किए बिना प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करनी चाहिए, एक दूरतम प्रतिपादना है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की आज्ञा के प्रतिकूल है, इसी प्रकार, अन्य दूरतम दृष्टिकोण यह है कि पुलिस अधिकारी को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व मामले का सारवान् रूप से अन्वेषण करना चाहिए । तद्नुसार, उसने यह इंगित किया कि दोनों प्रतिपादनाओं को नामंजूर किया जाना चाहिए और एक बीच का मार्ग चुना जाना चाहिए । उसने निम्नलिखित निर्णय भी प्रस्तुत किए, अर्थात्, **भजन लाल** (उपर्युक्त), **रमेश कुमारी** (उपर्युक्त), **प्रकाश सिंह**

बादल (उपर्युक्त) और **एलेक पदमासी** (उपर्युक्त), जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि संज्ञेय अपराध किए जाने का अभिकथन करने वाली शिकायत पुलिस थाने में प्राप्त होती है तो थाना भारसाधक अधिकारी के पास संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के सिवाय कोई और विकल्प नहीं होता है । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल के अनुसार, इन निर्णयों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि इनमें धारा 154 का निर्वचन संहिता के अन्य उपबंधों से असंबद्ध होकर किया गया है और संहिता की धारा 154 पर अनुच्छेद 21 के प्रभाव पर विचार नहीं किया गया है ।

19. इसके साथ-साथ, उसने निम्नलिखित विनिश्चयों का उल्लेख किया, अर्थात्, **राजेन्द्र सिंह कटोच** (उपर्युक्त), **पी. सिराजुद्दीन** (उपर्युक्त), **भगवन्त किशोर जोशी** (उपर्युक्त) और **सेवी** (उपर्युक्त) जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व पुलिस अधिकारी यह अभिनिश्चित करने के लिए प्रारंभिक जांच करने के लिए स्वतंत्र है कि क्या संज्ञेय अपराध किए जाने का प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है अथवा नहीं । विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल के अनुसार संहिता की धारा 154 अन्वेषण से संबंधित कानूनी उपबंधों की श्रृंखला गठित करती है और इसलिए धारा 41, धारा 157, धारा 167 और धारा 169 इत्यादि के उपबंधों की स्कीम का संबंध धारा 154 के निर्वचन से अवश्य होना चाहिए । इसके अलावा, उसने इस बात पर जोर दिया कि इसका उदार निर्वचन करने से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किया जाना एक यांत्रिक कार्य हो जाएगा । इसके साथ-साथ उसने **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले के प्रति निर्देश करके संहिता की धारा 154 पर अनुच्छेद 21 के प्रभाव को रेखांकित किया जिसमें इस न्यायालय ने दांडिक विधि से संबंधित अनेक उपबंधों को अनुच्छेद 21 लागू किया है । इस न्यायालय ने यह भी कहा है कि अनुच्छेद 21 में अंतर्विष्ट "विधि" अभिव्यक्ति आवश्यक रूप से ऐसी विधि अनुध्यात करती है जो युक्तियुक्त है न कि मात्र ऐसे कानूनी उपबंध चाहे वे युक्तियुक्त हैं अथवा नहीं । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह अभिवाक् किया कि संहिता की धारा 154 के उपबंधों का अनुच्छेद 21 के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए जिसका यह अभिप्राय है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व पुलिस अधिकारी को यह समाधान कर लेना चाहिए कि

---

[1] (1978) 1 एस. सी. सी. 248.

अन्वेषण के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है । उसने इस बात पर भी जोर दिया कि धारा 154 में पुलिस अधिकारी की तब प्रारंभिक जांच करने संबंधी विवक्षित शक्ति अंतर्विष्ट है जब उसे दी गई इत्तिला की विश्वसनीयता के बारे में उसे गंभीर संदेह हो । श्री नफादे ने दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013, विशेषकर धारा 166-क का उल्लेख करते हुए यह दलील दी कि जहां तक अन्य संज्ञेय अपराधों का संबंध है (धारा 166-क में उल्लिखित अपराधों के अलावा), पुलिस को तब प्रारंभिक जांच करने का विवेकाधिकार प्राप्त है यदि इत्तिला की शुद्धता के बारे में कुछ संदेह होता है ।

20. डाक्टरों की ओर से चिकित्सीय उपेक्षा बरते जाने से संबंधित अभिकथनों के मामले में हमारा ध्यान इस न्यायालय के कुछ विनिश्चयों के प्रति दिलाते हुए, अर्थात्, **तपन कुमार सिंह** (उपर्युक्त), **जैकब मैथ्यु** (उपर्युक्त) इत्यादि, यह इंगित किया गया है कि किसी भी चिकित्सा वृत्तिक को केवल शिकायत में किए गए अभिकथनों के आधार पर अभियोजित नहीं किया जाना चाहिए । श्री नफादे ने विभिन्न विनिश्चयों का उल्लेख करके इस बात पर जोर दिया कि समुचित मामलों में पुलिस अधिकारियों के लिए संज्ञेय अपराध की शिकायत प्राप्त होने पर यह उचित होगा कि वह अपना यह समाधान करे कि कम से कम शिकायत में अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए अभिकथन विश्वसनीय हैं । उसने यह भी दलील दी कि कानून के किसी भी उपबंध का पठन और निर्वचन अलग से नहीं किया जा सकता है बल्कि कानून का पठन समग्र रूप से किया जाना चाहिए । तद्नुसार, उसने यह प्रार्थना की कि संहिता की धारा 41, धारा 57, धारा 156, धारा 157, धारा 159, धारा 167, धारा 190, धारा 200 और धारा 202 के उपबंध एक साथ पढ़े जाने चाहिएं । उसने यह भी इंगित किया कि संहिता की धारा 154(3) ऐसे किसी शिकायतकर्ता को जिसकी शिकायत पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत नहीं की जाती है, अपनी शिकायत को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत कराने के प्रयोजनार्थ उच्चतर पुलिस अधिकारी के समक्ष समावेदन करने में समर्थ बनाती है और ऐसी दशा में उच्चतर पुलिस अधिकारी को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लेखबद्ध करने और मामले का अन्वेषण करने का निदेश देने की समस्त शक्तियां प्राप्त हैं । व्यथित व्यक्ति को उच्चतर पुलिस अधिकारी के समक्ष समावेदन करने के लिए उपलब्ध उपचार के अलावा वह उसकी धारा 190 के अधीन परिवाद करके संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष समावेदन भी कर सकता है । उसने

इसके आगे इस बात पर जोर दिया कि यह तथ्य कि विधान-मंडल ने संज्ञेय अपराधों में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार करने और अन्वेषण करने के विरुद्ध पर्याप्त उपचारों का उपबंध किया है, इस विधायी आशय का सूचक है कि पुलिस अधिकारी मात्र इस कारण प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लेखबद्ध करने के लिए बाध्य नहीं है कि शिकायत में किसी संज्ञेय अपराध के संघटक प्रकट होते हैं, यदि उसे शिकायत की सत्यता के बारे में संदेह है । उसने यह भी इंगित किया है कि कानून में प्रयुक्त "शैल" शब्द से सदैव मामले में विवेकाधिकार का अभाव अभिप्रेत नहीं होता है । उसने उक्त प्रतिपादना के लिए यह प्रदर्शित किया कि इस न्यायालय ने शाब्दिक निर्वचन के मुकाबले सप्रयोजन निर्वचन को अधिमानता दी है जिसके लिए उसने **अध्यक्ष, खनन परीक्षा बोर्ड और खान मुख्य-निरीक्षक और एक अन्य** बनाम **रामजी**[1], **ललित मोहन पांडे** बनाम **पूरन सिंह**[2], **प्रतिव बोस** बनाम **कुमार रुपेन्द्र देव रायकट**[3] वाले निर्णयों का अवलंब लिया । इसके आगे उसने यह इंगित किया कि संहिता की धारा 154 के उपबंधों को अनम्य सूत्र में रखना असंभव है । उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने या न करने के संबंध में कुछ दिशानिर्देश विरचित करने की प्रार्थना की । अंततः, उसने यह उल्लेख किया कि अनुच्छेद 21 की अपेक्षा यह है कि प्रक्रिया ऋजु और न्यायसंगत होनी चाहिए । उसके अनुसार, यदि पुलिस अधिकारी को मामले में संदेह है तो यह अपरिहार्य है कि उसके पास मामले में प्रारंभिक जांच करने का विवेकाधिकार होना चाहिए । यदि उसे ऐसी प्रारंभिक जांच करने से विवर्जित किया जाता है तब प्रक्रिया मनमानेपन और अयुक्तियुक्तता की बुराई से ग्रस्त होगी । इस प्रकार, उसने यह अभिवाक् करके अपनी दलीलों को समाप्त किया कि संहिता की धारा 154 का निर्वचन अनुच्छेद 21 के प्रकाश में किया जाना चाहिए ।

21. मध्य प्रदेश राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल सुश्री विभा दत्त मखीजा ने यह दलील दी कि संहिता की धारा 154 और अन्य उपबंधों के पठन मात्र से यह दर्शित होता है कि हो सकता है कि पुलिस अधिकारी की ओर से संज्ञेय अपराध के संबंध में कोई कदम उठाने या अन्वेषण करने से पूर्व प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करना

---

[1] (1977) 2 एस. सी. सी. 256.
[2] (2004) 6 एस. सी. सी. 626.
[3] [1964] 4 एस. सी. आर. 69.

आज्ञापक न हो किन्तु यह पूर्णतः बाध्यकर है । उसने आगे यह इंगित किया कि किसी अपराध के संबंध में प्रथम इत्तिला प्राप्त होने के पश्चात् और विभिन्न राज्य सरकारों के विनियमों के अधीन पुलिस थाने में रखी गई प्रथम इत्तिला पुस्तिका में उक्त रिपोर्ट (चाहे वह मौखिक हो या लिखित) रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व, संहिता के कानूनी ढांचे के अधीन उस विस्तार तक जितना न्यायौचित्यपूर्ण है और यह अभिनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ कि क्या कोई संज्ञेय अपराध किया गया है अथवा नहीं, यथार्थ रूप से अनुदत्त कानूनी विवेकाधिकार के क्षेत्र के भीतर है, केवल कुछ प्रारंभिक जांच या अन्वेषणात्मक कदम अनुज्ञेय हैं । अतः, ऐसे किसी अन्वेषण को, जिसकी परिणति संहिता की धारा 173 के अधीन अंतिम रिपोर्ट में होती है, तब तक प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है और इस कारण अभिखंडित नहीं किया जा सकता है कि जांच, अन्वेषण या अन्वेषण के दौरान उठाए गए कदमों के कुछ भाग प्रथम इत्तिला प्राप्त होने के पश्चात् किन्तु उसे रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व उठाए जाते हैं जब तक यह नहीं पाया जाता है कि उक्त अन्वेषण अऋजु, अवैध, असद्भाविक है और इसके परिणामस्वरूप अभियुक्त के ऋजु अन्वेषण संबंधी अधिकार पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । उसने उपर्युक्त दलीलों के समर्थन में इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों के प्रति निर्देश से संहिता के पूर्ववर्ती उपबंधों और वर्तमान कानूनी ढांचे, अर्थात् दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 को रेखांकित किया । उसने यह कहकर अपनी दलील समाप्त की कि संहिता की धारा 154 में इस बारे में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि जहां संज्ञेय अपराध प्रकट होता है वहां पुलिस की ओर से उक्त इत्तिला को लेखबद्ध करने या लेखबद्ध न करने का कोई विवेकाधिकार नहीं है हालांकि वह प्रत्येक मामले में भिन्न-भिन्न हो सकती है ।

22. इस न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष उठाए गए विवाद्यक दो मुख्य परस्पर-विरोधी महत्वपूर्ण क्षेत्रों से उद्भूत होते हैं, अर्थात् :–

(i) क्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के तुरंत रजिस्ट्रीकृत न किए जाने के परिणामस्वरूप पुलिस द्वारा छलसाधन की गुंजाइश रहती है जिससे पीड़ित/शिकायतकर्ता के शिकायत में किए गए अभिकथनों का तुरंत अन्वेषण करने के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ; और

(ii) क्या ऐसे मामलों में जहां शिकायत/इत्तिला से संज्ञेय अपराध का किया जाना स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं होता है किन्तु प्रथम इत्तिला अनिवार्यतः रजिस्ट्रीकृत कर ली जाती है तब क्या इससे किसी

अभियुक्त के अधिकारों का अतिलंघन होता है ।

विचार-विमर्श

23. हमारे देश की दंड विधि प्रक्रिया में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट एक प्रासंगिक दस्तावेज़ है और इत्तिला करने वाले के दृष्टिकोण से इसका मुख्य उद्देश्य दंड विधि को गतिशील बनाना है और अन्वेषक प्राधिकारियों के दृष्टिकोण से अभिकथित दांडिक गतिविधि के बारे में जानकारी अभिप्राप्त करना है ताकि वह दोषी को ढूंढने और उससे पूछताछ करने के लिए उपयुक्त कदम उठाने में समर्थ हो सके ।

24. इतिहासपरक अनुभव के आधार पर दोनों पक्षों की ओर से मामलों का उल्लेख किया गया है जिनमें विधिमान्य प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत न किए जाने के पीड़ित/इत्तिलाकर्ता व्यक्ति तथा अभियुक्तों को अनावश्यक रूप से तंग किए जाने और मिथ्या आरोपों की जांच किए जाने की शिकायतें सही पाई गई हैं ।

25. प्रथम प्रवर्ग के मामलों का एक उदाहरण **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सारंगधर सिंह शिवदास सिंह चव्हाण और एक अन्य**[1] वाले मामले में पाया जाता है जिसमें बुलधाना जिले के कलक्टर के उस आदेश को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका फाइल की गई थी जिसके द्वारा श्री गोकुलचन्द सनन्दा के विरुद्ध जिला धनशोधन-रोधी समिति और जिला सरकारी प्लीडर से अनापत्ति अभिप्राप्त किए बिना कोई अपराध रजिस्ट्रीकृत न करने का निदेश दिया गया था । अभिलेख से यह प्रकट हुआ था कि 74 मामलों में से केवल सात मामलों में अवैध धनशोधन का अभिकथन करते हुए आरोप-पत्र फाइल किए गए थे । इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि मुख्यमंत्री द्वारा जिला कलक्टर को दिए गए अनुदेशों के आधार पर गरीब किसानों की कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत नहीं की गई थी । इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने उक्त अनुदेशों को अधिकारातीत अभिनिर्धारित किया और उन्हें अभिखंडित कर दिया । यह दलील दी गई है कि उपरोक्त जैसे मामले धारा 154 के आज्ञापक स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं और यदि इससे अन्यथा अभिनिर्धारित किया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप घोर अन्याय होगा ।

26. **एलेक पदमासी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस विवाद्यक पर

---

[1] (2011) 1 एस. सी. सी. 577.

विचार करते हुए कि क्या ऐसी रिट जारी करना न्यायालयों की शक्तियों के भीतर है जिसमें पुलिस को ऐसे मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने का निदेश दिया गया हो जिसमें यह अभिकथित किया गया है कि अभियुक्त ने ऐसे भाषण दिए हैं जिनसे सांप्रदायिक सौहार्द के बिगड़ने की संभावना है, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब कभी पुलिस पदाधिकारियों की जानकारी में यह दर्शित करने वाले तथ्य लाए जाते हैं कि कोई संज्ञेय अपराध साबित होता है तो उन्हें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करनी चाहिए । यदि पुलिस पदाधिकारी ऐसा करने में असफल होते हैं तो संहिता की धारा 200 के साथ पठित धारा 190 में उपवर्णित पद्धतियां अंगीकार की जानी चाहिएं । इस प्रकार, संहिता में ही संहिता की धारा 154 के अधीन पुलिस प्राधिकारियों की ओर से इनकारी के संबंध में अनेक नियंत्रणों का उपबंध किया गया है ।

27. तथापि, दूसरी ओर, अनेक ऐसे मामले हैं जिनसे यह प्रदर्शित होता है कि ऐसे उदाहरण हैं जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने और उसके संबंध में अन्वेषण प्रारंभ करने संबंधी पुलिस की शक्ति का दुरुपयोग किया गया है जहां शिकायत की अंतर्वस्तुओं से कोई संज्ञेय अपराध साबित नहीं होता है । इस संदर्भ में महत्वपूर्ण मामला **प्रीति गुप्ता** बनाम **झारखंड राज्य**[1] वाला मामला है जिसमें इस न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क का दुरुपयोग किए जाने पर अपनी चिन्ता अभिव्यक्त की थी जिसके संबंध में अनेक तुच्छ रिपोर्टें दाखिल की गईं थीं । इस न्यायालय ने अपनी यह वांछा व्यक्त की कि विधान-मंडल को विधि में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए सुविज्ञ लोक राय और व्यावहारिक वास्तविकताओं को अवश्य ही विचार में लेना चाहिए ।

28. उपर्युक्त निर्णय के परिणामस्वरूप भारत के विधि आयोग ने तारीख 30 अगस्त, 2012 को अपनी 243वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की । विधि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि धारा 498-क के अधीन अपराध को शमनीय बनाया जा सकता था तथापि, आनुभाविक आंकड़ों द्वारा इसके विस्तार का दुरुपयोग होना साबित नहीं किया गया था और इस प्रकार, यह इस उपबंध की प्रभावकारिता को निरावृत्त करने का आधार नहीं हो सकता था । विधि आयोग ने यह भी मत व्यक्त किया कि इस प्रश्न के संबंध में कि क्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया

---

[1] (2010) 7 एस. सी. सी. 667.

जाना युक्तियुक्त समय के लिए मुल्तवी किया जा सकता था, विधि अनिश्चितता की अवस्था में है और वह इस न्यायालय द्वारा प्रस्तुत संविवाद का निपटारा करके ही स्पष्ट की जा सकती है ।

29. इस मुद्दे पर भिन्न-भिन्न राय को ध्यान में रखते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुंचने की दृष्टि से और उपर्युक्त दलीलों का उत्तर देने के लिए इस धारा और उन तत्स्थानी उपबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिशीलन करना प्रासंगिक है जो दंड प्रक्रिया संहिता की पूर्ववर्ती अधिनियमितियों में विद्यमान थे ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1861

> *"139. पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को दी गई प्रत्येक शिकायत या इत्तिला लेखबद्ध की जाएगी और उसका सार ऐसे अधिकारी द्वारा रखी जाने वाली डायरी में ऐसी रीति में प्रविष्ट किया जाएगा जोकि स्थानीय सरकार द्वारा विहित किया जाए ।"

दंड प्रक्रिया संहिता, 1872

> *"112. पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को की गई प्रत्येक शिकायत या इत्तिला लेखबद्ध की जाएगी और वह करने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित, मुद्राबंद या चिह्नित की जाएगी और उसका सार ऐसे अधिकारी द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में ऐसी रीति में प्रविष्ट किया जाएगा जोकि स्थानीय सरकार विहित करे ।"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "139. Every complaint or information preferred to an officer incharge of a police station, shall be reduced into writing and the substance thereof shall be entered in a diary to be kept by such officer, in such form as shall be prescribed by the local government."

> "112. Every complaint preferred to an officer incharge of a police station, shall be reduced into writing and shall be signed, sealed or marked by the person making it; and the substance thereof shall be entered in a book to be kept by such officer in the form prescribed by the local government."

दंड प्रक्रिया संहिता, 1882

*"154. संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और इत्तिला देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा ।"

दंड प्रक्रिया संहिता, 1898

"154. संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और इत्तिला देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा ।"

---

*"154. Every information relating to the commission of a cognizable offence if given orally to an officer incharge of a police station, shall be reduced to writing by him, or under his direction, and be read over to the informant, and every such information, whether given in writing or reduced to writing as aforesaid, shall be signed by the person giving it, and the substance thereof shall be entered in a book to be kept in such form as the government may prescribed in this behalf."

"154. Every information relating to the commission of a cognizable offence if given orally to an officer incharge of a police station, shall be reduced to writing by him, or under his direction, and be read over to the informant, and every such information, whether given in writing or reduced to writing as aforesaid, shall be signed by the person giving it, and the substance thereof shall be entered in a book to be kept by such officer in such form as the government may prescribed in this behalf."

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

"154. संज्ञेय मामलों में इत्तिला – (1) संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और इत्तिला देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा :

[परन्तु यदि किसी ऐसी स्त्री द्वारा, जिसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 326-क, धारा 326-ख, धारा 354, धारा 354-क, धारा 354-ख, धारा 354-ग, धारा 354-घ, धारा 376, धारा 376-क, धारा 376-ख, धारा 376-ग, धारा 376-घ, धारा 376-ङ या धारा 509 के अधीन किसी अपराध के किए जाने या किए जाने का प्रयत्न किए जाने का अभिकथन किया गया है, कोई इत्तिला दी जाती है तो ऐसी इत्तिला किसी महिला पुलिस अधिकारी या किसी महिला अधिकारी द्वारा अभिलिखित की जाएगी :–

परन्तु यह और कि -

(क) यदि वह व्यक्ति, जिसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 354, धारा 354-क, धारा 354-ख, धारा 354-ग, धारा 354-घ, धारा 376, धारा 376-क, धारा 376-ख, धारा 376-ग, धारा 376-घ, धारा 376-ङ या धारा 509 के अधीन किसी अपराध के किए जाने का या किए जाने का प्रयत्न किए जाने का अभिकथन किया गया है, अस्थायी या स्थायी रूप से मानसिक या शारीरिक रूप से निःशक्त है, तो ऐसी इत्तिला किसी पुलिस अधिकारी द्वारा उस व्यक्ति के, जो ऐसे अपराध की रिपोर्ट करने की ईप्सा करता है, निवास-स्थान पर या उस व्यक्ति के विकल्प के किसी सुगम स्थान पर, यथास्थिति, किसी द्विभाषिए या किसी विशेष प्रबोधक की उपस्थिति में अभिलिखित की जाएगी ;

(ख) ऐसी इत्तिला के अभिलेखन की वीडियो फिल्म तैयार की जाएगी ;

(ग) पुलिस अधिकारी धारा 164 की उपधारा (5-क) के खंड

(क) के अधीन किसी न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा उस व्यक्ति का कथन यथासंभवशीघ्र अभिलिखित कराएगा ।]

[दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 की धारा 13 द्वारा तारीख 3 फरवरी, 2013 से अंतःस्थापित]

(2) उपधारा (1) के अधीन अभिलिखित इत्तिला की प्रतिलिपि, इत्तिला देने वाले को तत्काल निःशुल्क दी जाएगी ।

(3) कोई व्यक्ति जो किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के उपधारा (1) में निर्दिष्ट इत्तिला को अभिलिखित करने से इनकार करने से व्यथित है, ऐसी इत्तिला का सार लिखित रूप में और डाक द्वारा संबद्ध पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है जो, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसी इत्तिला से किसी संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है तो, या तो स्वयं मामले का अन्वेषण करेगा या अपने अधीनस्थ किसी पुलिस अधिकारी द्वारा इस संहिता द्वारा उपबंधित रीति में अन्वेषण किए जाने का निदेश देगा और उस अधिकारी को उस अपराध के संबंध में पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की सभी शक्तियां होंगीं ।"

उपर्युक्त उपबंधों के परिशीलन से पुरानी संहिता और नई संहिता दोनों में संज्ञेय अपराध की दशा में कोई प्रारंभिक जांच कराए बिना अनिवार्य रूप से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के संबंध में विधायी आशय स्पष्ट होता है ।

30. 1973 की वर्तमान संहिता से पूर्वगामी संहिता, 1898 की संहिता है जिसमें पुलिस की अन्वेषण करने की शक्तियों और प्रक्रिया में सारवान् परिवर्तन किए गए थे । पुलिस की शक्तियों के आरंभिक बिन्दु को मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने के लिए पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की शक्ति को बदलकर संज्ञेय अपराध किए जाने के संबंध में प्रथम इत्तिला को, चाहे वह मौखिक या लिखित में दी गई हो, लेखबद्ध करना और प्रान्तीय सरकार द्वारा ऐसी प्रथम इत्तिला को लेखबद्ध करने के लिए पृथक् रूप से विहित पुस्तक में प्रविष्ट करना बना दिया गया ।

31. इस प्रकार, 1898 की संहिता द्वारा जो महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया था, वह धारा 154, अर्थात्, संज्ञेय अपराध किए जाने के संबंध में प्रथम इत्तिला को विशेष पुस्तक में लेखबद्ध करने की अपेक्षा अधिरोपित

करने वाले उपबंध को धारा 156, अर्थात्, संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने के संबंध में पुलिस अधिकारी को सशक्त करने वाले उपबंध के पूर्व स्थापित करने की बाबत था । इस प्रकार, उपबंधों के ऐसे स्थापन का उद्देश्य स्पष्ट था, जो कि यह सुनिश्चित करना था कि प्रथम इत्तिला का लेखबद्ध किया जाना पुलिस द्वारा किए जाने वाले किसी अन्वेषण का आरंभिक बिन्दु होना चाहिए । अन्वेषण की समीचीनता के हित में चूंकि अन्वेषण आरंभ करने के लिए मजिस्ट्रेट की अनुज्ञा अभिप्राप्त करने का सुरक्षोपाय नहीं था इसलिए प्रथम इत्तिला का उनकी पुस्तकों में इत्तिला करने वाले के हस्ताक्षर/मुद्रा सहित लेखबद्ध किया जाना पुलिस द्वारा अन्वेषणात्मक शक्तियों का अत्यधिक, असद्भाविक और अवैध प्रयोग करने के विरुद्ध अत्यंत मूल्यवान सुरक्षोपाय के रूप में कार्य करेगा ।

32. संहिता की धारा 12 में अंतर्विष्ट उपबंध पुलिस को इत्तिला देने और उनकी अन्वेषण करने की शक्ति के संबंध में है । उक्त अध्याय में वह प्रक्रिया उपवर्णित है जो अन्वेषण के दौरान अपनाई जानी है । उक्त अध्याय में विहित प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जाने वाला उद्देश्य दांडिक विधि को गतिशील बनाना और सभी प्रक्रिया संबंधी सुरक्षोपायों के लिए उपबंध करना है जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अन्वेषण ऋजु है और असद्भाविक नहीं है और अन्वेषण के दौरान एकत्रित साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने की कोई गुंजाइश नहीं है ।

33. इसके अलावा, विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री शेखर नफादे ने यह दलील दी कि भारतीय दंड संहिता में धारा 166-क के अंतःस्थापन से यह उपदर्शित होता है कि उक्त धारा में विनिर्दिष्ट अपराधों से भिन्न सभी अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना अनिवार्य नहीं है । दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 द्वारा भारतीय दंड संहिता में धारा 166-क अंतःस्थापित की गई थी, जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

> "धारा 166-क – जो कोई लोक सेवक होते हुए, –
>
> (क) विधि के किसी ऐसे निदेश की, जो उसको किसी अपराध या किसी अन्य मामले में अन्वेषण के प्रयोजन के लिए, किसी व्यक्ति की किसी स्थान पर उपस्थिति की अपेक्षा किए जाने से प्रतिषिद्ध करता है, जानते हुए अवज्ञा करेगा; या
>
> (ख) किसी ऐसी रीति को, जिसमें वह ऐसा अन्वेषण करेगा, विनियमित करने वाली विधि के किसी अन्य निदेश को,

किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए, जानते हुए अवज्ञा करेगा; या

(ग) धारा 326-क, धारा 326-ख, धारा 354, धारा 354-ख, धारा 370, धारा 370-क, धारा 376, धारा 376-क, धारा 376-ख, धारा 376-ग, धारा 376-घ, धारा 376-ङ या धारा 509 के अधीन दंडनीय संज्ञेय अपराध के संबंध में उसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 की उपधारा (1) के अधीन दी गई किसी सूचना को लेखबद्ध करने में असफल रहेगा,

वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।"

धारा 166-क में यह अधिकथित किया गया है कि यदि कोई पुलिस सेवक (पुलिस अधिकारी) धारा 326-क, धारा 326-ख, धारा 354, धारा 354-ख, धारा 370, धारा 370-क, धारा 376, धारा 376-क, धारा 376-ख, धारा 376-ग, धारा 376-घ, धारा 376-ङ या धारा 509 के अधीन दंडनीय संज्ञेय अपराधों के संबंध में संहिता की धारा 154(1) के अधीन उसे दी गई कोई इत्तिला लेखबद्ध करने में असफल रहता है तो उसे उस अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडित किया जाएगा जो छह मास से कम नहीं होगा किन्तु जो दो वर्ष तक बढ़ाया जा सकेगा और जुर्माने के लिए भी दायी होगा । इस प्रकार, विद्वान् काउन्सेल का पक्षकथन यह है कि इस उपबंध से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना अनिवार्य है और पुलिस अधिकारी के पास उक्त धारा में विनिर्दिष्ट अपराधों से संबंधित मामले में कोई विवेकाधिकार नहीं है । अतः, उसके अनुसार, विधान-मंडल ने यह स्वीकार किया है कि जहां तक अन्य संज्ञेय अपराधों का संबंध है, पुलिस के पास प्रारंभिक जांच करने का तब विवेकाधिकार है यदि इत्तिला की शुद्धता के बारे में कोई संदेह होता है ।

34. यद्यपि यह तर्क इतना प्रत्ययकारी है जितना यह प्रतीत होता है तथापि, हमें संदेह है कि क्या उक्त उपबंध में प्रयुक्त असंदिग्ध शब्दों का उल्लंघन करते हुए ऐसी उपधारणा की जा सकती है । अतः, दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 द्वारा भारतीय दंड संहिता में धारा 166-क के अंतःस्थापन को उपबंध के अनुकूल न कि उसके प्रतिकूल पढ़ा जाना

चाहिए । धारा 166-क का अंतःस्थापन हाल ही में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के कारण हुआ था । यह संशोधन करने में विधान-मंडल का आशय महिलाओं के सुरक्षोपायों में वृद्धि करने का उपबंध करने के लिए इससे पूर्व विद्यमान उपबंधों को कड़ा बनाना है । अतः, विधान-मंडल ने हमारे देश में महिलाओं के विरुद्ध बढ़ते अपराधों को देखते हुए पुलिस अधिकारियों को इन मामलों में प्रथम इत्तिला रिपोर्टें रजिस्ट्रीकृत करने में असफल रहने पर अभिव्यक्ततः दंडित करना उचित समझा । इसके अंतःस्थापन को इससे भिन्न कोई अन्य अर्थ समनुदेशित नहीं किया जा सकता है ।

35. इस पृष्ठभूमि में अब हम निर्देशित विवाद्यक के पक्ष और विरोध, दोनों के संबंध में विभिन्न विनिश्चयों के प्रकाश में इन निवेदनों पर विचार करेंगे ।

धारा 154 का निर्वचन :

36. इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि निर्वचन की प्रत्येक पद्धति में किसी कानून के निर्वचन का सर्वप्रथम और प्रमुख सिद्धांत निर्वचन का शाब्दिक नियम है । प्रारंभ में हमें यह देखना है कि उपबंध में क्या कहा गया है । परिणामस्वरूप, धारा 154 में प्रयुक्त भाषा विधायी आशय का निश्चायक कारक है । संहिता की धारा 154(1) के पठन मात्र से यह उपबंधित है कि संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी । संहिता की धारा 154(1) की भाषा में कोई संदिग्धता नहीं है ।

37. इस प्रक्रम पर, **मैसर्स हीरालाल रतनलाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों के प्रति निर्देश करना उचित है जोकि निम्न प्रकार हैं :–

> "किसी कानूनी उपबंध का अर्थान्वयन करते समय अर्थान्वयन का सर्वप्रथम और प्रमुख नियम शाब्दिक अर्थान्वयन है । प्रारंभ में ही हमें यह देखना होता है कि उस उपबंध में क्या कहा गया है ? यदि उपबंध असंदिग्ध है और यदि उस उपबंध से विधायी आशय स्पष्ट होता है तो हमें कानूनों के अर्थान्वयन के अन्य नियमों की सहायता लेने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए । कानूनों के अर्थान्वयन के अन्य नियमों की सहायता लेने की तब अपेक्षा होती है जब विधायी

आशय स्पष्ट न हो .... ।"

उपरोक्त विनिश्चय का अनुसरण इस न्यायालय द्वारा **बी. प्रेमानंद** (उपर्युक्त) वाले मामले में किया गया था और **हीरालाल रतनलाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् इस न्यायालय ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "9. इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि निर्वचन की प्रत्येक पद्धति में किसी कानून के निर्वचन का सर्वप्रथम और प्रमुख सिद्धांत निर्वचन का शाब्दिक नियम होता है । निर्वचन के अन्य नियमों, अर्थात्, रिष्टि नियम, सप्रयोजन निर्वचन, इत्यादि का अवलंब तभी लिया जा सकता है जब किसी कानून के साधारण शब्द अस्पष्ट हैं या जिनसे कोई बोधगम्य परिणाम नहीं निकलते हैं या जिनका शाब्दिक रूप से पठन करने पर कानून का उद्देश्य ही अकृत हो जाएगा । जहां किसी कानून के शब्द पूर्णतः स्पष्ट और असंदिग्ध हैं वहां शाब्दिक नियम से भिन्न निर्वचन के सिद्धांतों का अवलंब नहीं लिया जा सकता है, देखिए स्वीडिश मैच ए. बी. **बनाम** सेबी, (2004) 11 एस. सी. सी. 641."

अतः, धारा 154(1) की भाषा का शाब्दिक अर्थान्वयन के अलावा कोई अन्य अर्थान्वयन करने की गुंजाइश नहीं है ।

38. धारा 154 का विधायी आशय **भजन लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में विशद रूप से सविस्तार प्रतिपादित किया गया है जोकि निम्नलिखित रूप में है :–

> "31. संहिता की धारा 154(1) में अधिष्ठापित विधिक आज्ञा यह है कि संज्ञेय अपराध किए जाने से संबद्ध प्रत्येक इत्तिला [संहिता की धारा 2(ग) के अंतर्गत यथापरिभाषित] यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है (जिस पर वह लेखबद्ध की जानी होती है) या लिखित रूप में दी गई है [संहिता की धारा 2(ण) के अर्थ में] और इत्तिलाकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित एक पुस्तक में दर्ज की जानी चाहिए जो ऐसे अधिकारी द्वारा ऐसे प्ररूप में रखी जाए, जैसा राज्य सरकार विहित करे । वह प्ररूप सामान्यतया प्रथम इत्तिला रिपोर्ट कहलाता है और उक्त प्ररूप में इत्तिला दर्ज करने का कृत्य अपराध या मामले का रजिस्ट्रीकरण कहलाता है ।

32. संहिता की धारा 154(1) की आज्ञा के अनुपालन में संज्ञेय अपराध को प्रकट करने वाली इत्तिला के आधार पर अपराध या मामले के रजिस्ट्रीकरण के प्रक्रम पर संबंधित पुलिस अधिकारी यह जांच आरंभ नहीं कर सकता कि क्या इत्तिलाकर्ता द्वारा दी गई इत्तिला विश्वसनीय और वास्तविक है या नहीं और इस आधार पर मामला दर्ज करने से इनकार नहीं कर सकता कि इत्तिला विश्वसनीय नहीं है । इसके विपरीत पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी कानूनी रूप से मामला दर्ज करने के लिए और अन्वेषण आरंभ करने के लिए कानूनी तौर पर बाध्य है यदि उसके पास अपराध किए जाने का संदेह करने का कारण है जिसका अन्वेषण करने के लिए वह संहिता की धारा 156 के अधीन सशक्त है जोकि धारा 157 के परन्तुक के अधीन रहते हुए है । (चूंकि हम इस निर्णय के आगामी भाग में संहिता की धारा 156 और 157 की परिधि के अंतर्गत संज्ञेय अपराध के अन्वेषण के क्षेत्र में पुलिस अधिकारी की शक्तियों के बारे में विस्तृत विवेचन करना चाहते हैं इसलिए हम वर्तमान संदर्भ में इन धाराओं पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं करना चाहते) यदि पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी निहित अधिकारिता का प्रयोग करने और रिपोर्ट किए गए संज्ञेय अपराध की इत्तिला पर मामला दर्ज करने से इनकार करता है और ऐसा करके अपने कानूनी कर्तव्य का उल्लंघन करता है तो उससे व्यथित व्यक्ति लिखित रूप में और डाक द्वारा उस इत्तिला का सार संबंधित पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है । यदि पुलिस अधीक्षक का समाधान हो जाता है कि उसके पास भेजी गई इत्तिला से संज्ञेय अपराध प्रकट होता है तो उसे या तो स्वयं मामले में अन्वेषण करना चाहिए या संहिता की धारा 145 की उपधारा (3) द्वारा उपबंधित रीति से अपने अधीनस्थ किसी पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण किए जाने का निदेश देना चाहिए ।

33. ध्यान रहे कि संहिता की धारा 154(1) में विधान-मंडल ने अपनी सामूहिक बुद्धिमत्ता से ध्यानपूर्वक और सावधानी से "इत्तिला" शब्द का प्रयोग बिना किसी विशेषण के किया है । जैसे संहिता की धारा 41(1)(क) या (छ) में कहा गया है जिसमें "उचित परिवाद" और "विश्वसनीय इत्तिला" पदों का प्रयोग किया गया है । प्रकट है कि संहिता की धारा 41(1)(क) और (छ) से भिन्न धारा 154(1) में "इत्तिला" शब्द के साथ किसी विशेषण का प्रयोग न करने का कारण

यह हो सकता है कि पुलिस अधिकारी को संज्ञेय अपराध करने से संबंधित इत्तिला लेखबद्ध करने और उस पर मामला दर्ज करने से इस आधार पर इनकार नहीं करना चाहिए कि उस इत्तिला की युक्तियुक्तता या विश्वसनीयता के बारे में उसका समाधान नहीं हुआ है । दूसरे शब्दों में, उक्त इत्तिला की "युक्तियुक्तता" या "विश्वसनीयता" मामला दर्ज करने की पुरोभाव्य शर्त नहीं है । वर्तमान धारा 154 की पुरानी संहिता की धारा से तुलना करने पर पता चलता है कि विधान-मंडल से सप्रयोजन "इत्तिला" शब्द का प्रयोग विशेषण के बिना करना ठीक समझा । भारत की विधान परिषद् द्वारा पारित दंड प्रक्रिया संहिता, 1861 (1861 का अधिनियम सं. 25) की धारा 139 में लिखा था कि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी से किया गया "प्रत्येक परिवाद" या "इत्तिला" लेखबद्ध की जानी चाहिए । बाद में 1872 की संहिता (1872 का अधिनियम सं. 10) की धारा 112 द्वारा उक्त उपबंध में उपांतरण किया गया जो इस प्रकार थी कि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी से किया गया "प्रत्येक परिवाद" लेखबद्ध किया जाएगा । "परिवाद" शब्द जो 1861 और 1872 की दो पुरानी संहिताओं में आया था, विलुप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर 1882 और 1898 की संहिताओं में "इत्तिला" शब्द का प्रयोग किया गया जो अब 1973 की वर्तमान संहिता (1974 का अधिनियम सं. 2) की धारा 154, 155, 157 और 190(ग) में प्रयुक्त किया गया है । समस्त संहिताओं के संपूर्ण पाठ से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्टों को लेखबद्ध करने के लिए जो अनिवार्य शर्त है वह यह है कि इत्तिला हो और वह इत्तिला संज्ञेय अपराध प्रकट करती हो ।

34. अतः, यह प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट है कि यदि संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली कोई इत्तिला पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष रखी जाती है जो संहिता की धारा 154(1) की अपेक्षाओं की पूर्ति करती है तो उक्त पुलिस अधिकारी के पास विहित प्ररूप में उसका सार दर्ज करने, अर्थात्, ऐसी इत्तिला के आधार पर मामला दर्ज करने के सिवाय कोई चारा नहीं है ।"

39. परिणामस्वरूप, जो शर्त संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लेखबद्ध करने के लिए अनिवार्य है वह यह है कि इत्तिला होनी चाहिए और यह कि उस इत्तिला से संज्ञेय अपराध प्रकट होना

चाहिए । यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष धारा 154(1) की अपेक्षा की पूर्ति करते हुए संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली कोई इत्तिला दी जाती है तो उक्त पुलिस अधिकारी के पास उसके सार को विहित प्ररूप में प्रविष्ट करने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं होता है, अर्थात्, ऐसी इत्तिला के आधार पर मामला दर्ज करना । संहिता की धारा 154 के उपबंध आज्ञापक हैं और संबंधित अधिकारी संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली इत्तिला के आधार पर मामला रजिस्ट्रीकृत करने के लिए कर्तव्यबद्ध होता है । इस प्रकार, संहिता की धारा 154(1) के स्पष्ट शब्दों का शाब्दिक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए ।

'शैल'

40. संहिता की धारा 154(1) में "शैल"' शब्द का प्रयोग करने से यह विधायी आशय स्पष्टतः दर्शित होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक है यदि पुलिस को दी गई इत्तिला से संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट होता है ।

41. **खूब चन्द** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "7. ...... "शैल" पद अपने साधारण महत्व की दृष्टि से आज्ञापक है और न्यायालय उस पद का साधारणतया तब तक यही निर्वचन करेगा जब तक कि ऐसे निर्वचन के परिणामस्वरूप कुछ बेतुके या असुविधाजनक परिणाम न निकलते हों या वह अधिनियम के अन्य भागों से एकत्र विधायी आशय से असंगत न हो । उक्त अभिव्यक्ति का अर्थान्वयन विशिष्ट अधिनियम के उपबंधों, उस विन्यास, जिसमें अभिव्यक्ति प्रकट होती है, उस उद्देश्य, जिसके लिए निदेश दिया जाता है, उन परिणामों, जो निदेश के अतिलंघन से निकलेंगे और ऐसी अन्य विचारणाओं, पर निर्भर करता है ...।"

42. यह उल्लेख करना सुसंगत है कि संहिता की धारा 154(1) के संदर्भ में "शैल" शब्द का प्रयोग करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पुलिस द्वारा सभी संज्ञेय अपराधों से संबंधित समस्त इत्तिला तुरंत रजिस्ट्रीकृत की जाए और विधि के उपबंधों के अनुसार उनका अन्वेषण किया जाए ।

43. अपराधों का अन्वेषण और अपराधियों का अभियोजन राज्य के कर्तव्य हैं । "संज्ञेय अपराधों" के लिए पुलिस पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

रजिस्ट्रीकृत करने और संहिता की धारा 157 के अधीन विनिर्दिष्ट रूप से अन्यथा अनुज्ञात के सिवाय अन्वेषण करने का कर्तव्य डाला गया है । यदि पुलिस को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के मामले में कोई विवेकाधिकार, विकल्प या ढील अनुज्ञात की जाती है तो इससे लोक व्यवस्था की स्थिति में गंभीर परिणाम हो सकते हैं और इससे पीड़ितों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है जिसमें उनके समानता के मूल अधिकार का अतिक्रमण भी है ।

44. अतः, वह संदर्भ जिसमें संहिता की धारा 154(1) में "शैल" शब्द प्रकट होता है, वह उद्देश्य जिसके लिए इसका प्रयोग किया गया है और वे परिणाम जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के निदेश का अतिलंघन करने से निकलेंगे, इन सभी कारकों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि धारा 154(1) में प्रयुक्त "शैल" शब्द को उसका साधारण अर्थ दिए जाने की आवश्यकता है क्योंकि उसका स्वरूप आज्ञापक है । संहिता की धारा 154(1) के उपबंधों का कानूनी स्कीम के प्रकाश में पठन करने पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच आरंभ करने के लिए कोई विवेकाधिकार प्रदान करने की गुंजाइश नहीं है । विधि की यह स्थापित स्थिति है कि यदि उपबंध असंदिग्ध है और विधायी आशय स्पष्ट है तो न्यायालय को अर्थान्वयन के किसी अन्य नियम को लागू करने की आवश्यकता नहीं है ।

45. उपरोक्त कारणों से "शैल" शब्द का प्रयोग करने तथा अधिनियम की स्कीम से यह निष्कर्ष निकलता है कि विधायिका का आशय यह था कि यदि कोई संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित इत्तिला दी जाती है तो वह पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा आज्ञापक रूप से रजिस्ट्रीकृत की जाएगी । "शैल" शब्द का पठन "में" शब्द के रूप में करना, जैसा कि कुछ काउन्सेलों द्वारा दलील दी गई है, संहिता की स्कीम के विरुद्ध होगा । संहिता की धारा 154 का अर्थान्वयन यथार्थतः किया जाना चाहिए और "शैल" शब्द को उसका स्वाभाविक अर्थ प्रदान किया जाना चाहिए । निर्वचन के स्वर्णिम नियम को केवल ऐसे मामलों में लागू किया जा सकता है जहां धारा की भाषा संदिग्ध हो और/या जिसके परिणामस्वरूप विसंगति उत्पन्न हो ।

46. उपरोक्त कारणों से हमारा यह समाधान हो गया है कि संहिता की धारा 154(1) में इस संबंध में कोई संदिग्धता नहीं है और वह स्पष्ट निबंधनों में है । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि संहिता की धारा 39

प्रत्येक व्यक्ति पर कतिपय अपराध किए जाने के बारे में इत्तिला देने का कानूनी कर्तव्य अधिरोपित करती है जिनमें भारतीय दंड संहिता की धारा 121 से 126, 302, 64-क, 382, 392 इत्यादि के अंतर्गत आने वाले अपराध शामिल हैं । यह सुझाव देना असंगत होगा कि यद्यपि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह कोई अपराध किए जाने के बारे में इत्तिला दे किन्तु पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के लिए यह बाध्यकर नहीं है कि वह रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करे । संहिता की धारा 39 में आने वाले "शैल" शब्द को वही अर्थ दिया जाना है जोकि संहिता की धारा 154(1) में आने वाले "शैल" शब्द को दिया जाता है ।

पुस्तक/डायरी

47. छत्तीसगढ़ राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अपर महासालिसिटर ने यह दलील दी है कि धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला साधारण डायरी/थाना डायरी/दैनिक डायरी में, जोकि पुलिस थाने में रखी जाती है, प्रविष्टि के पश्चात् पुस्तक में लेखबद्ध की जानी होती है । अतः, विद्वान् अपर महासालिसिटर के अनुसार, प्रथम इत्तिला साधारण डायरी में सबसे पहला दस्तावेज़ होता है और इसके पश्चात् यदि प्रारंभिक जांच की आवश्यकता होती है तो पुलिस अधिकारी जांच कर सकता है और इसके पश्चात् इत्तिला प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत की जाएगी ।

48. यह निर्वचन पूर्णतः निराधार है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, वास्तव में वह इत्तिला है जो सबसे पहले प्राप्त होती है जोकि या तो लिखित में दी जाती है या लेखबद्ध की जाती है । राज्य सरकार द्वारा विहित डायरी में इसके केवल "सार" की प्रविष्टि नहीं की जाती है । "साधारण डायरी" (जो कि कुछ राज्यों में "थाना डायरी" या "दैनिक डायरी" के रूप में जानी जाती है) संहिता की धारा 154 के अधीन नहीं रखी जाती है बल्कि वह यथास्थिति, पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 44 के अधीन उन राज्यों में जिन्हें यह लागू होती है या किसी राज्य को लागू पुलिस अधिनियम के संबंधित उपबंधों के अधीन या किसी राज्य के पुलिस मैनुअल के अधीन रखी जाती है । पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 44 नीचे उद्धृत की जाती है :–

> "44. **पुलिस अधिकारी डायरी रखेंगे** – प्रत्येक पुलिस थाने के भारसाधक प्रत्येक पदाधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसे प्ररूप में, जो राज्य सरकार समय-समय पर विहित करे, एक साधारण डायरी रखे और किए गए सब परिवादों और आरोपों को, गिरफ्तार

किए गए सब व्यक्तियों के नामों को, परिवादियों के नामों को उनके विरुद्ध आरोपित अपराधों को, उन आयुधों या संपत्ति को, जो उनके कब्जे से अन्यथा ली गई हो और उन साक्षियों के नामों को, जिनकी परीक्षा की गई है, उसमें अभिलिखित करे । जिले का मजिस्ट्रेट ऐसी डायरी को मंगवाने और उसका निरीक्षण करने के लिए स्वतंत्र होगा ।"

49. यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि वर्ष 1861 के दौरान जब उपर्युक्त पुलिस अधिनियम, 1861 पारित किया गया था, दंड प्रक्रिया संहिता, 1861 भी पारित की गई थी । उस संहिता की धारा 139 प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के संबंध में थी और इस धारा में भी "डायरी" शब्द के प्रति निर्देश किया गया है, जैसा कि इस धारा की भाषा से स्पष्ट होता है, जैसी कि वह नीचे उद्धृत की जाती है :–

"139. पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष किया गया प्रत्येक परिवाद या दी गई इत्तिला लेखबद्ध की जाएगी और उसका सार ऐसे अधिकारी द्वारा रखी गई डायरी में ऐसे प्ररूप में प्रविष्ट किया जाएगा, जोकि स्थानीय सरकार विहित करे ।"

इस प्रकार, पुलिस अधिनियम, 1861 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1861 में, जोकि दोनों एक ही वर्ष में पारित किए गए थे, एक ही शब्द "डायरी" का प्रयोग किया गया है ।

50. तथापि, वर्ष 1872 में एक नई संहिता पारित की गई थी जोकि दंड प्रक्रिया संहिता, 1872 के नाम से जानी जाती थी । उस संहिता की धारा 112 प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के मुद्दे के संबंध में थी और वह नीचे उद्धृत की जाती है :–

"112. पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष किया गया प्रत्येक परिवाद लेखबद्ध किया जाएगा और वह करने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित, मुद्रांकित या चिह्नित होगा और उसका सार ऐसे अधिकारी द्वारा रखी गई **पुस्तक** में ऐसे प्ररूप में प्रविष्ट किया जाएगा, जोकि स्थानीय सरकार विहित करे ।"

51. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1872 में एक विचलन किया गया था और "डायरी" के स्थान पर "पुस्तक" शब्द का प्रयोग किया गया था । "पुस्तक" शब्द स्पष्ट रूप से प्रथम इत्तिला रिपोर्टों के रजिस्ट्रीकरण के लिए संहिता के अधीन रखी जाने वाली प्रथम इत्तिला

पुस्तक के रूप में निर्देश करता था ।

52. यह प्रश्न अब अनिर्णीत विषय नहीं रहा है कि क्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक में या साधारण डायरी में लेखबद्ध की जानी है । यह विवाद्यक इस न्यायालय द्वारा इससे पूर्व प्राधिकारपूर्वक विनिश्चित किया जा चुका है ।

53. **मधु बाला** बनाम **सुरेश कुमार**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर में अवश्य ही रजिस्ट्रीकृत की जानी चाहिए जोकि एक पुस्तक होगी जिसमें 200 पृष्ठ होंगे । यह सही है कि इत्तिला के सार का उल्लेख दैनिक डायरी (या साधारण डायरी) में भी करना होता है । किन्तु मूलभूत अपेक्षा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक या रजिस्टर में रजिस्ट्रीकृत करना है । **भजन लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में भी इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को एक पुस्तक में ऐसी रीति में प्रविष्ट करना होगा जिसे सामान्य रूप से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट कहा जाता है ।

54. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकरण एक पुस्तक में जिसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक या प्रथम इत्तिला रजिस्टर कहा जाता है, करना होता है । निस्संदेह, इसके अलावा, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के सारांश या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के सार का उल्लेख इसके साथ-साथ सुसंगत राज्य उपबंधों के अधीन यथास्थिति, संबंधित पुलिस अधिनियम या नियमों में आदिष्ट साधारण डायरी में भी किया जा सकता है ।

55. साधारण डायरी किसी पुलिस थाने में होने वाले सभी महत्वपूर्ण संव्यवहारों/घटनाओं का अभिलेख है, जिसमें पुलिस कर्मचारियों का आना-जाना, कार्यभार का सौंपना या ग्रहण करना, किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी, विधि और व्यवस्था संबंधी कर्तव्यों के ब्यौरे, वरिष्ठ अधिकारियों के दौरे, इत्यादि भी हैं । इसी संदर्भ में ही पुलिस थाने में रजिस्ट्रीकृत की जा रही प्रत्येक प्रथम इत्तिला के सारांश या सार का उल्लेख भी साधारण डायरी में होता है चूंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना पुलिस थाने की बहुत महत्वपूर्ण घटना होती है । चूंकि साधारण डायरी एक ऐसा अभिलेख है जो कालानुक्रम में दैनिक आधार पर रखा जाता है (प्रत्येक दिन

---

[1] (1997) 8 एस. सी. सी. 476.

नए संख्यांक 1 से आरंभ होकर), इसलिए साधारण डायरी प्रविष्टि निर्देश का भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में साथ-साथ उल्लेख किया जाता है चूंकि ये दोनों एक साथ तैयार की जाती हैं ।

56. यह इंगित करना सुसंगत है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक वार्षिक आधार पर दिए गए उसके संख्यांक सहित रखी जाती है । इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को दिया जाने वाला एक विशिष्ट वार्षिक संख्यांक होता है । यह उसी तरीके से होता है जैसे न्यायालयों में मामला संख्यांक दिए जाते हैं । इसी कारण, जहां कहीं भी आवश्यक हो, पर्यवेक्षी पुलिस अधिकारियों द्वारा और न्यायालयों द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्टों के रजिस्ट्रीकरण पर कड़ा नियंत्रण और नजर रखना संभव होता है । प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति वरिष्ठ अधिकारियों और संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजी जाती है ।

57. दूसरी ओर, साधारण डायरी में प्रत्येक दिवस की कार्यवाहियों के असंख्य अन्य ब्यौरे होते हैं । साधारण डायरी की प्रति पुलिस थाने पर अधिकारिता रखने वाले न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास नहीं भेजी जाती है हालांकि इसकी एक प्रति वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के पास भेजी जाती है । इस प्रकार, वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों और/या न्यायालयों द्वारा साधारण डायरी में उल्लिखित अन्य ब्यौरों की बृहद मात्रा और प्रत्येक दिन बदलते संख्यांकों के कारण उसमें लेखबद्ध प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर कड़ा नियंत्रण रखना संभव नहीं होता है ।

58. जैसे ही पुलिस थाने में शिकायत दी जाती है, शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर प्रथम इत्तिला पुस्तक में अभिप्राप्त किए जाते हैं । दूसरी ओर, साधारण डायरी में शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर अभिप्राप्त करने की ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है । इसके अलावा, कभी-कभी की गई शिकायत में पृष्ठों की संख्या काफी हो सकती है, इस दशा में साधारण डायरी में शिकायत का सारांश न कि पूरी शिकायत लेखबद्ध की जाती है । यह इस सुझाव से मेल नहीं खाता है कि साधारण डायरी में जो कुछ लेखबद्ध किया जाता है उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने संबंधी धारा 154 की अपेक्षा का पूरा किया जाना/अनुपालन समझा जाना चाहिए । वास्तव में, प्रायिक प्रक्रिया संपूर्ण शिकायत को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की पुस्तक में लेखबद्ध करना है (या उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्ररूप के साथ उपाबद्ध करना है) किन्तु साधारण डायरी में लगभग एक या दो पैराग्राफ (इत्तिला का सारांश) ही लेखबद्ध करना है ।

59. उपर्युक्त कारणों से, यह इंगित करना लाभप्रद है कि संहिता संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची की प्रविष्टि 2 के अधीन अधिनियमित की गई थी, जोकि नीचे उद्धृत की जाती है :–

> "2. दंड प्रक्रिया जिसके अंतर्गत ऐसे सभी विषय हैं जो इस संविधान के प्रारंभ पर दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत हैं ।"

दूसरी ओर, पुलिस अधिनियम, 1861 (या संबंधित राज्यों में अन्य समरूप अधिनियम) संविधान की सातवीं अनुसूची की राज्य सूची की प्रविष्टि 2 के अधीन अधिनियमित किए गए थे, जोकि नीचे उद्धृत की जाती है :–

> "2. सूची 1 की प्रविष्टि 2-क के उपबंधों के अधीन रहते हुए पुलिस (जिसके अंतर्गत रेल और ग्राम पुलिस है) ।"

60. अब इस प्रक्रम पर संविधान के अनुच्छेद 254(1) के प्रति निर्देश करना प्रासंगिक है जिसमें संसद् और राज्य विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच असंगतियों से संबंधित उपबंध अधिकथित किए गए हैं । अनुच्छेद 254(1) निम्न प्रकार उद्धृत किया जाता है :–

> "**254. संसद् द्वारा बनाई गई विधियों और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों में असंगति** – (1) यदि किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि का कोई उपबंध संसद् द्वारा बनाई गई विधि के, जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद् सक्षम है, किसी उपबंध के या समवर्ती सूची में प्रगणित किसी विषय के संबंध में विद्यमान विधि के किसी उपबंध के विरुद्ध है तो खंड (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, यथास्थिति, संसद् द्वारा बनाई गई विधि, चाहे वह ऐसे राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि से पहले या उसके बाद में पारित की गई हो, या विद्यमान विधि, अभिभावी होगी और उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि उस विरोध की मात्रा तक शून्य होगी ।"

इस प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 254(1) की आज्ञा से यह स्पष्ट होता है कि यदि संहिता और पुलिस अधिनियम, 1861 के उपबंधों के बीच कोई असंगति है तो संहिता के उपबंध अभिभावी होंगे और पुलिस अधिनियम के उपबंध विरोध की सीमा तक शून्य होंगे ।

61. यदि संहिता की धारा 154 और पुलिस अधिनियम की धारा 44 के उपबंधों में इस तथ्य के बारे में कोई विसंगति है कि क्या प्रथम इत्तिला

रिपोर्ट, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक में रजिस्ट्रीकृत की जानी है अथवा साधारण डायरी में रजिस्ट्रीकृत की जानी है, तो संहिता की धारा 154 के उपबंध अभिभावी होंगे और पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 44 के उपबंध (या अन्य संबंधित राज्यों में संबंधित तत्स्थानी पुलिस अधिनियम या नियमों के उपबंध) विरोध की सीमा तक शून्य होंगे । इस प्रकार, जैसा कि संहिता की धारा 154 के अधीन आदिष्ट है, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक में लेखबद्ध की जानी चाहिए और यह कहना सही नहीं है कि इत्तिला पहले साधारण डायरी में लेखबद्ध की जाएगी और प्रारंभिक जांच के पश्चात् ही, यदि अपेक्षित हो, इत्तिला प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत की जाएगी ।

62. तथापि, इस न्यायालय ने **तपन कुमार सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि समुचित मामले में साधारण डायरी की प्रविष्टि को प्रथम इत्तिला माना जा सकता है जहां वह संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट करती हो । उसमें निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "15. हमारे समक्ष अपीलार्थियों द्वारा इस निष्कर्ष की शुद्धता को ही चुनौती दी गई है । उन्होंने यह दलील दी कि साधारण डायरी प्रविष्टि में लेखबद्ध इत्तिला से संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट नहीं होता है । उन्होंने यह निवेदन किया कि भले ही उनकी यह दलील स्वीकार नहीं की जाती है कि साधारण डायरी प्रविष्टि लेखबद्ध करने के पश्चात् केवल प्रारंभिक जांच की गई थी, तब भी वे अन्वेषण की वैधता को इस आधार पर कायम रखने के हकदार हैं कि साधारण डायरी प्रविष्टि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मानी जा सकती है चूंकि इससे संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट होता था ।
>
> 16. हमारे समक्ष पक्षकारों ने इस विधिक स्थिति के संबंध में विवाद नहीं किया था कि साधारण डायरी प्रविष्टि ऐसे समुचित मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मानी जा सकती है जहां इससे संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है । यदि अपीलार्थियों की दलील को कायम रखा जाता है तो उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया जाना चाहिए क्योंकि यदि विधि की दृष्टि से संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट करने वाली कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट थी तो पुलिस को अन्वेषण करने और अन्वेषण के प्रक्रम में तलाशी और अभिग्रहण करने की शक्ति और अधिकारिता थी । अतः हमारे लिए प्रारंभिक जांच की

विधिमान्यता और तलाशी और अभिग्रहण की विधिमान्यता के प्रश्न पर न्यायालय में उद्धृत नजीरों पर विचार करना आवश्यक नहीं है ।

* * * *

19. उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार करने में गलती की कि पुलिस द्वारा प्राप्त की गई इत्तिला प्रथम इत्तिला रिपोर्ट नहीं मानी जा सकती थी चूंकि अभिकथन अस्पष्ट था क्योंकि यह नहीं कहा गया था कि एक लाख रुपए की राशि की मांग किससे की गई थी और किसने उसे अभिगृहीत किया था । न ही यह कथन किया गया था कि ऐसी मांग और अभिग्रहण किसी शासकीय कार्य को करने या न करने या अपने शासकीय कृत्य का प्रयोग करने में किसी व्यक्ति को अनुग्रह या अननुग्रह दर्शाने या दर्शाने से इनकार करने या किसी व्यक्ति को कोई सेवा या अपकार करने या करने का प्रयत्न करने के लिए हेतुक या पारिश्रमिक के रूप में किया गया है । इस प्रकार, किसी पुलिस अधिकारी के लिए कोई ऐसा अपराध किए जाने के बारे में संदेह करने का कोई आधार नहीं है, जिसके संबंध में वह संहिता की धारा 156 के अधीन अन्वेषण करने के लिए सशक्त है ।"

63. अतः, यह असंदिग्ध रूप से स्पष्ट है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है और यह भी कि इसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुस्तक में प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को विशिष्ट वार्षिक संख्यांक देकर लेखबद्ध किया जाना होता है जिससे कि वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों द्वारा तथा सक्षम न्यायालय द्वारा, जिसे प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति भेजी जानी आवश्यक है, उसका यथार्थतः पता लगाया जा सके ।

'इत्तिला'

64. विधान-मंडल ने धारा 41(1)(क) और (छ) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति के मुकाबले, जहां किसी व्यक्ति को वारंट के बिना गिरफ्तार करने के लिए प्रयोग की गई अभिव्यक्ति 'युक्तियुक्त परिवाद' या 'विश्वसनीय इत्तिला' है, संहिता की धारा 154(1) में सोच-समझकर 'इत्तिला' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया है । संहिता की धारा 154(1) के अधीन अभिव्यक्ति को आगे 'युक्तियुक्त' या 'विश्वसनीय' शब्द से विशेषित नहीं किया गया है । संहिता की धारा 41(1)(क) और (छ) की तरह धारा 154(1) में 'इत्तिला' शब्द को अविशेषित करने का कारण यह है कि पुलिस अधिकारी को संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित किसी इत्तिला को इस आधार पर लेखबद्ध

करने से इनकार नहीं करना चाहिए कि इत्तिला की युक्तियुक्तता या विश्वसनीयता के संबंध में उसका समाधान नहीं हुआ है । दूसरे शब्दों में, उक्त इत्तिला की युक्तियुक्तता या विश्वसनीयता किसी मामले को रजिस्ट्रीकृत करने की पूर्व शर्त नहीं है ।

65. उपर्युक्त मत इस न्यायालय द्वारा **भजन लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त किया गया है, जोकि निम्न प्रकार है :–

> "33. .... संहिता की धारा 154(1) में विधान-मंडल ने अपनी सामूहिक बुद्धिमत्ता से ध्यानपूर्वक और सावधानी से 'इत्तिला' शब्द का प्रयोग बिना किसी विशेषण के किया है । जैसे संहिता की धारा 41(1)(क) या (छ) में कहा गया है जिसमें 'उचित परिवाद' और 'विश्वसनीय इत्तिला' पदों का प्रयोग किया गया है । प्रकट है कि संहिता की धारा 41(1)(क) और (छ) से भिन्न धारा 154(1) में 'इत्तिला' शब्द के साथ किसी विशेषण का प्रयोग न करने का कारण यह हो सकता है कि पुलिस अधिकारी को संज्ञेय अपराध करने से संबंधित इत्तिला लेखबद्ध करने और उस पर मामला दर्ज करने से इस आधार पर इनकार नहीं करनी चाहिए कि उस इत्तिला की युक्तियुक्तता या विश्वसनीयता के बारे में उसका समाधान नहीं हुआ है । दूसरे शब्दों में, उक्त इत्तिला की 'युक्तियुक्तता' या 'विश्वसनीयता' मामला दर्ज करने की पुरोभाव्य शर्त नहीं है । वर्तमान धारा 154 की पुरानी संहिता की धारा से तुलना करने पर पता चलता है कि विधान-मंडल से सप्रयोजन 'इत्तिला' शब्द का प्रयोग विशेषण के बिना करना ठीक समझा ।"

66. **प्रकाश सिंह बादल** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "71. धारा 154(1) में दी गई विधिक आज्ञा यह है कि [संहिता की धारा 2(ग) के अधीन यथा-परिभाषित] किसी 'संज्ञेय अपराध' के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला यदि [संहिता की धारा 2(ण) के अर्थान्तर्गत] 'किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को' मौखिक रूप में दी गई है (इस दशा में वह लेखबद्ध कर ली जाएगी) या लिखित में दी गई है और उस पर इत्तिला देने वाले व्यक्ति ने हस्ताक्षर किए हैं तो उसे ऐसी पुस्तक में प्रविष्ट किया जाना चाहिए, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे राज्य सरकार

इस निमित्त विहित करे और इस रूप को सामान्य रूप से 'प्रथम इत्तिला रिपोट' कहा जाता है और उक्त रूप में इत्तिला प्रविष्ट करने का कार्य किसी अपराध या किसी मामले को दर्ज करने के रूप में जाना जाता है ।

72. संहिता की धारा 154(1) की आज्ञा का अनुपालन करते हुए कोई संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली इत्तिला के आधार पर कोई अपराध या कोई मामला दर्ज करने के प्रक्रम पर संबंधित पुलिस अधिकारी इस संबंध में कोई जांच प्रारंभ नहीं कर सकता कि क्या इत्तिलाकर्ता द्वारा दी गई इत्तिला विश्वसनीय और असली है अथवा नहीं और इस आधार पर मामला दर्ज करने से इनकार नहीं कर सकता कि इत्तिला अवलंबनीय या विश्वसनीय नहीं है । दूसरी ओर, किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी कानूनी रूप से मामला दर्ज करने और उसके पश्चात् अन्वेषण आरंभ करने के लिए बाध्य है यदि उसके पास यह संदेह करने का कारण हो कि ऐसा अपराध किया गया है जिसका अन्वेषण करने के लिए वह संहिता की धारा 157 के परन्तुक के अध्यधीन उसकी धारा 156 के अधीन सशक्त है । यदि किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी उस अधिकारिता का प्रयोग करने से, जो उसमें निहित है और रिपोर्ट किए गए संज्ञेय अपराध की इत्तिला के आधार पर मामला दर्ज करने से इनकार करता है और उसके कारण उसे सौंपे गए कानूनी कर्तव्य का उल्लंघन करता है तो ऐसी इनकारी से व्यथित व्यक्ति इत्तिला का सार लिखित में और डाक द्वारा संबंधित पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है और यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि उसे प्रेषित इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट होता है तो उसे या तो मामले का स्वयं अन्वेषण करना चाहिए या ऐसे किसी पुलिस अधिकारी द्वारा जो उसके अधीनस्थ हो, संहिता की धारा 154 की उपधारा (3) द्वारा उपबंधित रीति में अन्वेषण करने का निदेश देना चाहिए ।

73. यह उल्लेखनीय है कि संहिता की धारा 154(1) में विधान-मंडल ने अपनी सामूहिक बुद्धिमत्ता का प्रयोग करते हुए सावधानी और सतर्कतापूर्वक 'इत्तिला' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया और उसे संहिता की धारा 41(1)(क) या (छ) में प्रयुक्त रूप में विशेषित नहीं किया जिसमें 'युक्तिसंगत शिकायत' और 'विश्वसनीय इत्तिला' अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया गया है । स्पष्टतः, यह हो सकता है कि संहिता की

धारा 41(1)(क) और (छ) के विपरीत धारा 154(1) में 'इत्तिला' शब्द को इस कारण अविशेषित किया गया हो कि पुलिस अधिकारी को किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित कोई इत्तिला लेखबद्ध करने और इस आधार पर कोई मामला दर्ज करने से इनकार नहीं करना चाहिए कि इत्तिला की युक्तिसंगतता या विश्वसनीयता के बारे में उसका समाधान नहीं हुआ है । दूसरे शब्दों में, उक्त इत्तिला की 'युक्तिसंगतता' या 'विश्वसनीयता' कोई मामला दर्ज करने के लिए पूर्व शर्त नहीं है । वर्तमान धारा 154 की पूर्ववर्ती संहिताओं की धारा से तुलना करने पर यह उपदर्शित होगा कि विधान-मंडल ने जानबूझकर इत्तिला शब्द को विशेषित किए बिना केवल 'इत्तिला' शब्द का प्रयोग करना उचित समझा । भारत की विधायी परिषद् द्वारा पारित दंड प्रक्रिया संहिता, 1861 (1861 का अधिनियम सं. 25) की धारा 139 इस प्रकार पठित है कि किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष की गई 'प्रत्येक शिकायत या इत्तिला' लेखबद्ध की जानी चाहिए, जिस उपबंध को बाद में 1872 की संहिता (1872 का अधिनियम सं. 10) की धारा 112 द्वारा उपांतरित कर दिया गया जो कि बाद में इस प्रकार पठित थी कि किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष की गई 'प्रत्येक शिकायत' लेखबद्ध की जाएगी । 'शिकायत' शब्द का, जो 1861 और 1872 की दो पूर्ववर्ती संहिताओं में आया था, लोप कर दिया गया और उसके स्थान पर 1882 और 1898 की संहिताओं में 'इत्तिला' शब्द का प्रयोग किया गया था जिस शब्द का प्रयोग अब संहिता की धारा 154, 155, 157 और 190(ग) में किया गया है । सभी संहिताओं के समग्र पठन से यह स्पष्ट होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने के लिए अपरिहार्य शर्त यह है कि एक इत्तिला होनी चाहिए और उस इत्तिला से संज्ञेय अपराध प्रकट होना चाहिए ।

74. अतः, यह प्रकटतः स्पष्ट है कि यदि किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष कोई संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली कोई ऐसी इत्तिला दी जाती है जिससे संहिता की धारा 154(1) की अपेक्षाएं पूरी होती हों तो उक्त पुलिस अधिकारी के पास इसके सिवाय कोई विकल्प नहीं होता कि वह उसका सार विहित प्ररूप में प्रविष्ट करे, अर्थात्, ऐसी इत्तिला के आधार पर मामला दर्ज करे ।"

67. **रमेश कुमारी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न

प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"4. यह अब कोई अनिर्णीत विषय नहीं रहा है कि पुलिस अधिकारी को संहिता की धारा 154 के अधीन किसी संज्ञेय अपराध की नागरिक द्वारा शिकायत किए जाने पर आज्ञापक रूप से मामला रजिस्टर करना होता है । विधि के इस प्रश्न का इस न्यायालय द्वारा हरियाणा राज्य और अन्य **बनाम** भजनलाल और अन्य {[1991] 2 उम. नि. प. 812 = (1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 335} वाले मामले में समाधान किया जा चुका है । इस न्यायालय ने संपूर्ण विषय और संहिता की धारा 154 की आज्ञापक प्रकृति की जटिलताओं की परीक्षा करने के पश्चात् निर्णय में जो निष्कर्ष निकाला वह इस प्रकार है –

'32. संहिता की धारा 154(1) की आज्ञा के अनुपालन में संज्ञेय अपराध को प्रकट करने वाली इत्तिला के आधार पर अपराध या मामले के रजिस्ट्रीकरण के प्रक्रम पर संबंधित पुलिस अधिकारी यह जांच आरंभ नहीं कर सकता कि क्या इत्तिलाकर्ता द्वारा दी गई इत्तिला विश्वसनीय और वास्तविक है या नहीं और इस आधार पर मामला दर्ज करने से इनकार नहीं कर सकता कि इत्तिला विश्वसनीय नहीं है । इसके विपरीत पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी कानूनी रूप से मामला दर्ज करने के लिए और अन्वेषण आरंभ करने के लिए कानूनी तौर पर बाध्य है यदि उसके पास अपराध किए जाने का संदेह करने का कारण है जिसका अन्वेषण करने के लिए वह संहिता की धारा 156 के अधीन सशक्त है जो कि धारा 157 के परंतुक के अधीन रहते हुए है । (चूंकि हम इस निर्णय के आगामी भाग में संहिता की धारा 156 और 157 की परिधि के अंतर्गत संज्ञेय अपराध के अन्वेषण के क्षेत्र में पुलिस अधिकारी की शक्तियों के बारे में विस्तृत विवेचन करना चाहते हैं इसलिए हम वर्तमान संदर्भ में इन धाराओं पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं करना चाहते) । यदि पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी निहित अधिकारिता का प्रयोग करने और रिपोर्ट किए गए संज्ञेय अपराध की इत्तिला पर मामला दर्ज करने से इनकार करता है और ऐसा करके अपने कानूनी कर्तव्य का उल्लंघन करता है तो उससे व्यथित व्यक्ति लिखित रूप में और डाक द्वारा उस इत्तिला का सार संबंधित

पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है । यदि पुलिस अधीक्षक का समाधान हो जाता है कि उसके पास भेजी गई इत्तिला से संज्ञेय अपराध प्रकट होता है तो उसे या तो स्वयं मामले में अन्वेषण करना चाहिए या संहिता की धारा 154 की उपधारा (3) द्वारा उपबंधित रीति से अपने अधीनस्थ किसी पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण किए जाने का निदेश देना चाहिए ।

33. ध्यान रहे कि संहिता की धारा 154(1) में विधान-मंडल ने अपनी सामूहिक बुद्धिमत्ता से ध्यानपूर्वक और सावधानी से 'इत्तिला' शब्द का प्रयोग बिना किसी विशेषण के किया है, जैसे संहिता की धारा 41(1)(क) या (छ) में किया गया है जिसमें कि 'उचित परिवाद' और 'विश्वसशनीय इत्तिला' पदों का प्रयोग किया गया है । प्रकटतया संहिता की धारा 41(1)(क) और (छ) से भिन्न धारा 154(1) में 'इत्तिला' शब्द के साथ किसी विशेषण का प्रयोग न करने का कारण यह हो सकता है कि पुलिस अधिकारी को संज्ञेय अपराध करने से संबंधित इत्तिला लेखबद्ध करने और उस पर मामला दर्ज करने से इस आधार पर इनकार नहीं करना चाहिए कि उस इत्तिला की युक्तियुक्तता या विश्वसनीयता के बारे में उसका समाधान नहीं हुआ है । दूसरे शब्दों में उक्त इत्तिला की 'युक्तियुक्तता' या 'विश्वसनीयता' मामला दर्ज करने की पुरोभाव्य शर्त नहीं है । वर्तमान धारा 154 की पुरानी संहिताओं की धाराओं से तुलना करने पर पता चलता है कि विधान-मंडल ने सप्रयोजन 'इत्तिला' शब्द का प्रयोग विशेषण के बिना करना ठीक समझा । भारत की विधान परिषद् द्वारा पारित दंड प्रक्रिया संहिता, 1861 (1861 का अधिनियम सं. 25) की धारा 139 में लिखा था कि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी से किया गया प्रत्येक परिवाद या इत्तिला लेखबद्ध की जानी चाहिए । बाद में 1872 की संहिता (1872 का अधिनियम सं. 10) की धारा 112 द्वारा उक्त उपबंध में उपांतरण कर दिया गया जो तत्पश्चात् इस प्रकार थी कि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी से किया गया 'प्रत्येक परिवाद' लेखबद्ध किया जाएगा । 'परिवाद' शब्द का जो 1861 और 1872 की दो पुरानी संहिताओं में आया था लोप कर दिया गया और उसके स्थान पर 1882 और 1898 की संहिताओं में

'इत्तिला' शब्द का प्रयोग किया गया जो अब 1973 की वर्तमान संहिता (1974 का अधिनियम सं. 2) की धारा 154, 155, 157 और 189(ग) में प्रयुक्त किया गया है । इन सभी संहिताओं के समग्र भाग का परिशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को लेखबद्ध करने के लिए जो अनिवार्य शर्त है वह यह है कि इस बाबत इत्तिला होनी चाहिए और उस इत्तिला से संज्ञेय अपराध अवश्य प्रकट होना चाहिए ।'

अंततः, इस न्यायालय ने यह कहा कि –

'34. अतः यह प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट है कि यदि संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली कोई इत्तिला पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष रखी जाती है जो संहिता की धारा 154(1) की अपेक्षाओं की पूर्ति करती है तो उक्त पुलिस अधिकारी के पास विहित प्ररूप में उसका सार दर्ज करने, अर्थात् ऐसी इत्तिला के आधार पर मामला दर्ज करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं होता है ।'

5. इस न्यायालय द्वारा ऊपर उद्धृत पैरा 32, 33 और 34 में अभिव्यक्त मत से किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता है कि संहिता की धारा 154 का उपबंध आज्ञापक है और संबंधित अधिकारी संज्ञेय अपराध को प्रकट करने संबंधी ऐसी किसी इत्तिला के आधार पर मामले को रजिस्टर करने के लिए कर्तव्यबद्ध है ।"

68. **राम लाल नारंग** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"14. दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अनुसार, जब कभी पुलिस थाने का कोई भारसाधक अधिकारी संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में सूचना प्राप्त करे तो उससे अपेक्षा की जाती है कि वह विहित प्ररूप में (दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154) उस प्रयोजनार्थ उसके द्वारा रखी गई एक पुस्तक में उसका सारांश दर्ज करे । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 के द्वारा न्यायालय के आदेश के बिना संज्ञेय अपराधों के बारे में अन्वेषण करने की शक्ति पुलिस में विनिहित की गई थी । यदि प्राप्त की गई सूचना से या अन्यथा पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी संज्ञेय अपराध के किए जाने का संदेह करता है तो उससे अपेक्षा की जाती थी कि वह ऐसे मजिस्ट्रेट को उसकी एक

रिपोर्ट तुरंत भेजे जो पुलिस रिपोर्ट पर ऐसे अपराध का संज्ञान करने के लिए सशक्त है और फिर मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का अन्वेषण करने के लिए तथा अपराधी की खोज और गिरफ्तारी के लिए कदम उठाने के लिए (दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157) घटनास्थल पर स्वयं जाए या अपने किसी अधीनस्थ अधिकारी को भेजे । उससे अपेक्षित है कि अनावश्यक विलंब के बिना अन्वेषण पूरा किया जाए और ज्यों ही वह पूरा हो जाए उसे ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेज दिया जाए जो पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान करने के लिए सशक्त है । वह रिपोर्ट विहित प्ररूप में हो और उसमें पक्षकारों के नाम, जानकारी की प्रकृति और उन व्यक्तियों के नाम जो मामले की परिस्थितियों से अवगत प्रतीत होते हैं, दिए गए हों [दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(1)] । उससे यह भी लिखने की अपेक्षा की जाती थी कि क्या अभियुक्त को अभिरक्षा में भेज दिया गया है या जमानत पर छोड़ दिया गया है । पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(1) के अधीन प्रस्तुत रिपोर्ट प्राप्त करने पर पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान करने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान कर सकता है [दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(ख)] । तत्पश्चात् यदि अपराध का संज्ञान करने वाले मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है तो मजिस्ट्रेट से अपेक्षित है कि वह अभियुक्तों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक आदेशिका जारी करे (दंड प्रक्रिया संहिता, धारा 204) । इस प्रकार संहिता की स्कीम यह थी कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने के बाद अन्वेषण किया जाना है, अन्वेषण के फलस्वरूप मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट पेश की जाती है, पुलिस रिपोर्ट प्राप्त करने पर मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान करता है और अंत में संज्ञान करने वाला मजिस्ट्रेट अभियुक्त को आदेशिका जारी करता है ।

15. इस प्रकार पुलिस को संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित हर सूचना को दर्ज करने का कानूनी अधिकार और कर्तव्य है । जहां संज्ञेय अपराध किए जाने की आशंका हो वहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अन्वेषण करने और ऐसे अन्वेषण की रिपोर्ट उस मजिस्ट्रेट को भेजने का कानूनी अधिकार और कर्तव्य था जिसे पुलिस रिपोर्ट पर उस अपराध का संज्ञान करने की अधिकारिता प्राप्त

है । पुलिस के इन कानूनी अधिकारों और कर्तव्यों को अधीक्षण की या मजिस्ट्रेट के कार्यों में हस्तक्षेप करने की किसी शक्ति से सीमित नहीं किया गया था और न ही संज्ञेय अपराध के बारे में अन्वेषण करने के लिए पुलिस को सशक्त करने हेतु किसी मजिस्ट्रेट से मंजूरी लेने की आवश्यकता थी । यह विधिक स्थिति सुस्थापित थी । एम्परर **बनाम** ख्वाजा नजीर अहमद (71 आई. ए. 203) वाले मामले में प्रिवी कौंसिल ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था –

> 'जैसे कि यह आवश्यक है कि किसी अपराध के अभियुक्त प्रत्येक व्यक्ति को न्यायालय में जाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए जिससे कि वह सम्यक्तः दोषमुक्त हो सके यदि उसे उस अपराध का दोषी न पाया जाए जिस पर उसका आरोप लगाया गया है । इसलिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका को ऐसे मामलों में पुलिस के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जो कि उसके क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं और जिनके संबंध में विधि उस पर जांच करने का कर्तव्य डालती है । जैसा कि दर्शाया जा चुका है, भारत में अभिकथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों का, न्यायिक प्राधिकारियों से किसी प्राधिकारी की अपेक्षा किए बिना, अन्वेषण करने का पुलिस को कानूनी अधिकार है और जैसा कि माननीय न्यायाधीश समझते हैं, यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति होगी यदि न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करके उन कानूनी नियमों में हस्तक्षेप करना संभव ठहराया जाए । न्यायपालिका और पुलिस के कृत्य पूरक हैं, न कि अतिव्यापी और व्यष्टि की स्वाधीनता का विधि और व्यवस्था के सम्यक् पालन के साथ संयोग तभी प्राप्त किया जा सकता है जब प्रत्येक को अपने कार्य करने दिए जाएं जो कि निस्संदेह सर्वथा न्यायालय के इस अधिकार के अध्यधीन रहते हुए हो कि वे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 491 के अधीन आवेदन किए जाने पर समुचित मामले में बन्दी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति के निदेश देने के लिए हस्तक्षेप कर सकते हैं । किन्तु वर्तमान मामले की भांति ऐसे मामले में न्यायालय का कार्य तब आरंभ होता है जब कोई आरोप उसके समक्ष लाया जाता है और उस समय तक नहीं ...... । प्रस्तुत मामले में पुलिस को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 और

> 156 के अधीन न्यायालय की मंजूरी की अपेक्षा किए बिना किसी भी संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने का कानूनी अधिकार है .... ।'

सामान्यतः पुलिस का अधिकार और कर्तव्य दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(1) के अधीन रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर समाप्त हो जाता है जिसकी प्राप्ति पर यह मजिस्ट्रेट का काम है कि वह अपराध का संज्ञान करे या न करे । 1898 की संहिता में ऐसा कोई उपबंध नहीं था जो पुलिस द्वारा तब अपनाई जाने वाली प्रक्रिया विहित करता हो जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(1) के अधीन रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद और मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान किए जाने के बाद नए तथ्य प्रकाश में आ जाते हैं जिनके बारे में और आगे अन्वेषण किया जाना चाहिए । निस्संदेह ऐसा कोई अभिव्यक्त उपबंध नहीं था जो पुलिस को धारा 173(1) के अधीन रिपोर्ट को प्रस्तुत करने के बाद या मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान किए जाने के बाद प्रकाश में आए नए तथ्यों के बारे में अन्वेषण करने से प्रतिषिद्ध करता हो । जैसा कि हम अभी उल्लेख करेंगे बहुत से उच्च न्यायालयों का आमतौर पर यह विचार था, यद्यपि कुछ को संदेह था, कि पुलिस इस परिस्थिति के कारण आगे अन्वेषण करने से वर्जित नहीं है कि धारा 173 के अधीन रिपोर्ट पहले ही प्रस्तुत की जा चुकी है और मजिस्ट्रेट पहले ही अपराध का संज्ञान कर चुका है । विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट में स्थिति को स्वीकार किया और यह सिफारिश की कि और आगे अन्वेषण करने के अधिकार की कानूनी तौर पर पुष्टि की जानी चाहिए । विधि आयोग ने कहा था –

> '14.23. आमतौर पर धारा 173 के अधीन रिपोर्ट के साथ ही अन्वेषण का अंत हो जाता है किन्तु कभी-कभी धारा 173 के अधीन रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद पुलिस अधिकारी को ऐसा साक्ष्य मिल जाता है जो अभियुक्त की दोषिता या निर्दोषिता से संबंधित है । हमें यह सोचना चाहिए कि पुलिस अधिकारी उस साक्ष्य को एकत्र कर सकता है और उसे संबंधित मजिस्ट्रेट के पास भेज सकता है । फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालयों ने कभी-कभी यह संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया है कि जब एक बार धारा 173 के अधीन अंतिम रिपोर्ट भेज दी गई है तो पुलिस उस मामले में फिर से हाथ नहीं लगा सकती और

उसका अन्वेषण फिर से आरंभ नहीं कर सकती । इस दृष्टिकोण से अन्वेषण अधिकरण के मार्ग में अड़चन पैदा होती है जो कि अभियोजन पक्ष के लिए बहुत ही अनुचित हो सकती है और उस मामले के लिए अभियुक्त के लिए भी बहुत अनुचित हो सकती है । धारा 113 में यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि सक्षम पुलिस अधिकारी ऐसे साक्ष्य की जांच कर सकता है और मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट भेज सकता है । निस्संदेह नई सामग्री से संबंधित प्रतियां अभियुक्त को भी देनी होंगी ।'

तदनुसार, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में एक नया उपबंध [धारा 173(8)] जोड़ा गया । उसमें लिखा है –

'इस धारा की कोई बात किसी अपराध के बारे में उपधारा (2) के अधीन मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट भेज दी जाने के पश्चात् आगे और अन्वेषण को प्रवरित करने वाली नहीं समझी जाएगी तथा जहां ऐसे अन्वेषण पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को कोई अतिरिक्त मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य मिले वहां वह ऐसे साक्ष्य के संबंध में अतिरिक्त रिपोर्ट या रिपोर्टें मजिस्ट्रेट को विहित प्ररूप में भेजेगा, और उपधारा (2) से (6) तक के उपबंध ऐसी रिपोर्ट या रिपोर्टों के बारे में, जहां तक हो सके, ऐसे लागू होंगे, जैसे वे उपधारा (2) के अधीन भेजी गई रिपोर्ट के संबंध में लागू होते हैं ।'"

69. **लल्लन चौधरी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"8. अतः, संहिता की धारा 154 पुलिस अधिकारी पर यह कानूनी कर्तव्य अधिरोपित करती है कि वह, जैसा कि परिवाद में प्रकट किया गया है, मामला रजिस्ट्रीकृत करे और इसके बाद अन्वेषण की कार्यवाही करे । धारा 154 की आज्ञा अभिव्यक्ततः स्पष्ट है कि यदि किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष संज्ञेय अपराध प्रकट करने वाली इत्तिला रखी जाती है तो ऐसे पुलिस अधिकारी के पास ऐसी इत्तिला के आधार पर मामला रजिस्ट्रीकृत करने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं होता है ।

9. रमेश कुमारी **बनाम** राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा

154 का उपबंध आज्ञापक है । इसलिए संबंधित अधिकारी संज्ञेय अपराध को प्रकट करने वाली ऐसी किसी इत्तिला के आधार पर मामले को रजिस्टर करने के लिए कर्तव्यबद्ध है । इत्तिला की यथार्थता या विश्वसनीयता मामले को रजिस्ट्रीकृत करने की पूर्व शर्त नहीं है । इस पर मामला रजिस्ट्रीकृत करने के पश्चात् ही विचार किया जा सकता है ।

10. संहिता की धारा 154 की आज्ञा यह है कि संज्ञेय अपराध को प्रकट करने वाली इत्तिला के आधार पर कोई अपराध या मामला रजिस्ट्रीकृत करने के प्रक्रम पर संबंधित पुलिस अधिकारी इस संबंध में जांच आरंभ नहीं कर सकता कि क्या इत्तिलाकर्ता द्वारा दी गई इत्तिला विश्वसनीय और सही है अथवा नहीं और इस आधार पर मामला रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार नहीं कर सकता कि इत्तिला सुसंगत या विश्वसनीय नहीं है । दूसरे शब्दों में, विश्वसनीयता, यथार्थता और प्रामाणिकता संहिता की धारा 154 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत करने के लिए पूर्व शर्त नहीं है ।"

ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि इत्तिला की युक्तिसंगतता या विश्वसनीयता मामला रजिस्ट्रीकृत करने के लिए पूर्व शर्त नहीं है ।

प्रारंभिक जांच

70. श्री नफादे ने अपनी इस दलील के समर्थन में कि यदि पुलिस अधिकारी को आरोप की सत्यता के बारे में कोई संदेह है तो उसे प्रारंभिक जांच करनी है, निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया, अर्थात्, **ई. पी. रायप्पा** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1], **मेनका गांधी** (उपर्युक्त), **एस. एम. डी. किरन पाशा** बनाम **आन्ध्र प्रदेश सरकार**[2], **डी. के. बसु** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[3], **उमा शंकर सितानी** बनाम **पुलिस आयुक्त, दिल्ली और अन्य**[4], **प्रीति गुप्ता** (उपर्युक्त), **फ्रांसिस कोराली मुलिन** बनाम **प्रशासक, दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र**[5], **कामन काज़, एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी** बनाम **भारत संघ**[1],

---

[1] (1974) 4 एस. सी. सी. 3.
[2] (1990) 1 एस. सी. सी. 328.
[3] (1997) 1 एस. सी. सी. 416.
[4] (1996) 11 एस. सी. सी. 714.
[5] (1981) 1 एस. सी. सी. 608.

जिला रजिस्ट्रार और कलक्टर, हैदराबाद बनाम **केनरा बैंक**[2] और **रंजीतसिंह ब्रह्मजीतसिंह शर्मा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] ।

71. राज्य की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने इसके आगे बलपूर्वक यह दलील दी कि समुचित मामलों में किसी पुलिस अधिकारी के लिए संज्ञेय अपराध का परिवाद प्राप्त करने पर अपना यह समाधान करना उचित होगा कि प्रथमदृष्ट्या परिवाद में अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए अभिकथन विश्वसनीय हैं । इस संबंध में, श्री नफादे ने निम्नलिखित विनिश्चयों को उद्धृत किया, अर्थात्, **तपन कुमार सिंह** (उपर्युक्त) **भगवंत किशोर जोशी** (उपर्युक्त), **पी. सिराजुद्दीन** (उपर्युक्त), **सेवी** (उपर्युक्त), **शशिकांत** (उपर्युक्त), **राजेन्द्र सिंह कटोच** (उपर्युक्त), **विनीत नारायण** बनाम **भारत संघ**[4], **एलूमलाई** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[5], **ए. लक्ष्मणराव** बनाम **न्यायिक मजिस्ट्रेट, पार्वतीपुरम**[6], **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **राम सागर यादव और अन्य**[7], **मोना पनवर** बनाम **इलाहाबाद उच्च न्यायालय**[8], **एप्रेन जोसेफ** बनाम **केरल राज्य**[9], **किंग एम्परर** बनाम **ख्वाजा नाज़िर अहमद**[10] और **सारंगधरसिंह शिवदाससिंह चव्हाण** (उपर्युक्त) ।

72. उसने आगे यह इंगित किया कि उपबंधों का पठन द्वेषपूर्ण अभियोजन के सिद्धांत और अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 19 और अनुच्छेद 21 के अधीन प्रत्याभूत मूल अधिकारों के प्रकाश में करना होगा । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल का यह पक्षकथन है कि प्रत्येक नागरिक का यह अधिकार है कि उसके विरुद्ध द्वेषपूर्ण अभियोजन न चलाया जाए और प्रत्येक पुलिस अधिकारी का धारा 154 के अधीन अंतर्निहित कर्तव्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी निर्दोष व्यक्ति को किसी दांडिक मामले में मिथ्या आलिप्त न किया जाए । यदि इस तथ्य के बावजूद कि पुलिस अधिकारी का संज्ञेय

---

[1] (1999) 6 एस. सी. सी. 667.
[2] (2005) 1 एस. सी. सी. 496.
[3] (2005) 5 एस. सी. सी. 294.
[4] (1998) 1 एस. सी. सी. 226.
[5] (1983) एल. डब्ल्यू. (क्रि.) 121.
[6] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 186.
[7] (1985) 1 एस. सी. सी. 552.
[8] (2011) 3 एस. सी. सी. 496.
[9] (1973) 3 एस. सी. सी. 114.
[10] ए. आई. आर. 1945 प्रिवी कौंसिल 18.

अपराध किए जाने के संबंध में प्रथमदृष्ट्या समाधान नहीं हुआ है और वह प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने की कार्यवाही करता है और अन्वेषण करता है तो इसका परिणाम नागरिक की स्वाधीनता को खतरे में डालना होगा । इसलिए, विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने बलपूर्वक यह अभिवाक् किया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच की जाए ।

73. संहिता की धारा 154 में प्रयुक्त भाषा के निबंधनानुसार पुलिस संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में इत्तिला (अर्थात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट) प्राप्त किए बिना भी ऐसे अपराध का अन्वेषण करने की कार्यवाही करने के लिए कर्तव्यबद्ध है यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को अन्यथा ऐसा कोई अपराध किए जाने का संदेह होता है । अतः, विधायी आशय पूर्णतः स्पष्ट है, अर्थात्, यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक संज्ञेय अपराध के संबंध में विधि के अनुसार तत्परता से अन्वेषण किया जाए । यह विधिक स्थिति होने के कारण इस संबंध में कोई कारण नहीं है पुलिस के पास प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने या न करने का कोई विवेकाधिकार या विकल्प होना चाहिए जब कि संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में इत्तिला दी जाती है । प्रत्येक संज्ञेय अपराध का तत्परता से अन्वेषण किया जाना चाहिए और संहिता की धारा 154 के अधीन संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में दी गई समस्त जानकारी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत की जानी चाहिए जिससे कि अपराध के संबंध में कार्यवाही आरंभ की जा सके । संहिता की धारा 154 की अपेक्षा केवल यह है कि रिपोर्ट से संज्ञेय अपराध का किया जाना अवश्य प्रकट होना चाहिए और अन्वेषक मशीनरी को गतिशील बनाने के लिए यही पर्याप्त है ।

74. धारा 154 की उपधारा (3) को संशोधन द्वारा अंतःस्थापित करने से विधान-मंडल का यह सुनिश्चित करने का आशय प्रकट होता है कि संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में किसी भी इत्तिला को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए या उस पर ऐसी कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए जिसके परिणामस्वरूप अभिकथित आरोपी/अपराधी को अन्यायोचित्यपूर्ण संरक्षण प्राप्त होगा ।

75. संहिता की धारा 154 के निर्वचन में एक बात की अभिव्यक्ति दूसरी बात के अपवर्जन का सूत्र लागू होता है, जहां इत्तिला को लेखबद्ध करने की आज्ञा संज्ञेय अपराध किए जाने संबंधी इत्तिला को विशेष रजिस्टर में लेखबद्ध न करने की संभाव्यता को अपवर्जित करती है ।

76. अतः, संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के पश्चात् अपराध का अन्वेषण करना "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" है और इस प्रकार वह संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुरूप है । तदनुसार, संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन अभियुक्त के अधिकार को संरक्षण प्राप्त हो जाता है यदि सबसे पहले प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की जाती है और उसके बाद विधि के उपबंधों के अनुसार अन्वेषण किया जाता है ।

77. संहिता की धारा 2(छ) के अनुसार 'जांच' पद निम्नलिखित रूप में है :–

> "2(छ). 'जांच' से अभिप्रेत है विचारण से भिन्न, ऐसी प्रत्येक जांच जो इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा की जाए ।"

अतः, यह स्पष्ट है कि संहिता के अधीन जांच का संबंध न्यायिक कृत्य से है न कि पुलिस द्वारा उठाए जाने वाले उन कदमों से है जो या तो संहिता की धारा 154 के प्रक्रम के पश्चात् अन्वेषण करना है जिसे प्रारंभिक जांच कहा जाता है और जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पहले उठाए जाते हैं भले ही साधारण डायरी/थाना डायरी/दैनिक डायरी में कोई प्रविष्टि नहीं की गई है ।

78. यद्यपि संहिता की धारा 159 और धारा 202 तथा धारा 340 के अधीन "प्रारंभिक जांच" और "जांच" पदों के प्रति निर्देश किया गया है तथापि, यह न्यायालय द्वारा न कि पुलिस द्वारा की जाने वाली न्यायिक कार्यवाही है और यह प्रस्तुत संदर्भ के प्रयोजनार्थ सुसंगत नहीं है ।

79. इसके अलावा, विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो मैनुअल के अधीन विहित विशेष प्रक्रिया का अवलंब लिया जिसका अर्थ धारा 154 से लगाया जाना चाहिए । यह सही है कि "प्रारंभिक जांच" की संकल्पना केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अपराध मैनुअल के अध्याय 9 में अंतर्विष्ट है । तथापि, यह अपराध मैनुअल कोई कानून नहीं है और इसे विधान-मंडल द्वारा अधिनियमित नहीं किया गया है । यह केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अधिकारियों के आंतरिक मार्गदर्शन के लिए जारी किए गए प्रशासनिक आदेशों का एक खंड है । यह संहिता को अतिष्ठित नहीं कर सकता है । इसके अलावा, स्वयं संहिता में इसके प्रतिकूल किसी संकेत के अभाव में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अपराध मैनुअल के उपबंधों का दंड

प्रक्रिया संहिता की स्कीम में प्रारंभिक जांच करने की संकल्पना का अर्थ लगाने के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता है । इस प्रक्रम पर, यह निवेदन करना भी प्रांसगिक है कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो का गठन एक विशेष अधिनियम, अर्थात्, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 के अधीन किया गया है और वह अन्वेषण करने की अपनी शक्ति इस अधिनियम से प्राप्त करता है ।

80. यह निवेदन किया जा सकता है कि संहिता की धारा 4(2) और धारा 5 विशेष अधिनियमों के लिए विशेष प्रक्रिया का अनुसरण करने की अनुज्ञा देती है । संहिता की धारा 4 में निम्न प्रकार अधिकथित है :–

> "**4. भारतीय दंड संहिता और अन्य विधियों के अधीन अपराधों का विचारण** – (1) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके संबंध में अन्य कार्यवाही इसमें इसके पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार की जाएगी ।
>
> (2) किसी अन्य विधि के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके संबंध में अन्य कार्यवाही इन्हीं उपबंधों के अनुसार किंतु ऐसे अपराधों के अन्वेषण, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही की रीति या स्थान का विनियमन करने वाली तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के अधीन रहते हुए, की जाएगी ।"

इस प्रकार यह सही है कि भारतीय दंड संहिता से भिन्न विधियों के अधीन अपराधों के लिए विशेष अधिनियम के अधीन उन अपराधों के अन्वेषण, जांच, विचारण इत्यादि को विनियमित करने के लिए भिन्न-भिन्न उपबंध अधिकथित किए जा सकते हैं । संहिता की धारा 4(2) ऐसे विशेष उपबंधों को संरक्षण प्रदान करती है ।

81. इसके अलावा, संहिता की धारा 5 में निम्न प्रकार अधिकथित किया गया है :–

> "**5. व्यावृत्ति** – इससे प्रतिकूल किसी विनिर्दिष्ट उपबंध के अभाव में इस संहिता की कोई बात तत्समय प्रवृत्त किसी विशेष या स्थानीय विधि पर, या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा प्रदत्त किसी विशेष अधिकारिता या शक्ति या उस विधि द्वारा विहित किसी विशेष प्रक्रिया पर प्रभाव नहीं डालेगी ।"

इस प्रकार, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम में अंतर्विष्ट केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की शक्तियों से संबंधित विशेष उपबंधों को संहिता की धारा 5 द्वारा भी संरक्षण प्राप्त है ।

82. संहिता में उपर्युक्त विनिर्दिष्ट उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम के अधीन केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की शक्तियों की तुलना संहिता के अधीन नियमित राज्य पुलिस की शक्तियों से नहीं की जा सकती है ।

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट शीघ्र रजिस्ट्रीकृत करने का महत्व और उसके लिए बाध्यकारी कारण

83. सर्वप्रथम प्राप्त इत्तिला को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रूप में रजिस्ट्रीकृत करके प्राप्त किया जाने वाला उद्देश्य अन्य बातों के साथ-साथ दोहरा है : एक यह कि दांडिक प्रक्रिया गतिशील हो जाती है और वह आरंभ से ही भली प्रकार प्रलेखित होती है और दूसरा यह कि कोई संज्ञेय अपराध किए जाने के संबंध में प्राप्त सर्वप्रथम इत्तिला लेखबद्ध की जाती है जिससे कि बाद में कोई अतिरंजन न हो ।

84. लोकतंत्र और स्वाधीनता के सिद्धांत पुलिस शक्तियों पर नियमित और पर्याप्त नियंत्रण की मांग करते हैं । ऐसी शक्तियों वाले प्राधिकारियों पर नियंत्रण रखने का एक तरीका उनके प्रत्येक कार्य को प्रलेखित करना है । तदनुसार, संहिता के अधीन पुलिस के कार्य इत्यादि को लिखने और प्रलेखित करने के उपबंध किए गए हैं । उदाहरणार्थ, संहिता की धारा 41(1)(ख) के अधीन गिरफ्तारी की दशा में, गिरफ्तारी ज्ञापन और उसके आधार आज्ञापक रूप से लिखित में होने चाहिएं, संहिता की धारा 55 के अधीन यदि किसी अधिकारी को गिरफ्तारी करने के लिए भेजा जाता है तो वरिष्ठ अधिकारी को उस अपराध को, जिसके लिए उस व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाना है, लिखना और लेखबद्ध करना होता है ; संहिता की धारा 91 के अधीन संबंधित अधिकारी द्वारा दस्तावेज़ों की ईप्सा करने के लिए एक लिखित आदेश पारित करना होगा, संहिता की धारा 160 के अधीन साक्षी को लिखित सूचना जारी करनी होगी जिससे कि उसका कथन लेखबद्ध करने के लिए उसे बुलाया जा सके, अभिगृहीत की गई प्रत्येक वस्तु इत्यादि का अभिग्रहण ज्ञापन/पंचनामा तैयार करना होगा ।

85. पुलिस से अनेक अभिलेख रखने की अपेक्षा की जाती है जिनमें संहिता की धारा 172 के अधीन यथा-उपबंधित मामला डायरी, पुलिस

अधिनियम की धारा 44 के अधीन यथा-उपबंधित साधारण डायरी इत्यादि हैं, जो कि एकत्र की गई प्रत्येक जानकारी, दौरा किए गए स्थलों और पुलिस अधिकारियों के ऐसे सभी कार्यों को लेखबद्ध करने में सहायक होती है जिनसे उनकी गतिविधियों को प्रलेखित किया जा सकता है । इसके अलावा, किसी असंज्ञेय अपराध को किए जाने के संबंध में प्राप्त की गई प्रत्येक इत्तिला भी संहिता की धारा 155 के अधीन रजिस्ट्रीकृत की जानी होती है ।

86. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण का आधार न केवल दांडिक न्याय परिदान प्रणाली में पारदर्शिता सुनिश्चित करना है बल्कि न्यायिक दूरदर्शिता सुनिश्चित करना भी है । धारा 157(1) में "तत्काल" शब्द का प्रयोग किया गया है । इस प्रकार, धारा 154(1) के अधीन या अन्यथा प्राप्त किसी इत्तिला की सम्यक् जानकारी मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट के रूप में की जानी होगी । इस प्रकार संज्ञेय अपराध किए जाने की जानकारी न केवल अन्वेषक अभिकरण को बल्कि अधीनस्थ न्यायपालिका को भी की जाती है ।

87. संहिता में दो किस्म की प्रथम इत्तिला रिपोर्टें अनुध्यात हैं । धारा 154(1) के अधीन सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट इत्तिलाकर्ता द्वारा पुलिस थाने के संबंधित अधिकारी को की जाती है । दूसरी किस्म की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट वह हो सकती है जो पुलिस द्वारा स्वयं प्राप्त किसी इत्तिला द्वारा या किसी इत्तिलाकर्ता से भिन्न किसी माध्यम से रजिस्ट्रीकृत की जाती है [धारा 157(1)] और यह इत्तिला भी सम्यक् रूप से लेखबद्ध करनी होती है और इसकी प्रति तत्काल मजिस्ट्रेट को भेजी जानी चाहिए ।

88. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का या तो संहिता की धारा 154(1) के अधीन इत्तिलाकर्ता द्वारा दी गई इत्तिला के आधार पर या अन्यथा संहिता की धारा 157(1) के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया जाना बाध्यकर है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने की बाध्यता में ये लाभ अंतर्निहित हैं :–

(क) यह किसी पीड़ित व्यक्ति के लिए न्याय तक पहुंच का पहला कदम है ।

(ख) इससे 'विधि का शासन' कायम होता है चूंकि एक साधारण व्यक्ति संज्ञेय अपराध किए जाने के बारे में जानकारी राज्य को प्रकट करता है ।

(ग) इससे द्रुत अन्वेषण और कभी-कभी अपराध का निवारण भी सुकर होता है । दोनों दशाओं में इससे विधि व्यवस्था कार्यान्वित होती है ।

(घ) इसके परिणामस्वरूप दांडिक मामलों में छलसाधन में कमी आती है और पूर्व-दिनांकित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या जानबूझकर विलंबित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की घटनाओं में कमी आती है ।

89. **थुलिया काली** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"12. ...... किसी दांडिक मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विचारण में पेश किए गए मौखिक साक्ष्य को संपुष्ट करने के प्रयोजनार्थ एक अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुमूल्य साक्ष्य होता है । उक्त रिपोर्ट के महत्व को अभियुक्त के दृष्टिकोण से वास्तविकता से अधिक आंकना संभव नहीं हो सकता है । पुलिस को अपराध किए जाने की बाबत तुरंत रिपोर्ट दर्ज करने के लिए जोर देने का उद्देश्य उन परिस्थितियों के संबंध में, जिनमें अपराध कारित किया गया था, वास्तविक दोषियों के नाम और उनके द्वारा निभाई गई भूमिका तथा घटनास्थल पर उपस्थित प्रत्यक्षदर्शियों के नामों की शीघ्रतम जानकारी प्राप्त करना है । प्रायः प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब के परिणामस्वरूप अतिरंजन होता है जो कि सोच-विचार कर सृष्ट किया जाता है । विलंब के कारण न केवल रिपोर्ट सहजता के लाभ से वंचित हो जाती है बल्कि विचार-विमर्श या परामर्श के परिणामस्वरूप रंजित पाठ, बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने या गढ़ी गई कहानी पेश करने का खतरा पैदा होता है । अतः, यह आवश्यक है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने में होने वाले विलंब को समाधानप्रद रूप से स्पष्ट किया जाना चाहिए.... ।"

90. **तपन कुमार सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था :–

"20. यह सुस्थापित है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट ऐसा सार्वभौमकोश नहीं है जिससे प्रतिवेदित अपराध से संबंधित सभी तथ्य और ब्यौरे अवश्य प्रकट होने चाहिएं । कोई इत्तिलाकर्ता अपराध किए जाने के बारे में रिपोर्ट दर्ज करा सकता है हालांकि उसे आहत व्यक्ति

---

[1] (1972) 3 एस. सी. सी. 393.

या उसके हमलावर के नाम का भी पता न हो । उसे इस बात की जानकारी भी न हो कि घटना किस प्रकार घटी । प्रथम इत्तिला देने वाले का प्रत्यक्षदर्शी होना आवश्यक नहीं है जिससे कि वह कारित किए गए अपराध के सभी पहलुओं को अत्यंत विस्तार से प्रकट कर सके । महत्व इस बात का होता है कि दी गई इत्तिला से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होना चाहिए और इस प्रकार दर्ज की गई इत्तिला पुलिस अधिकारी को कोई संज्ञेय अपराध किए जाने का संदेह करने के लिए आधार प्रदान करती हो । इस प्रक्रम पर यह पर्याप्त है यदि पुलिस अधिकारी दी गई इत्तिला के आधार पर कोई संज्ञेय अपराध किए जाने का संदेह करता है और न कि यह कि उसका यह पक्का विश्वास या समाधान हो जाना चाहिए कि कोई संज्ञेय अपराध कारित किया गया है । यदि उसके पास प्राप्त की गई इत्तिला के आधार पर इस संबंध में संदेह करने के कारण हैं कि हो सकता है कि कोई संज्ञेय अपराध कारित किया गया हो तो वह इत्तिला लेखबद्ध करने और अन्वेषण करने के लिए बाध्य है । इस प्रक्रम पर उसके लिए इत्तिला की सत्यता के बारे में अपना समाधान करना भी आवश्यक नहीं होता है । वह संपूर्ण अन्वेषण के पश्चात् ही इत्तिला की सत्यता या अन्यथा के बारे में रिपोर्ट करने में समर्थ हो सकता है । इसी प्रकार, भले ही इत्तिला में सभी ब्यौरे न दिए गए हों तो भी उसे अन्वेषण के अनुक्रम में उन ब्यौरों का पता लगाना चाहिए और सभी आवश्यक साक्ष्य एकत्र करने चाहिएं । दी गई ऐसी इत्तिला से, जिससे संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट होता है, सभी आवश्यक साक्ष्य एकत्र करने और इसके पश्चात् विधि के अनुसार कार्रवाई करने की दृष्टि से अन्वेषण मशीनरी ही गतिशील होती है । वास्तविक कसौटी यह है कि क्या दी गई इत्तिला से अपराध किए जाने के बारे में संदेह करने का कारण प्रतीत होता है जिसके लिए संबंधित पुलिस अधिकारी संहिता की धारा 156 के अधीन अन्वेषण करने के लिए सशक्त है । यदि ऐसा संदेह उत्पन्न होता है तो उसके पास इत्तिला लेखबद्ध करने और मामले का अन्वेषण या तो स्वयं करने या किसी अन्य सक्षम अधिकारी को अन्वेषण करने के लिए प्रतिनियुक्त करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता है । यह प्रश्न कि क्या रिपोर्ट सही है, क्या वह घटना की रीति के संबंध में पूरे ब्यौरे प्रकट करती है, क्या अभियुक्त का नाम दिया गया है और क्या अभिकथनों का समर्थन करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है, ये सभी ऐसी बातें हैं जो इस

प्रश्न पर विचार करने से भिन्न हैं कि क्या रिपोर्ट से कोई संज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट होता है । भले ही इत्तिला में इन बातों के संबंध में पूरे ब्यौरे न दिए गए हों तो भी अन्वेषक अधिकारी मामले का अन्वेषण करने और यदि वह सही तथ्यों का पता लगा सकता है तो पता लगाने संबंधी अपने कर्तव्य से अवमुक्त नहीं है ।"

91. **मधु बाला** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"6. सर्वप्रथम संहिता के सुसंगत उपबंधों पर विचार करते हुए, धारा 2(घ) में "परिवाद" की परिभाषा दी गई है जिससे इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा कार्रवाई किए जाने की दृष्टि से मौखिक या लिखित रूप में उससे किया गया यह अभिकथन अभिप्रेत है कि किसी व्यक्ति ने, चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात, अपराध किया है, किंतु इसके अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट नहीं है । धारा 2(ग) के अधीन "संज्ञेय अपराध" से ऐसा अपराध अभिप्रेत है जिसके लिए और "संज्ञेय मामला" से ऐसा मामला अभिप्रेत है जिसमें, पुलिस अधिकारी (संहिता की) प्रथम अनुसूची के या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अनुसार वारण्ट के बिना गिरफ्तार कर सकता है । धारा 2(द) के अधीन "पुलिस रिपोर्ट" से पुलिस अधिकारी द्वारा संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) के अधीन मजिस्ट्रेट को भेजी गई रिपोर्ट अभिप्रेत है । संहिता का अध्याय 12, जिसमें धारा 154 से धारा 176 समाविष्ट हैं, पुलिस को इत्तिला और उनकी अन्वेषण करने की शक्तियों के संबंध में है । धारा 154 में अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंधित है कि संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा लेखबद्ध कर ली जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर, यदि वह लिखित रूप में दी गई हो उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे जो उसे दे रहा है और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा । संहिता की धारा 156, जिनसे इन अपीलों में हमारा प्रमुख रूप से संबंध है, निम्नलिखित रूप में है : ....

9. ऐसे मामलों को रजिस्ट्रीकृत करने की पद्धति और रीति विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 के अधीन विरचित नियमों में अधिकथित की गई है । चूंकि वर्तमान

मामले में हमारा संबंध उक्त अधिनियम के अधीन विरचित पंजाब पुलिस नियम, 1934 से है (जो कि पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली में लागू होती है) इसलिए अब हम उन नियमों के सुसंगत उपबंधों के प्रति निर्देश कर सकते हैं । उक्त नियमों के अध्याय 24 में वह प्रक्रिया अधिकथित की गई है जिसका अनुसरण पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को अपराध किए जाने की इत्तिला प्राप्त होने पर करना होता है । अध्याय में आने वाले नियम 24.1 के अधीन संहिता की धारा 154 के अंतर्गत आने वाली प्रत्येक इत्तिला प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर में और उसका सार दैनिक डायरी में प्रविष्ट किया जाना चाहिए । नियम 24.5 में यह कहा गया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर प्ररूप 24.5(1) में मुद्रित ऐसी पुस्तक होगी जिसमें 200 पृष्ठ होंगे और नई पुस्तक आरंभ करने से पूर्व उसे पूर्ण रूप से भर लिया जाएगा । इसमें इसके आगे यह अपेक्षित है कि मामलों को प्रत्येक पुलिस थाने में प्रत्येक कलैंडर वर्ष के लिए वार्षिक क्रम संख्यांक दिए जाएंगे । उक्त नियमों की अन्य अपेक्षाओं को वर्णित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनका विवादग्रस्त मुद्दे से कोई संबंध नहीं है ।

10. पूर्वगामी विचार-विमर्श से यह स्पष्ट होता है कि जब कभी मजिस्ट्रेट किसी "परिवाद" पर अन्वेषण करने का निदेश देता है तब पुलिस को उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मानकर उस परिवाद के आधार पर संज्ञेय मामला रजिस्ट्रीकृत करना होता है और उक्त नियमों की अपेक्षाओं का अनुपालन करना होता है । अतः, इससे हमारी यह धारणा अग्रसर होती है कि किस प्रकार मजिस्ट्रेट का वह निदेश, जिसमें पुलिस को "मामला रजिस्ट्रीकृत" करने के लिए कहा गया है, धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण के आदेश को वैध रूप से असंधार्य बना देता है । वास्तव में, भले ही कोई मजिस्ट्रेट मामला रजिस्ट्रीकृत करने का निदेश पारित न करे तो भी संहिता की धारा 156(1) के उपबंधों, जिसमें पुलिस को संज्ञेय मामले का अन्वेषण करने की शक्ति प्रदान की गई है और भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 के अधीन विरचित नियमों को ध्यान में रखते हुए वह (पुलिस) औपचारिक रूप से मामले रजिस्ट्रीकृत करने और उसके बाद उसका अन्वेषण करने के लिए कर्तव्यबद्ध है । अतः, संहिता के उपबंध मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस को पुलिस थाने में मामला रजिस्ट्रीकृत करने और उसके बाद उसका अन्वेषण करने का निदेश देने के मार्ग में किसी भी प्रकार से

बाधक नहीं हैं । हमारी राय में, जब संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण के लिए कोई आदेश किया जाना होता है तब पुलिस को परिवाद को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मानकर पुलिस थाने में मामला रजिस्ट्रीकृत करने और उसका अन्वेषण करने का निदेश देना समुचित होगा ।"

92. उद्देश्यों और कारणों के कथन के अनुसार गरीबों के हितों का संरक्षण करना स्पष्ट रूप से संहिता के मुख्य उद्देश्यों में से एक है । कोई संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित इत्तिला को रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक बनाना समाज के लिए, विशेष रूप से देश के ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों के लिए सहायक होगा ।

93. दांडिक न्याय प्रणाली में सुधार संबंधी समिति ने भी, जिसकी अध्यक्षता न्यायमूर्ति डा. वी. एस. मलीमथ ने की थी, प्रथम इत्तिला रिपोर्टें रजिस्ट्रीकृत न किए जाने के कारण अनेक लोगों द्वारा झेली गई दुर्दशा की अवेक्षा की और यह सिफारिश की कि उन पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई की जानी चाहिए जो ऐसी इत्तिला रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार करते हैं । समिति ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

"7.19.1 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अनुसार पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक मौखिक या लिखित इत्तिला को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए आदिष्ट है । मामलों का रजिस्ट्रीकृत न किया जाना पुलिस के विरुद्ध एक गंभीर शिकायत है । राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने अपनी चौथी रिपोर्ट में इस संबंध में रोष व्यक्त किया कि पुलिस अन्वेषण करने के लिए मामलों को रजिस्ट्रीकृत करने से बचती है जहां पुलिस थानों में विनिर्दिष्ट शिकायतें दर्ज की जाती हैं । उसने इंडिया इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक ओपिनियन, नई दिल्ली द्वारा भारत में पुलिस की छवि के संबंध में किए गए अध्ययन के प्रति निर्देश किया जिसने यह मत व्यक्त किया कि 50 प्रतिशत से अधिक प्रत्यर्थियों ने पुलिस थानों में शिकायतों को दर्ज न करने की सामान्य पद्धति का उल्लेख किया है ।

7.19.2 समिति यह सिफारिश करती है कि सभी परिवाद तत्काल रजिस्ट्रीकृत किए जाने चाहिएं जिसके न हो सकने पर समुचित कार्रवाई की जानी चाहिए । इसके लिए राजनैतिक कार्यपालकों और वह भी वरिष्ठ अधिकारियों की मनःस्थिति में परिवर्तन लाना आवश्यक होगा ।

7.19.4 रजिस्ट्रीकरण से संबंधित दो अतिरिक्त पहलू हैं । प्रथम, पुलिस द्वारा विधि की समुचित धाराओं का अवलंब न लेकर अपराधों का न्यूनीकरण है । हम इस प्रवृत्ति का अनुमोदन नहीं करते हैं । प्रत्येक मामले में अंतर्वलित अपराधों की गंभीरता को ध्यान में रखे बिना विधि की समुचित धाराओं का अवलंब लिया जाना चाहिए । दूसरा मुद्दा लिखित परिवादों के रजिस्ट्रीकरण से संबंधित है । पुलिस थाने के अधिकारियों के बीच ऐसी इत्तिला देने वालों को, जो मौखिक शिकायतें करने आते हैं, लिखित परिवाद लाने की सलाह देने की प्रवृत्ति बढ़ रही है । यह गलत है । इससे रजिस्ट्रीकरण में विलंब होता है जिसके परिणामस्वरूप अन्वेषण प्रारंभ करने और अपराधियों के पकड़े जाने में बहुमूल्य समय की हानि होती है । इसके अलावा, परिवादियों को अपने मित्रों, नातेदारों और कभी-कभी वकीलों से भी परामर्श करने का अवसर प्राप्त हो जाता है और इससे प्रायः अपराध को बढ़ा-चढ़ा कर बताया जाता है और निर्दोष व्यक्तियों को फंसा दिया जाता है । परिणामतः इसका विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । यदि इत्तिला मौखिक रूप से दी जाती है तो पुलिस थाने के अधिकारी द्वारा उसे समय बर्बाद किए बिना लेखबद्ध किया जाना चाहिए जिससे कि अभिकथित अपराध के बारे में सर्वप्रथम बयान अभिलेखबद्ध हो जाए ।

7.20.11 समिति के ध्यान में यह आया है कि संज्ञेय मामलों में भी पुलिस अधिकारी प्रायः परिवाद ग्रहण नहीं करते और परिवादी को यह कहकर भगा देते हैं कि अपराध संज्ञेय नहीं है । कभी-कभी पुलिस राजनैतिक या अन्य दबावों या भ्रष्टाचार के कारण मामले को संज्ञेय प्रवर्ग में लाने के लिए तथ्यों को तोड़-मरोड़ देती है हालांकि वह असंज्ञेय होता है । पुलिस अधिकारी को उसके द्वारा प्राप्त प्रत्येक परिवाद को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए बाध्यकर बनाकर इस बुराई को रोका जा सकता है । इस कर्तव्य का भंग करना विधि के अनुसार दंडनीय अपराध बनना चाहिए जिससे कि पुलिस अधिकारियों को अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने से रोका जा सके ।"

94. इसका अभिप्राय यह है कि रजिस्ट्रीकृत न की जाने वाली प्रथम इत्तिला रिपोर्टों की संख्या वास्तव में रजिस्ट्रीकृत की जाने वाली प्रथम इत्तिला रिपोर्टों की संख्या के लगभग समान है । राष्ट्रीय अपराध अनुसंधान बोर्ड के आंकड़ों को ध्यान में रखते हुए, जो यह दर्शाते हैं कि वर्ष 2012 के दौरान

भारत में लगभग 60 लाख संज्ञेय अपराध रजिस्ट्रीकृत किए गए थे, प्रत्येक वर्ष दबाए जाने वाले अपराधों की संख्या लगभग 60 लाख हो सकती है । इस प्रकार, यह दृष्टव्य है कि प्रत्येक वर्ष इतनी बड़ी संख्या में प्रथम इत्तिला रिपोर्टें रजिस्ट्रीकृत नहीं की जाती हैं जो कि इतनी बड़ी संख्या में अपराधों के शिकार व्यक्तियों के अधिकारों का स्पष्ट अतिक्रमण है ।

95. अपराध को दबाए जाने के परिणामस्वरूप अल्पकालिक रूप से विधिसम्मत शासन का तनुकरण होता है और दीर्घकालिक रूप से इसका विधिसम्मत शासन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है क्योंकि लोग विधिसम्मत शासन का सम्मान करना बन्द कर देते हैं । इस प्रकार, इतनी बड़ी संख्या में प्रथम इत्तिला रिपोर्टों का रजिस्ट्रीकृत न किए जाने के परिणामस्वरूप समाज में एक निश्चित अराजकता पैदा हो जाती है ।

96. अतः, धारा 154 का किसी अन्य रूप में पठन करना न केवल समिति की स्कीम के लिए अहितकर होगा बल्कि व्यापक रूप से समाज के लिए भी अहितकर होगा । इस प्रकार यह दृष्टव्य है कि इस न्यायालय ने विभिन्न विनिश्चित मामलों में बारंबार यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत करना आज्ञापक है यदि पुलिस को संहिता की धारा 154 के अधीन दी गई इत्तिला से किसी संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है ।

क्या इस उपबंध का दुरुपयोग किए जाने की संभाव्यता है ?

97. प्रारंभिक जांच के समर्थन में दिया गया उद्दीपित करने वाला एक अन्य तर्क यह है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आज्ञापक रजिस्ट्रीकरण के परिणामस्वरूप मनमानी गिरफ्तारी होगी जिससे प्रत्यक्षतः संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा ।

98. जबकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है, किन्तु अभियुक्त को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने पर तुरंत गिरफ्तार करना बिल्कुल भी अनिवार्य नहीं है । वास्तव में, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना और अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाना विधि के अधीन दो पूर्णतः भिन्न-भिन्न संकल्पनाएं हैं और गिरफ्तारी के विरुद्ध अनेक रक्षोपाय उपलब्ध हैं । इसके अलावा, यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि अभियुक्त व्यक्ति के पास संहिता की धारा 438 के उपबंधों के अधीन अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का अधिकार भी है यदि उसमें उल्लिखित शर्तें पूरी होती हैं । इस प्रकार,

समुचित मामलों में, वह न्यायालय के आदेश प्राप्त करके उस उपबंध के अधीन गिरफ्तारी से बच सकता है ।

99. यह उल्लेख करना भी सुसंगत है कि **जोगिन्दर कुमार** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पुलिस द्वारा नेमी रीति में गिरफ्तारी नहीं की जा सकती है । कुछ महत्वपूर्ण मताभिव्यक्तियां नीचे उद्धृत की जाती हैं :–

> "कोई भी गिरफ्तारी किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई अपराध किए जाने के अभिकथन मात्र के आधार पर नेमी रीति में नहीं की जा सकती है । किसी पुलिस अधिकारी के लिए किसी नागरिक के सांविधानिक अधिकारों के संरक्षण के हित में और संभवतः उसके अपने हित में यह विवेकपूर्ण होगा कि किसी परिवाद की वास्तविकता और सद्भाविकता के बारे में कुछ अन्वेषण करने के पश्चात् युक्तियुक्त समाधान हुए बिना और व्यक्ति की सह-अपराधिता के बारे में और गिरफ्तारी को प्रभावी करने की आवश्यकता के बारे में युक्तियुक्त विश्वास किए बिना कोई गिरफ्तारी नहीं की जानी चाहिए । किसी व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता से वंचित करना एक गंभीर मामला है । पुलिस आयोग की सिफारिशों में दैहिक स्वाधीनता और स्वतंत्रता के मूल अधिकार की सांविधानिक सहवर्तिताओं को मात्र प्रतिबिंबित किया गया है । किसी भी व्यक्ति को किसी अपराध में सह-अपराधिता के संदेह मात्र के आधार पर गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है । गिरफ्तार करने वाले अधिकारी की राय में कुछ युक्तियुक्त न्यायौचित्य अवश्य होना चाहिए कि ऐसी गिरफ्तारी आवश्यक और न्यायोचित है । यदि कोई पुलिस अधिकारी किसी व्यक्ति को थाने में उपस्थित होने और अनुज्ञा के बिना थाना छोड़ने की सूचना जारी करता है तो जघन्य अपराधों के सिवाय कोई गिरफ्तारी नहीं की जानी चाहिए ।"

100. संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना और धारा 41 के अधीन अभियुक्त व्यक्ति का गिरफ्तार किया जाना, ये दोनों पूर्णतः भिन्न-भिन्न बातें हैं । यह कहना सही नहीं है कि केवल इस कारण कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई है इसलिए अभियुक्त व्यक्ति को तुरंत गिरफ्तार किया जा सकता है । यह

---

[1] (1994) 4 एस. सी. सी. 260.

काल्पनिक भय है कि मात्र इस कारण कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई है, इसलिए अभियुक्त का गिरफ्तार किया जाना अपेक्षित होगा और इसके परिणामस्वरूप उसकी प्रतिष्ठा की हानि होगी और इस न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्तियों को इस प्रकार परेशानी से बचाने के लिए यह अभिनिर्धारित करना अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक नहीं है । इसका उपचार उन रक्षोपायों को कड़ाई से प्रवर्तित कराने में निहित है जो पुलिस द्वारा की गई मनमानी गिरफ्तारियों के विरुद्ध उपलब्ध हैं न कि पुलिस को तब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आज्ञापक रजिस्ट्रीकरण से बचाने के लिए अनुज्ञात करने में निहित है जब इत्तिला से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है ।

101. तथ्य से यह भी देखा जा सकता है कि संहिता की धारा 151 पुलिस अधिकारी को कोई संज्ञेय अपराध किए जाने से पूर्व भी, उस अपराध का किया जाना रोकने की दृष्टि से किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की अनुज्ञा देती है यदि उसे अन्यथा नहीं रोका जा सकता है । ऐसी निवारक गिरफ्तारियां 24 घंटे के लिए विधिमान्य हो सकती हैं । तथापि, धारा 151 में महाराष्ट्र राज्य के संशोधन द्वारा उस राज्य में कोई संज्ञेय अपराध किए जाने से पूर्व भी ऐसा अपराध करने से रोकने की दृष्टि से किसी व्यक्ति को (न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश से) 30 दिन की अवधि तक अभिरक्षा में रखने के लिए अनुज्ञात किया गया है । इस प्रकार, किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना प्रत्यक्ष रूप से और/या अपरिवर्तनीय रूप से एक-दूसरे से जुड़ा नहीं है और ये पूर्णतः भिन्न-भिन्न संकल्पनाएं हैं जो पूर्णतः भिन्न-भिन्न पैरामीटर के अधीन प्रवर्तित होती हैं । दूसरी ओर, यदि कोई पुलिस अधिकारी गिरफ्तारी की अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है तो उसके विरुद्ध धारा 166 के अधीन विचारण चलाया जा सकता है और उसे दंडित किया जा सकता है ।

102. इसके अलावा, संहिता में पुलिस को अन्वेषण से पूर्व या उसके पश्चात् दोनों दशाओं में मामले को बन्द करने की शक्ति दी गई है । कोई पुलिस अधिकारी संहिता की धारा 157 के अधीन अन्वेषण से पूर्ण किसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को पुरोबंध कर सकता है यदि उसे यह प्रतीत होता है कि उसका अन्वेषण करने का कोई पर्याप्त आधार नहीं है । इस धारा में ही यह कहा गया है कि कोई पुलिस अधिकारी अन्वेषण आरंभ कर सकता है जब उसके पास कोई अपराध किए जाने का संदेह करने का कारण हो । इसलिए, संहिता की धारा 157 के अधीन अन्वेषण करने की अपेक्षाएं

संहिता की धारा 154 के अधीन अपेक्षाओं से अधिक हैं । पुलिस अधिकारी किसी विशेष मामले में मामले का अन्वेषण कर सकता है और उसके बाद मामले को बन्द करने की ईप्सा करते हुए संहिता की धारा 173 के अधीन अंतिम रिपोर्ट फाइल कर सकता है । इसलिए, पुलिस प्रत्येक ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में जो संज्ञेय अपराध किए जाने से संबंधित इत्तिला प्राप्त होने पर आज्ञापक रूप से रजिस्ट्रीकृत की जाती है, अन्वेषण आरंभ करने के लिए दायी नहीं है ।

103. इसी प्रकार, पुलिस को अन्वेषण बन्द करने की शक्ति देकर संहिता की धारा 157 यह सुनिश्चित करने के लिए कि पुलिस संज्ञेय अपराधों का अन्वेषण करने संबंधी अपनी कृत्य का निर्वहन कर रही है, उस पर एक नियंत्रण की तरह भी काम करती है । दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के संबंध में भारत के विधि आयोग की इकतालीसवीं रिपोर्ट में निम्न प्रकार अभिलिखित किया गया है :–

> "14.1. .... यदि अपराध गंभीर प्रतीत नहीं होता है और यदि थाना अधिकारी यह समझता है कि अन्वेषण आरंभ करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है तो उसे अन्वेषण करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि यहां भी उसे मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट भेजनी होगी जो पुलिस को अन्वेषण करने का निदेश दे सकता है या यदि मजिस्ट्रेट उचित समझता है तो स्वयं जांच कर सकता है ।"
>
> "14.2 स्कीम की अवेक्षणीय विशेषता, जिसकी रूपरेखा ऊपर प्रस्तुत की गई है, यह है कि मजिस्ट्रेट को पुलिस अन्वेषण के समस्त प्रक्रमों से अवगत रखा गया है किन्तु वह वास्तविक अन्वेषण में हस्तक्षेप करने या पुलिस को इस संबंध में कोई निदेश देने के लिए प्राधिकृत नहीं है कि वह अन्वेषण किस प्रकार किया जाना है ।"

अतः, संहिता की स्कीम में न केवल यह सुनिश्चित किया गया है कि पुलिस का समय मिथ्या और तुच्छ इत्तिला पर बर्बाद नहीं किया जाना चाहिए बल्कि यह भी सुनिश्चित किया गया है कि पुलिस को संज्ञेय अपराधों का अन्वेषण करने संबंधी अपने कर्तव्य से जानबूझकर प्रविरत नहीं रहना चाहिए । परिणामस्वरूप, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण के उपबंध का दुरुपयोग होने की आशंका निराधार और काल्पनिक प्रकृति की है ।

104. महाराष्ट्र राज्य की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री नफादे

का पक्षकथन यह है कि जब किसी निर्दोष व्यक्ति को मिथ्या रूप से आलिप्त किया जाता है तब उसे न केवल प्रतिष्ठा की हानि होती है बल्कि उसे मानसिक तनाव भी झेलना पड़ता है और उसकी व्यक्तिगत स्वाधीनता का गंभीर रूप से ह्रास होता है । उसने **मेनका गांधी** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह प्रतिपादना कि जो विधि किसी व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत स्वाधीनता से वंचित करती है वह सारवान् तथा प्रक्रियात्मक दोनों पहलुओं पर युक्तियुक्त होनी चाहिए, जो अब हमारी सांविधानिक विधि में प्रबल रूप से स्थापित हो गई है । इसलिए, उसने संहिता की धारा 154 पर नए सिरे से विचार करने का अभिवाक् किया जिसमें संहिता की धारा 154 का निर्वचन अनुच्छेद 21 की आज्ञा के अनुरूप किया गया है ।

105. यह सही है कि समाज के हित और किसी व्यष्टि की स्वाधीनता को संरक्षित करने के बीच एक सूक्ष्म संतुलन बनाए रखना होगा । जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, संहिता में पहले ही ऐसे पर्याप्त रक्षोपायों का उपबंध किया गया है जो मिथ्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कराने की दशा में किसी व्यष्टि की स्वाधीनता को सम्यक् रूप से संरक्षा प्रदान करते हैं । इसके साथ-साथ, धारा 154 पीड़ित व्यक्ति और समाज के हितों को ध्यान में रखते हुए प्रारूपित की गई थी । अतः, हमारा यह सशक्त मत है कि संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला का अनिवार्यतः रजिस्ट्रीकृत किया जाना, जैसा विभिन्न काउन्सेलों द्वारा अर्थ लगाया गया है, संविधान के अनुच्छेद 21 के उल्लंघन में नहीं होगा ।

अपवाद

106. यद्यपि हम असंदिग्ध शब्दों में यह अभिनिर्धारित करते हैं कि संहिता की धारा 154 में सभी संज्ञेय अपराधों की इत्तिला प्राप्त होने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्टें आज्ञापक रूप से रजिस्ट्रीकृत करना अनुध्यात है फिर भी ऐसे दृष्टांत हो सकते हैं जहां समय के साथ-साथ अपराधों की उत्पत्ति में परिवर्तन और नवीनता के कारण प्रारंभिक जांच करना आवश्यक हो सकता है । ऐसा एक दृष्टांत डाक्टरों की ओर से बरती गई चिकित्सीय उपेक्षा से संबंधित अभिकथनों के मामले में है । किसी चिकित्सा वृत्तिक को परिवाद में किए गए अभिकथनों के आधार पर ही अभियोजित करना अनुचित और असाम्यापूर्ण होगा ।

107. चिकित्सीय उपेक्षा से संबंधित मामलों के संदर्भ में **जैकब मैथ्यु** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा निम्न प्रकार अभिनिर्धारित

किया गया था :–

"51. हमारे अभिनिर्धारित करने का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकेगा कि डाक्टरों को ऐसे किसी अपराध के लिए कभी भी अभियोजित नहीं किया जा सकता है जिसमें उतावलापन या उपेक्षा एक आवश्यक संघटक हैं । हम केवल समाज के हित में सावधानी और सतर्कता बरतने की आवश्यकता पर जोर दे रहे हैं क्योंकि चिकित्सा व्यवसायी मानव जीवन को जो सेवा प्रदान करते हैं वह संभवतः सबसे उत्कृष्ट है और इसलिए डाक्टरों को तुच्छ और अन्यायपूर्ण अभियोजनों से संरक्षित करने की आवश्यकता है । अनेक परिवादी अवांछित या अन्यायपूर्ण प्रतिकर प्राप्त करने के लिए चिकित्सा वृत्तिकों पर दबाव डालने के हथियार के रूप में दांडिक प्रक्रिया का अवलंब लेना पसन्द करते हैं । ऐसी द्वेषपूर्ण कार्यवाहियों से बचना होगा ।

52. भारत सरकार और/या राज्य सरकारों द्वारा भारतीय चिकित्सा परिषद् से परामर्श करके ऐसे कानूनी नियम या कार्यपालक अनुदेश विरचित और जारी किए जाने आवश्यक हैं जिनमें कतिपय दिशानिर्देश सम्मिलित हों । जब तक ऐसा नहीं किया जाता है, हम भविष्य के लिए कतिपय निर्देश अधिकथित करने की प्रस्थापना करते हैं जो डाक्टरों के ऐसे अपराधों के लिए अभियोजन को शासित करने चाहिएं जिनमें आपराधिक उतावलापन या आपराधिक उपेक्षा एक संघटक हो । कोई प्राइवेट परिवाद तब तक ग्रहण नहीं किया जा सकता है जब तक कि परिवादी ने न्यायालय के समक्ष किसी अन्य सक्षम डाक्टर द्वारा अभियुक्त डाक्टर की ओर से उतावलेपन या उपेक्षा के आरोप के समर्थन में एक विश्वसनीय राय के रूप में प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य प्रस्तुत न कर दिया हो । अन्वेषक अधिकारी को उतावलेपन या उपेक्षापूर्ण कार्य या लोप के अभियुक्त डाक्टर के विरुद्ध कार्यवाही करने से पूर्व, अधिमानतः ऐसे डाक्टर से, जो सरकारी सेवा में है, चिकित्सा पद्धति की उसी शाखा में अर्हित है और जिसके बारे में सामान्यतः यह प्रत्याशा की जा सकती है कि वह अन्वेषण में एकत्र तथ्यों पर बोलम कसौटी लागू करके निष्पक्ष और पक्षपातरहित राय देगा, स्वतंत्र और सक्षम चिकित्सीय राय अभिप्राप्त करनी चाहिए । उतावलेपन या उपेक्षा के अभियुक्त डाक्टर को नेमी रीति में गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है (मात्र इस कारण कि

उसके विरुद्ध कोई आरोप लगाया गया है) । जब तक अन्वेषण को अग्रसर करने के लिए या साक्ष्य एकत्र करने के लिए गिरफ्तारी आवश्यक न हो या जब तक अन्वेषक अधिकारी का इस संबंध में समाधान नहीं हो जाता है कि जिस डाक्टर के विरुद्ध कार्यवाही की जानी है, वह जब तक उसे गिरफ्तार नहीं कर लिया जाता है, स्वयं अभियोजन का सामना करने के लिए उपलब्ध नहीं होगा, तब तक गिरफ्तारी रोकी जा सकती है ।"

108. भ्रष्टाचार से संबंधित अपराधों के संदर्भ में इस न्यायालय ने **पी. सिराजुद्दीन** (उपर्युक्त) वाले मामले में लोक सेवक के विरुद्ध कार्यवाही करने से पूर्व प्रारंभिक जांच करने की आवश्यकता व्यक्त की है ।

109. इसी प्रकार, **तपन कुमार सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व प्रारंभिक जांच को केवल इस आधार पर विधिमान्य ठहराया कि जिस समय प्रथम इत्तिला प्राप्त की जाती है उससे कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता है ।

110. अतः, रजिस्ट्रीकृत करने या रजिस्ट्रीकृत न करने के संबंध में विभिन्न परस्पर-विरोधी दावों को ध्यान में रखते हुए केवल इतना आवश्यक है कि पुलिस को दी गई इत्तिला से संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होना चाहिए । ऐसी स्थिति में, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है । तथापि, यदि दी गई इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध साबित नहीं होता है तो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को तुरंत रजिस्ट्रीकृत करना आवश्यक नहीं है और संभवतः पुलिस यह अभिनिश्चित करने के सीमित प्रयोजन के लिए कि क्या कोई संज्ञेय अपराध किया गया है अथवा नहीं, किसी प्रकार का प्रारंभिक सत्यापन या जांच कर सकती है । किन्तु यदि दी गई इत्तिला में स्पष्ट रूप से किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने का उल्लेख होता है तो तत्काल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं होता है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किए जाने के प्रक्रम पर अन्य विचारणाएं सुसंगत नहीं हैं, जैसे क्या इत्तिला मिथ्या रूप से दी गई है, क्या इत्तिला सही है, क्या इत्तिला विश्वसनीय है, इत्यादि । ये ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अन्वेषण के दौरान सत्यापित किया जाना है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करने के प्रक्रम पर केवल यह देखा जाना है कि क्या दी गई इत्तिला प्रत्यक्षतः संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट करती है । यदि अन्वेषण के पश्चात् दी गई इत्तिला मिथ्या पाई जाती है तो परिवादी को मिथ्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

फाइल करने के लिए अभियोजित करने का सदैव विकल्प रहता है ।

निष्कर्ष/निदेश

111. उपर्युक्त विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए, हम निम्न प्रकार अभिनिर्धारित करते हैं :–

(i) संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का रजिस्ट्रीकृत किया जाना आज्ञापक है यदि इत्तिला से किसी संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है और ऐसी स्थिति में कोई प्रारंभिक जांच अनुज्ञेय नहीं है ।

(ii) यदि इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता है किन्तु उससे जांच की आवश्यकता उपदर्शित होती है तो प्रारंभिक जांच केवल यह अभिनिश्चित करने के लिए की जा सकती है कि क्या संज्ञेय अपराध प्रकट होता है अथवा नहीं ।

(iii) यदि जांच से कोई संज्ञेय अपराध किया गया प्रकट होता है तो प्रथम इत्तिला अवश्य रजिस्ट्रीकृत की जानी चाहिए । ऐसे मामलों में, जहां प्रारंभिक जांच का अंत परिवाद को बन्द करने से होता है वहां ऐसे बन्द करने की प्रविष्टि की प्रति प्रथम इत्तिलाकर्ता को तत्काल किन्तु एक सप्ताह के अपश्चात् प्रदत्त की जानी चाहिए । इसमें परिवाद को बन्द करने और उस पर आगे कार्यवाही न करने के कारण संक्षेप में प्रकट किए जाने चाहिएं ।

(iv) पुलिस अधिकारी अपराध रजिस्ट्रीकृत करने संबंधी अपने कर्तव्य से तब बच नहीं सकता है यदि संज्ञेय अपराध प्रकट होता है । ऐसे दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई अवश्य की जानी चाहिए जो तब भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत नहीं करते हैं यदि उनके द्वारा प्राप्त इत्तिला से संज्ञेय अपराध प्रकट होता है ।

(v) प्रारंभिक जांच की परिधि, प्राप्त की गई इत्तिला की सत्यता या अन्यथा को सत्यापित करना नहीं है बल्कि केवल यह अभिनिश्चित करना है कि क्या इत्तिला से कोई संज्ञेय अपराध प्रकट होता है ।

(vi) यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि किस प्रकार की और किन मामलों में प्रारंभिक जांच की जानी है । उन मामलों के प्रवर्ग, जिनमें प्रारंभिक जांच की जा सकती है, निम्नलिखित हैं :–

(क) विवाह-विषयक विवाद/कौटुम्बिक विवाद

(ख) वाणिज्यिक अपराध

(ग) चिकित्सीय उपेक्षा वाले मामले

(घ) भ्रष्टाचार के मामले

(ङ) ऐसे मामले, जिनमें दांडिक अभियोजन आरंभ करने में असामान्य विलंब/अतिविलंब किया गया है, उदाहरणार्थ, मामले के संबंध में रिपोर्ट करने में हुए विलंब के लिए कारणों को समाधानप्रद रूप से स्पष्ट किए बिना तीन मास से अधिक का विलंब होता है । उपर्युक्त मामले केवल दृष्टांत स्वरूप हैं और इससे वे स्थितियां निःशेष नहीं हो गई हैं जिनमें प्रारंभिक जांच आवश्यक हो सकती है ।

(vii) अभियुक्त और परिवादी के अधिकारों को सुनिश्चित और संरक्षित करते हुए प्रारंभिक जांच समयबद्ध की जानी चाहिए और किसी भी दशा में इसकी अवधि सात दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए । ऐसे विलंब संबंधी तथ्य और उनके कारण साधारण डायरी प्रविष्टि में प्रतिबिंबित किए जाने चाहिएं ।

(viii) चूंकि साधारण डायरी/थाना डायरी/दैनिक डायरी किसी पुलिस थाने में प्राप्त की जाने वाली समस्त इत्तिला का अभिलेख होता है इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि संज्ञेय अपराधों से संबंधित समस्त इत्तिला, चाहे उसके परिणामस्वरूप प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की जाती है या उसके परिणामस्वरूप कोई जांच की जानी है, उक्त डायरी में आज्ञापक रूप से और सूक्ष्म रूप से प्रतिबिंबित होनी चाहिए और प्रारंभिक जांच करने का विनिश्चय भी, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अवश्य ही प्रतिबिंबित होना चाहिए ।

112. उक्त निदेशों के साथ हम उस निर्देश का, जो हमें किया गया है, निपटारा करते हैं । सभी मामले समुचित न्यायपीठ के समक्ष गुणागुण के आधार पर निपटारे के लिए सूचीबद्ध किए जाएं ।

निर्देश का तद्नुसार निपटारा किया गया ।

ग्रो.

[2014] 2 उम. नि. प. 422

राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत

बनाम

जितेन्द्र कुमार सिंह

5 फरवरी, 2014

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 3 और 4 – विशेष न्यायाधीश – अधिकारिता – धारा 3(1) में विनिर्दिष्ट अपराध किसी लोक सेवक या गैर-लोक सेवक द्वारा अकेले ही या संयुक्त रूप से कारित किया जा सकता है और ऐसे गैर-लोक सेवक के विरुद्ध कार्यवाही करने की अधिकारिता अधिनियम के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश को प्राप्त है तथा गैर-लोक सेवक का विचारण करने के लिए किसी लोक सेवक का संबद्ध होना आवश्यक नहीं है ।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 3 और 4(3) – विशेष न्यायाधीश – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों का विचारण करने की अधिकारिता – धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी अपराध का विचारण करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि अभियुक्त का साथ-ही-साथ धारा 3(1) में विनिर्दिष्ट अपराध के लिए भी विचारण किया जा रहा हो ।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 3 और 4 – विशेष न्यायाधीश द्वारा लोक सेवक तथा गैर-लोक सेवक के विरुद्ध धारा 3 और भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किया जाना – आरोप विरचित होने के पश्चात् एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो जाना – अधिकारिता – आरोप विरचित हो जाने के पश्चात् विशेष न्यायाधीश की गैर-लोक सेवक का विचारण करने की अधिकारिता केवल इस तथ्य से निर्निहित नहीं हो जाएगी कि एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो गई है, क्योंकि लोक सेवक का संबद्ध होना आवश्यक नहीं है ।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 3 और 4(3) – लोक सेवक और गैर-लोक सेवकों के विरुद्ध अधिनियम और

भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप पत्र फाइल किया जाना – विशेष न्यायाधीश द्वारा आरोप विरचित करने से पूर्व लोक सेवकों तथा कुछ गैर-लोक सेवक अभियुक्तों की मृत्यु हो जाना – चूंकि विशेष न्यायाधीश के लिए लोक सेवकों या गैर-लोक सेवकों के विरुद्ध धारा 3(1) के अधीन विनिर्दिष्ट किसी अपराध का विचारण करने का ऐसा कोई अवसर था ताकि धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न अपराध का विचारण किया जा सके, इसलिए विशेष न्यायाधीश द्वारा अधिकारिता का तथ्य विद्यमान न होने के कारण गैर-लोक सेवक अभियुक्त के विरुद्ध अधिनियम से इतर अपराध का विचारण मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा किए जाने के लिए मामला प्रेषित करना उचित था ।

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, नई दिल्ली ने अभियुक्त-1, मुख्य प्रबंधक भारतीय स्टेट बैंक, जयपुर रोड, अभियुक्त-2, निदेशक मैसर्स मिडईस्ट इंटीग्रेटिड स्टील्स लिमिटेड (एमआईएसएल), नई दिल्ली, अभियुक्त-3, निदेशक, मैसर्स एमआईएसएल, अभियुक्त-4 और स्वत्वधारी केसोराम रिफ्रेक्टरी, नई दिल्ली के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख सपठित धारा 420, 467, 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(घ) के अधीन एक मामला यह अभिकथन करते हुए दर्ज किया कि अभियुक्त-1 वर्ष 1996-97 के दौरान आई. डी. बी. आई., मुम्बई के साथ छल करने के उद्देश्य से अभियुक्त-2, अभियुक्त-3, अभियुक्त-4 और अन्य के साथ आपराधिक षड्यंत्र करने में एक पक्षकार था और उसको अग्रसर करने में अभियुक्त-1 ने बी. के. बिरला ग्रुप की एक कंपनी मैसर्स केसोराम रिफ्रेक्टरिज़, कोलकाता के तात्पर्यित रूप से कूटरचित/बनावटी बीजकों को भारतीय स्टेट बैंक, जयपुर रोड द्वारा खोले गए एल. सी. पर परक्रामित करके अभियुक्त व्यक्तियों, अभियुक्त-1 और अभियुक्त-3 को असम्यक् धनीय फायदा पहुंचाने और आई. डी. बी. आई. को हानि कारित करने के लिए अपनी पदीय हैसियत का दुरुपयोग किया । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात् विशेष न्यायाधीश, नई दिल्ली के समक्ष आरोप-पत्र फाइल किया और विशेष न्यायाधीश ने अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं के अधीन आरोप विरचित किए । विशेष न्यायाधीश ने, बाद में, मामले में अभियोजन साक्ष्य के लिए तारीख लगाई किंतु उस दिन मामला स्थगित कर दिया गया । इसी बीच, एकमात्र लोक सेवक (अभियुक्त-1) की मृत्यु हो गई । इसके पश्चात्

अभियुक्त-3 ने अपने विरुद्ध आरोप विरचित करने वाले आदेश को चुनौती देते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय को निदेश दिया कि साक्षियों की केवल मुख्य-परीक्षा अभिलिखित की जाए । तद्नुसार, आठ अभियोजन साक्षियों की मुख्य-परीक्षा भिन्न-भिन्न दिनों को अभिलिखित की गई । अभियुक्त-2 ने विशेष न्यायाधीश के समक्ष एकमात्र लोक सेवक, अभियुक्त-1 की मृत्यु को देखते हुए आरोप समाप्त करने के लिए आवेदन फाइल किया । अभियुक्त-2 ने विचारण न्यायालय के समक्ष की आगे की कार्यवाहियों पर आरोप संशोधित हो जाने तक रोकादेश की ईप्सा करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष प्रकीर्ण मामला के रूप में एक आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय को निदेश दिया कि अभियुक्त-1 की मृत्यु के कारण अभियुक्त-2 द्वारा आरोपों के उपांतरण, संशोधन या परिवर्तन के लिए फाइल किए गए आवेदन का निपटारा किया जाए और यह भी निदेश दिया कि यदि न्यायालय आवश्यक समझे तो वह आरोपों में परिवर्धन, परिवर्तन या संशोधन करे और विधि के अनुसार कार्यवाही करे । तथापि, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उपरोक्त आवेदन पर विशेष न्यायाधीश के समक्ष आक्षेप फाइल किया । अभियुक्त-2 ने विशेष न्यायाधीश के समक्ष लंबित मामले को मंगाने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया, ताकि उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए निदेशों के बावजूद आरोपों को समाप्त करने के आवेदन पर कोई आदेश पारित न करने के औचित्य पर विचार किया जा सके । उसने एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु को ध्यान में रखते हुए आरोपों को अपास्त करने की भी प्रार्थना की । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने पुनरीक्षण आवेदन की संधार्यता को प्रश्नगत किया और यह भी उल्लेख किया कि ऐसा कोई कानूनी उपबंध नहीं है जिससे कि लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता दूषित होती हो । तथापि, उच्च न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों पर कार्यवाही नहीं की जा सकती है और अभियुक्त-1 की मृत्यु को ध्यान में रखते हुए आरोपों में उपांतरण और परिवर्तन और/या संशोधन करने का निदेश दिया । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उच्च न्यायालय के उक्त आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । एक अन्य मामले में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (बैंक प्रतिभूति और कपट प्रकोष्ठ), मुम्बई ने तारीख 2 जुलाई, 1996 को एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

दर्ज की जिससे यह प्रकट होता है कि महाराष्ट्र बैंक, पुणे के तत्कालीन अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक, अभियुक्त सं. 1, जो महाराष्ट्र बैंक के उप-महाप्रबंधक के रूप में कार्यरत था तथा महाराष्ट्र बैंक के कर्मचारी, अभियुक्त सं. 9 और 10, ने अभियुक्त सं. 2 तथा अभियुक्त सं. 3 और 5, जो मैसर्स ऑरसन इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड में क्रमशः प्रबंध निदेशक और महाप्रबंधक के रूप में कार्यरत थे, के साथ मिलकर बैंक के साथ छल करने के आशय से एक आपराधिक षड्यंत्र किया । अभियुक्त-2 और अन्य अभियुक्तों ने महाराष्ट्र बैंक के अधिकारियों के साथ मिलकर एक आपराधिक षड्यंत्र किया और इस आपराधिक षड्यंत्र को अग्रसर करते हुए मैसर्स ऑरसन इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड और मैसर्स निहोन इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, जिनका अभियुक्त-2 प्रबंध निदेशक/निदेशक था, के पक्ष में 20 करोड़ रुपए की बड़ी उधार सुविधा भलीभांति यह जानते हुए अभिप्राप्त की कि दोनों कंपनियों की पूंजी बहुत ही कम है और नई कंपनियां हैं और तद्द्वारा बैंक के साथ 20.64 करोड़ रुपए का छल किया गया । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने अन्वेषण पूर्ण किया और अभियुक्तों के विरुद्ध विशेष न्यायाधीश, मुम्बई के न्यायालय में भारतीय दंड संहिता और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप-पत्र फाइल किया । यद्यपि अभियुक्त सं. 9 और 10 आरोप-पत्र में नामित थे, उन्हें विचारण के लिए नहीं भेजा जा सका, चूंकि आरोप-पत्र फाइल करने से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई थी । इसके पश्चात् एकमात्र लोक सेवक, अभियुक्त-1 की भी मृत्यु हो गई । इसके बाद अभियुक्त-2 ने भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराधों के लिए विचारण करने हेतु मामला मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, मुम्बई को भेजने के लिए विशेष न्यायाधीश के समक्ष एक आवेदन फाइल किया, क्योंकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध लोक सेवक की मृत्यु हो जाने के कारण लागू नहीं होता था । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन किसी अपराध के अभाव में, विशेष न्यायाधीश द्वारा भारतीय दंड संहिता के अधीन अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए अपराधों का विचारण नहीं किया जा सकता । तथापि, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा आवेदन का यह कथन करते हुए विरोध किया गया कि भले ही एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो गई है, अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए अपराध का विशेष न्यायाधीश द्वारा विचारण किया जा सकता है । विशेष न्यायाधीश ने मामला विधि के अनुसार विचारण करने के लिए मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के न्यायालय में भेजने का आदेश पारित किया । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उक्त आदेश से व्यथित होकर मुम्बई उच्च

न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि विशेष न्यायाधीश को प्रदत्त अधिकारिता अभियुक्त की मृत्यु होने पर निर्निहित नहीं होती है । परिणामस्वरूप, विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किया गया आदेश अपास्त किया गया और विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, मुम्बई को मामले का विचारण जारी रखने का निदेश दिया गया । इससे व्यथित होकर, अभियुक्त-2 द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा उक्त दोनों अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 3(1) के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अध्याय 3 में निर्दिष्ट अपराध की प्रकृति पर निर्भर रहते हुए अनन्य रूप से किसी लोक सेवक के विरुद्ध और किसी गैर-लोक सेवक के विरुद्ध भी अनन्य रूप से कार्यवाही करने की अधिकारिता है । विशेष न्यायाधीश को किसी गैर-लोक सेवक के विरुद्ध ऐसे अपराध, जो अभिकथित रूप से उसके द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अध्याय 3 के अधीन कारित किया गया है, के लिए कार्यवाही करने के लिए किसी लोक सेवक का संबद्ध होना आवश्यक नहीं है । धारा 8 और 9 के अधीन अपराध किसी गैर-लोक सेवक द्वारा कारित किया जा सकता है और उसके विरुद्ध किसी लोक सेवक के संयोजन के बिना भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन कार्यवाही की जा सकती है । इस प्रकार, धारा 8, 9 या 12 के अधीन आने वाला अपराध किसी भी व्यक्ति द्वारा कारित किया जा सकता है, उसका आवश्यक रूप से एक लोक सेवक होना आवश्यक नहीं है । इसलिए, ऐसा कोई अपराध किसी लोक सेवक द्वारा या किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा या दोनों के संयोजन से कारित किया जा सकता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध या तो किसी लोक सेवक द्वारा या किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा या दोनों के संयोजन से कारित किया जा सकता है और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(1), सपठित इसकी धारा 3(1), की आज्ञा को देखते हुए ऐसे अपराधों का विचारण केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा ही किया जा सकता है । इस प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की स्कीम से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि यहां तक कि कोई प्राइवेट व्यक्ति, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) में वर्णित अपराध में अंतर्ग्रस्त है, का विचारण भी केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाना आवश्यक है, किसी अन्य

न्यायालय द्वारा नहीं । इसके अतिरिक्त, यह आवश्यक नहीं है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन प्रत्येक अपराध में किसी लोक सेवक का आवश्यक रूप से अभियुक्त होना आवश्यक है । दूसरे शब्दों में, विशेष न्यायालय के समक्ष विचारण का सामना करने के लिए किसी लोक सेवक की विद्यमानता आवश्यक नहीं है और मामले के तथ्यों पर निर्भर करते हुए उसके अभाव में भी प्राइवेट व्यक्तियों का भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए विचारण किया जा सकता है । इसलिए न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि यह विधि नहीं है कि विशेष न्यायाधीश प्राइवेट व्यक्तियों, जिन्होंने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए हैं, के विरुद्ध कार्यवाही पक्षकारों की सूची में किसी लोक सेवक के संयोजन के साथ ही कर सकता है । यह उल्लेखनीय है कि धारा 3(1)(क) और (ख) केवल भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराधों के संबंध में हैं न कि भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(1) से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(1) में एक सर्वोपरि खंड प्रयुक्त किया गया है । इस धारा में यह उपबंध है, "दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के अंतर्विष्ट होते हुए भी, धारा 3 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अपराधों का विचारण केवल विशेष न्यायाधीशों द्वारा किया जाएगा" । परिणामस्वरूप, धारा 3(1) में निर्दिष्ट अपराधों का विचारण साधारण दांडिक न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता है, चूंकि इसकी अधिकारिता विनिर्दिष्ट रूप से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश को प्रदत्त की गई है । धारा 4 की उपधारा (2) में भी इस बात को स्पष्ट किया गया है, जिसमें यह उपबंध है कि धारा 3 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रत्येक अपराध का विचारण उस क्षेत्र के लिए नियुक्त विशेष न्यायाधीश, जिसके भीतर वह अपराध कारित किया गया था, द्वारा किया जाएगा, या यथास्थिति, उस मामले के लिए नियुक्त विशेष न्यायाधीश, या जहां ऐसे क्षेत्र के लिए एक से अधिक विशेष न्यायाधीश हैं, उनमें से ऐसे एक विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा, जैसा कि केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट किया जाए । धारा 3(1) का पठन धारा 4(1) और (2) के साथ संयुक्त रूप से करने पर यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि किसी लोक सेवक या किसी गैर-लोक सेवक द्वारा अकेले या संयुक्त रूप से कारित किए गए धारा 3 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट

अपराधों का विचारण करने की अधिकारिता केवल विशेष न्यायाधीश को है । अब न्यायालय भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) की परिधि की परीक्षा कर सकता है, जो यह उपदर्शित करती है कि "किसी मामले का विचारण करते हुए", जिससे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1)(क) और (ख) में निर्दिष्ट अपराधों से संबंधित किसी ऐसे मामले का विचारण करते हुए, जिसके लिए विशेष न्यायाधीश को अनन्य अधिकारिता प्रदत्त की गई है, अभिप्रेत है । विशेष न्यायाधीश अनन्य अधिकारिता का प्रयोग करते समय, अर्थात् भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1)(क) और (ख) के अधीन अपराधों से संबंधित किसी मामले का विचारण करते हुए, धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी ऐसे अपराध का भी विचारण कर सकता है जिससे अभियुक्त को उसी विचारण में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन आरोपित किया जा सकता है । किसी प्रस्तुत मामले में, अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता के अधीन कारित किए गए अपराध के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध के लिए आरोपित किया जा सकता है । विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले आपराधिक मामलों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधान के अधीन आने वाले आरोपों के लिए भी विचारण किया जा सकता है । कोई अपराध करने का षड्यंत्र चाहे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन हो या भारतीय दंड संहिता के अधीन हो, एक अलग-अलग अपराध है और अलग-अलग आरोपित तथा विचारण किया जाना चाहिए । उदाहरण के लिए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने का षड्यंत्र स्वतः ऐसा अपराध है जो केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा विचारण किया जाने वाला अपराध है । दूसरे शब्दों में, कोई अभियुक्त व्यक्ति, लोक सेवक है या गैर-लोक सेवक, जिसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन अपराध के लिए आरोपित किया गया है, को भारतीय दंड संहिता के अधीन भी आरोपित किया जा सकता है और उस स्थिति में लोक सेवक के विरुद्ध अपराधों तथा किसी गैर-लोक सेवक के विरुद्ध अपराधों का विचारण करने की अधिकारिता विशेष न्यायाधीश को है । (पैरा 25, 27, 28, 29, 31 और 32)

2011 की दांडिक अपील सं. 161 में न्यायालय का सरोकार ऐसी स्थिति से है जहां लोक सेवक के विरुद्ध, उसके जीवित रहने के समय,

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था और न ही धारा 3(1) के अधीन किसी प्राइवेट व्यक्ति के अधीन कोई आरोप विरचित किया गया था । इसलिए विशेष न्यायाधीश के पास न तो किसी लोक सेवक और न ही किसी प्राइवेट व्यक्ति के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन "किसी मामले का विचारण करने" का अवसर था, जिससे कि धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी अपराध का विचारण कर सके, इसका यह अर्थ है कि अपीलार्थी जैसे प्राइवेट व्यक्ति के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों का विचारण करने का अवसर नहीं था । धारा 3(1) के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराध का विचारण करने के लिए धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है । इसलिए, विशेष न्यायाधीश द्वारा धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी अपराध का विचारण करने के लिए अधिकारिता का प्रयोग करने हेतु विशेष न्यायाधीश द्वारा धारा 3(1) के अधीन किसी मामले का विचारण करना अत्यावश्यक है । इसलिए, विशेष न्यायाधीश द्वारा धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी अपराध का विचारण करने की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए धारा 3(1) के अधीन "किसी मामले का विचारण करते हुए" शब्द एक अधिकारिता का तथ्य है । जहां तक भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों का संबंध है, साधारण दांडिक न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(1) के अधीन स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया है, यह अपवर्जन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के संबंध में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) में नहीं है । इसके अतिरिक्त, विशेष न्यायाधीश के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों का विचारण करना आबद्धकर नहीं है । अभिव्यक्ति "का भी विचारण कर सकता है" विशेष न्यायाधीश को एक विवेकाधिकार देती है, जो प्रत्येक मामले के तथ्यों तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराधों और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के बीच अंतःसंबंध पर निर्भर करेगा । विशेष न्यायाधीश से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह प्रत्याशित नहीं है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले किसी अपराध से पूरी तरह से असंबद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों का विचारण करे और ऐसी स्थिति में जब विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम

की धारा 3(1) के अधीन आने वाले किसी अपराध का विचारण नहीं कर रहा है, तो विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन न आने वाले अपराधों का विचारण करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया गया है, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराध का विचारण करना धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए एक अधिकारिता का तथ्य है । इसलिए, विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता को निर्निहित नहीं किया गया है, किंतु अधिकारिता का प्रयोग भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराध का विचारण करने के लिए अधिकारिता के तथ्य पर निर्भर करता है । इसलिए न्यायालय का सरोकार अधिकारिता के प्रयोग से है न कि विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता की विद्यमानता से । (पैरा 35, 36, 37 और 38)

अब न्यायालय इस बात की परीक्षा कर सकता है कि क्या इन दोनों अपीलों में उपरोक्त कसौटी का समाधान हो गया है । पहले 2008 की दांडिक अपील सं. 943 पर विचार कर सकते हैं । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने इस अपील में अभियुक्त-1, जोकि लोक सेवक है, के विरुद्ध और गैर-लोक सेवकों के विरुद्ध अपराधों के लिए तारीख 1 नवम्बर, 2001 को आरोप-पत्र प्रस्तुत किया था । विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने तारीख 25 मार्च, 2003 को अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 471 और 420 के साथ पठित धारा 120-ख के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के अधीन और लोक सेवकों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467 और 471 के अधीन मूल अपराधों तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के अधीन मूल अपराधों के लिए भी आरोप विरचित किए । अतः, विशेष न्यायाधीश द्वारा तारीख 25 मार्च, 2003 को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराधों तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों की बाबत अभियोजन पक्ष और प्रतिरक्षा पक्ष के काउंसेलों को सुनने के पश्चात् लोक सेवकों तथा गैर-लोक सेवकों के विरुद्ध आरोप विरचित किए । जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया गया है, धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन विशेष न्यायाधीश जब किसी मामले का विचारण कर रहा है, धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न अन्य अपराध का भी विचारण कर सकता है और उसी विचारण में आरोपित कर सकता है । वर्तमान मामले में विशेष न्यायाधीश ने लोक सेवक तथा गैर-लोक सेवक के

विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 471 और 420 के साथ पठित धारा 120-ख के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए हैं और इसलिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अधिकारिता के तथ्य, अर्थात् "किसी मामले का विचारण करते हुए", का समाधान किया गया है । विशेष न्यायाधीश ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए आरोप विरचित करने के पश्चात् मामले को अभियोजन साक्षियों की परीक्षा के लिए सूचीबद्ध किया और उसके पश्चात् एकमात्र लोक सेवक की तारीख 2 जून, 2003 को मृत्यु हो गई । प्रस्तुत मामले में, विशेष न्यायाधीश ने इससे पूर्व भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन भी अपनी शक्तियों का प्रयोग किया था और इसलिए उसे गैर-लोक सेवक के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए अधिकारिता से निर्निहित नहीं किया जा सकता है, भले ही आरोप विरचित होने के पश्चात् लोक सेवक की मृत्यु हो गई थी । लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर, केवल उसके विरुद्ध ही आरोप का उपशमन हुआ है और चूंकि विशेष न्यायाधीश ने पहले ही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया था, इसलिए वह अधिकारिता एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु के कारण निर्निहित नहीं हो सकती है । न्यायालय ऐसी स्थिति का निरूपण कर सकता है जहां किसी लोक सेवक की विचारण के अंतिम भाग में मृत्यु हो जाती है और उस समय तक कई साक्षियों की परीक्षा की जा चुकी हो और यह अभिनिर्धारित किया जाए कि एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु के कारण संपूर्ण विचारण दूषित हो जाएगा, इससे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, जो भ्रष्टाचार के प्रभावी रोकथाम और भ्रष्टाचार तथा रिश्वत से संबंधित मामलों को शीघ्रता से निपटाने के लिए अधिनियमित किया गया है, का संपूर्ण उद्देश्य और प्रयोजन निष्फल हो जाएगा । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम का प्रयोजन कार्यवाहियों में तीव्रता लाने के लिए भ्रष्टाचार निरोधक विधियों को अधिक प्रभावी बनाना, मामलों का दिन-प्रतिदिन विचारण करने के लिए उपबंध करना, रोकादेश मंजूर करने के संबंध में पारदर्शिता और अंतर्वर्ती आदेशों पर पुनरीक्षण की शक्तियों के प्रयोग का भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में उपबंध किया गया है । परिणामस्वरूप, जब एक बार विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराधों के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए भ्रष्टाचार

निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्ति का प्रयोग किया गया है, तब केवल यह तथ्य कि धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के पश्चात् एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो गई है, इस बात से विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता निर्निहित नहीं होगी या उसके समक्ष की कार्यवाहियां दूषित नहीं होंगी । अतः, न्यायालय 2008 की दांडिक अपील सं. 943 मंजूर करता है और उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त करता है तथा विशेष न्यायाधीश को मामलों का विचारण छह मास की अवधि में पूर्ण करने का निदेश देता है । (पैरा 41, 42, 43 और 44)

अब न्यायालय 2001 की दांडिक अपील सं. 161 की परीक्षा कर सकता है, जिसमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 2 जुलाई, 1996 को दर्ज की गई थी और विशेष न्यायाधीश के समक्ष भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) और 13(1) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख और 420 के अधीन आरोप-पत्र तारीख 14 सितम्बर, 2001 को फाइल किया गया था । विशेष न्यायाधीश को आरोप-पत्र भेजने से पूर्व ही अभियुक्त 9 और 10 की मृत्यु हो गई थी । एकमात्र लोक सेवक के विरुद्ध भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आरोप विरचित नहीं किए जा सके थे, चूंकि उसकी तारीख 18 फरवरी, 2005 को मृत्यु हो गई थी । विशेष न्यायाधीश ने गैर-लोक सेवकों के विरुद्ध भी कोई आरोप विरचित नहीं किया । जैसा कि पहले उपदर्शित किया गया है, विशेष न्यायाधीश धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन न आने वाले अपराधों के लिए केवल तभी विचारण कर सकता है जब भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध से संबंधित "किसी मामले का विचारण कर रहा हो" । प्रस्तुत मामले में, किसी भी गैर-लोक सेवक द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाला ऐसा अपराध कारित नहीं किया गया है जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत आ सके । परिणामस्वरूप, विशेष न्यायाधीश के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों से संबंधित किसी मामले का विचारण करने का कोई अवसर नहीं था । जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया गया है, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए किसी लोक सेवक या गैर-लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन किसी मामले का विचारण किया जाना अत्यावश्यक है । प्रस्तुत मामले में, चूंकि किसी भी गैर-लोक सेवक द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के

अधीन अपराध कारित नहीं किया गया है और लोक सेवक, जब वह जीवित था, के विरुद्ध कोई आरोप विरचित नहीं किए गए हैं, इसलिए विशेष न्यायाधीश के लिए उनमें से किसी के विरुद्ध भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन किसी मामले का विचारण करने का कोई अवसर नहीं था, चूंकि लोक सेवक की मृत्यु से पूर्व कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था । जहां तक इस अपील का संबंध है, अधिकारिता का तथ्य विद्यमान नहीं है जिससे कि विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए अधिकारिता का प्रयोग किया जा सके । (पैरा 44 और 45)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 13 एस. सी. सी. 621 : **मोहम्मद आरिफ** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली)** ;	33
[2009]	(2009) 7 एस. सी. सी. 198 : **शनिचर साहनी** बनाम **बिहार राज्य** ;	33
[2008]	(2008) 14 एस. सी. सी. 58 : **रमेश चन्द्र सांकला** बनाम **विक्रम सीमेंट और अन्य** ;	39
[2007]	(2007) 8 एस. सी. सी. 559 : **करोना लिमिटेड** बनाम **पार्वती स्वामीनाथन एंड संस** ;	39
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 628 : **विवेक गुप्ता** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो और एक अन्य** ;	34
[2004]	(2004) 1 जे. सी. सी. 218 : **कार्टनज़ेन केमी ओकफोरवाल्टनिंग एबी** बनाम **राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत** ;	9
[1993]	(1993) 3 एस. सी. सी. 609 : **अजय अग्रवाल** बनाम **भारत संघ** ;	32
[1979]	[1979] 4 उम. नि. प. 25 = (1979) 2 एस. सी. सी. 179 :	

रती लाल भांजी मिथानी बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 40

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 943 और इसके साथ 2011 की दांडिक अपील सं. 161.

2005 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 535 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 21 अप्रैल, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से सर्वश्री पी. पी. मल्होत्रा, अपर महा-सालिसिटर, वी. गिरि (न्याय-मित्र), बसंत आर., के. राधाकृष्णन्, उदय यू. ललित, गुरू कृष्ण कुमार, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ सर्वश्री मोहम्मद सिद्दीकी टी. ए. (न्याय-मित्र), शिवाजी एम. जाधव, अनिश आर. शाह, डा. अशोक धमीजा, टी. ए. खान, यासीर राउफ, सुश्री सारिका भनोट, सुश्री सोनिया धमीजा, सर्वश्री हरी शंकर के., कवल नैन, विकास सिंह जांगड़ा, आदित्य वर्मा, सुश्री लक्ष्मी और सुश्री आशा जी. नायर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् ने दिया ।

न्या. राधाकृष्णन् – इन मामलों में हमारा सरोकार भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (जिसे संक्षेप में "भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम" कहा गया है) के अध्याय 3 के साथ पठित अध्याय 2 में वर्णित विभिन्न उपबंधों, विशेष रूप से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अध्याय 3 में वर्णित अपराधों और शास्तियों से संबंधित धारा 3, 4, 5 और अन्य संबद्ध उपबंधों के निर्वचन से है ।

2. 2008 की अपील सं. 943 में हमारा सरोकार इस प्रश्न से है कि क्या विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(ख) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन किसी लोक सेवक के विरुद्ध धारा 3(1)

के अंतर्गत आने वाले अपराधों और प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख, 420, 467, 468 और 471 के अधीन आने वाले अपराधों के लिए आरोप विरचित करने के पश्चात्, एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर भी, प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए मामले का विचारण जारी रख सकता है या नहीं । दूसरे शब्दों में, प्रश्न यह है कि क्या एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए विचारण जारी रखने हेतु विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता समाप्त हो जाएगी । अगला प्रश्न यह उद्भूत हुआ है कि यदि यह उपधारणा कर ली जाए कि विशेष न्यायाधीश को प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन कार्यवाही करने की अधिकारिता है, तो क्या विशेष न्यायाधीश उसी विचारण में आरोपित अभियुक्तों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 के अधीन विनिर्दिष्ट अपराधों से भिन्न भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर किसी अपराध का विचारण करने के लिए कर्तव्यबद्ध है ।

3. 2011 की दांडिक अपील सं. 161 में हमारा सरोकार इस प्रश्न से है कि क्या विशेष न्यायाधीश को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(3) के अधीन प्राइवेट व्यक्तियों का भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए तब विचारण करने की अधिकारिता है जब लोक सेवकों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन अपराधों के लिए मामले का विचारण करने के लिए कोई आरोप विरचित नहीं किया गया हो, चूंकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम या भारतीय दंड संहिता के अधीन आरोपों के विरचित होने से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई थी ।

4. हमारे पास दो विरोधी निर्णय हैं, एक दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया है जिसे राज्य द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, नई दिल्ली की मार्फत फाइल की गई 2008 की अपील सं. 943 में आक्षेपित किया गया है और दूसरा मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया है जिसे 2011 की दांडिक अपील सं. 161 में एक प्राइवेट व्यक्ति द्वारा चुनौती दी गई है ।

5. यह प्रतीत होता है कि दिल्ली उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि जब लोक सेवक और गैर-लोक सेवक सह-अभियुक्त के रूप में सूचीबद्ध किए गए हैं और कुछ अपराध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन और अन्य अपराध भारतीय दंड संहिता के अधीन हों, तो लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों के

लिए कार्यवाही नहीं की जा सकती है और विचारण न्यायालय को आरोपों में उपांतरण और/या परिवर्तन और/या संशोधन करना होगा । मुम्बई उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि जब एक बार किसी विशेष न्यायाधीश में कोई अधिकारिता निहित कर दी जाती है, तो उसे किसी लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर निर्निहित नहीं किया जा सकता है और यदि किसी प्राइवेट व्यक्ति ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का दुष्प्रेरण किया है, तो ऐसे प्राइवेट व्यक्ति के विरुद्ध लगाए गए अलग आरोप को देखते हुए विशेष न्यायाधीश द्वारा लोक सेवक के बिना भी उसका विचारण किया जा सकता है ।

6. हम पहले 2008 की दांडिक अपील सं. 943 के तथ्यों पर विचार करेंगे । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, नई दिल्ली ने तारीख 16 मई, 2000 को पी. के. सामल (अभियुक्त-1), मुख्य प्रबंधक भारतीय स्टेट बैंक, जयपुर रोड, जे. के. सिंह (अभियुक्त-2), निदेशक मैसर्स मिडईस्ट इंटीग्रेटिड स्टील्स लिमिटेड (एमआईएसएल), नई दिल्ली, रीटा सिंह (अभियुक्त-3), निदेशक मैसर्स एमआईएसएल, दीपक सिंह (अभियुक्त-4) और स्वत्वधारी केसोराम रिफ्रेक्टरी, नई दिल्ली के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख सपठित धारा 420, 467, 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(घ) तथा मूल अपराधों के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468 और 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(घ) के अधीन एक मामला सं. आरसीएसआईजी 2000/ई0001 यह अभिकथन करते हुए दर्ज किया कि अभियुक्त-1 वर्ष 1996-97 के दौरान आई. डी. बी. आई., मुम्बई के साथ छल करने के उद्देश्य से अभियुक्त-2, अभियुक्त-3, अभियुक्त-4 और अन्य के साथ आपराधिक षड्यंत्र करने में एक पक्षकार था और उसको अग्रसर करने में अभियुक्त-1 ने बी. के. बिरला ग्रुप की एक कंपनी मैसर्स केसोराम रिफ्रेक्टरिज़, कोलकाता के तात्पर्यित रूप से कूटरचित/बनावटी बीजकों को भारतीय स्टेट बैंक, जयपुर रोड द्वारा खोले गए एल. सी. पर परक्रामित करके अभियुक्त व्यक्तियों, अभियुक्त-1 और अभियुक्त-3 को असम्यक् धनीय फायदा पहुंचाने और आई. डी. बी. आई. को 35,26,350/- रुपए की तत्सम हानि कारित करने के लिए अपनी पदीय हैसियत का दुरुपयोग किया ।

7. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात् तारीख 1 नवम्बर, 2001 को विशेष न्यायाधीश, नई दिल्ली के समक्ष आरोप पत्र

फाइल किया और विशेष न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष तथा प्रतिरक्षा पक्ष के काउंसेलों को सुनने के पश्चात् तारीख 25 मार्च, 2003 को अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख सपठित धारा 467, 471 और 420 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(घ) और 13(2) और अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467 और 471 के अधीन मूल अपराधों के लिए तथा अभियुक्त-1 के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के अधीन मूल अपराधों के लिए भी आरोप विरचित किए । सभी अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया ।

8. विशेष न्यायाधीश ने, बाद में, मामले में अभियोजन साक्ष्य के लिए तारीख 10 अप्रैल, 2003 लगाई और उस दिन दो साक्षी मौजूद थे, किंतु मामला स्थगित कर दिया गया । इसी बीच, तारीख 20 जून, 2003 को एकमात्र लोक सेवक (अभियुक्त-1) की मृत्यु हो गई । इसके पश्चात् अभियुक्त-3 ने अपने विरुद्ध आरोप विरचित करने वाले आदेश को चुनौती देते हुए तारीख 22 जुलाई, 2003 को दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष 2003 का दांडिक पुनरीक्षण सं. 550 फाइल किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 1 अगस्त, 2003 को विचारण न्यायालय को निदेश दिया कि साक्षियों की केवल मुख्य-परीक्षा अभिलिखित की जाए । तदनुसार, आठ अभियोजन साक्षियों की मुख्य-परीक्षा भिन्न-भिन्न दिनों को अभिलिखित की गई । अभियुक्त-2 ने तारीख 28 अप्रैल, 2004 को विशेष न्यायाधीश के समक्ष एकमात्र लोक सेवक, अभियुक्त-1 की मृत्यु को देखते हुए आरोप समाप्त करने के लिए आवेदन फाइल किया । अभियुक्त-2 ने विचारण न्यायालय के समक्ष की आगे की कार्यवाहियों पर आरोप संशोधित हो जाने तक रोकादेश की ईप्सा करते हुए तारीख 12 मई, 2004 को उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 के प्रकीर्ण मामला सं. 1395 के रूप में एक आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 14 मई, 2004 को विचारण न्यायालय को निदेश दिया कि अभियुक्त-1 की मृत्यु के कारण अभियुक्त-2 द्वारा आरोपों के उपांतरण, संशोधन या परिवर्तन के लिए फाइल किए गए आवेदन का निपटारा किया जाए और यह भी निदेश दिया कि यदि न्यायालय आवश्यक समझे तो वह आरोपों में परिवर्धन, परिवर्तन या संशोधन करे और विधि के अनुसार कार्यवाही करे ।

9. तथापि, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने तारीख 20 मई, 2004 को उपरोक्त आवेदन पर विशेष न्यायाधीश के समक्ष आक्षेप फाइल किया ।

अभियुक्त-2 ने विशेष न्यायाधीश के समक्ष लंबित मामले को मंगाने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष तारीख 12 जुलाई, 2005 को 2005 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 535 फाइल किया, ताकि उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए निदेशों के बावजूद आरोपों को समाप्त करने के आवेदन पर कोई आदेश पारित न करने के औचित्य पर विचार किया जा सके । उसने एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु को ध्यान में रखते हुए आरोपों को अपास्त करने की भी प्रार्थना की । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने पुनरीक्षण आवेदन की संधार्यता को प्रश्नगत किया और यह भी उल्लेख किया कि ऐसा कोई कानूनी उपबंध नहीं है जिससे कि लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता दूषित होती हो । तथापि, उच्च न्यायालय ने **कार्टनज़ेन केमी ओकफोरवाल्टनिंग एबी** बनाम **राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत**[1] वाले मामले में (बोफोर्स मामला) अपने पूर्ववर्ती निर्णय का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों पर कार्यवाही नहीं की जा सकती है और अभियुक्त-1 की मृत्यु को ध्यान में रखते हुए आरोपों में उपांतरण और परिवर्तन और/या संशोधन करने का निदेश दिया, जिसकी वैधता को 2008 की दांडिक अपील सं. 943 में चुनौती दी गई है ।

10. अब हम 2011 की दांडिक अपील सं. 161 के तथ्यों की परीक्षा करेंगे । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (बैंक प्रतिभूति और कपट प्रकोष्ठ), मुम्बई ने तारीख 2 जुलाई, 1996 को एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की जिससे यह प्रकट होता है कि महाराष्ट्र बैंक, पूणे के तत्कालीन अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक, अभियुक्त सं. 1, जो महाराष्ट्र बैंक के उप महाप्रबंधक के रूप में कार्यरत था तथा महाराष्ट्र बैंक के कर्मचारी, अभियुक्त सं. 9 और 10, ने अपीलार्थी (अभियुक्त सं. 2) तथा अभियुक्त सं. 3 और 5, जो मैसर्स ऑरसन इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड में क्रमशः प्रबंध निदेशक और महा प्रबंधक के रूप में कार्यरत थे, के साथ मिलकर बैंक के साथ छल करने के आशय से एक आपराधिक षड्यंत्र किया । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह भी अभिकथित है कि वर्ष 1986-88 के दौरान अभियुक्त-2 और अन्य अभियुक्तों ने महाराष्ट्र बैंक के अधिकारियों के साथ मिलकर एक आपराधिक षड्यंत्र किया और इस आपराधिक षड्यंत्र को अग्रसर करते हुए मैसर्स ऑरसन इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड और मैसर्स निहोन इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, जिनका अभियुक्त-2 प्रबंध निदेशक/निदेशक था, के पक्ष में 20

[1] (2004) 1 जे. सी. सी. 218.

करोड़ रुपए की बड़ी उधार सुविधा भलीभांति यह जानते हुए अभिप्राप्त की कि दोनों कंपनियों की पूंजी बहुत ही कम है और नई कंपनियां हैं । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह भी अभिकथन किया गया कि वे निधियां उस प्रयोजन के लिए उपयोग नहीं की गईं जिसके लिए वे बैंक से अभिप्राप्त की गई थीं और मैसर्स ऑरसन इलैक्ट्रोनिक्स लिमिटेड और अन्य बनावटी फर्मों के माध्यम से निकाल ली गईं । परिणामस्वरूप, अभियुक्त बैंक की निधियों का प्रतिदाय करने में असफल रहे और तद्द्वारा बैंक के साथ 20.64 करोड़ रुपए का छल किया गया । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह भी अभिकथित है कि अभियुक्त-1 ने लोक सेवक के नाते अपनी हैसियत का दुरुपयोग किया और अभियुक्त-2 से अभियुक्त-8 को फायदा पहुंचाया और तद्द्वारा बैंक को सदोष हानियां कारित कीं ।

11. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने अन्वेषण पूर्ण किया और तारीख 14 सितम्बर, 2001 को अभियुक्तों के विरुद्ध विशेष न्यायाधीश, मुम्बई के न्यायालय में अन्य अपराधों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख सपठित धारा 420 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) सपठित धारा 5(1)(ख) की तत्स्थानी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप पत्र फाइल किया ।

12. यद्यपि अभियुक्त सं. 9 और 10 आरोप पत्र में नामित थे, उन्हें विचारण के लिए नहीं भेजा जा सका, चूंकि तारीख 14 सितम्बर, 2001 को आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई थी । तारीख 18 फरवरी, 2005 को एकमात्र लोक सेवक, अभियुक्त-1 की भी मृत्यु हो गई । इसके पश्चात् इस अपील में के अपीलार्थी, अभियुक्त-2 ने भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराधों के लिए विचारण करने हेतु मामला मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, मुम्बई को भेजने के लिए विशेष न्यायाधीश के समक्ष एक आवेदन फाइल किया, क्योंकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध लोक सेवक की मृत्यु हो जाने के कारण लागू नहीं होता था । यह उल्लेख किया गया कि आरोप पत्र में दो लोक सेवकों को अभियुक्तों के रूप में सम्मिलित किया गया था, किंतु जब आरोप पत्र फाइल किया गया तब उनमें से केवल एक ही जीवित था । इसके अतिरिक्त, यह कथन किया गया कि जब आरोप विरचित किए जाने थे, तब दोनों में से कोई भी लोक सेवक जीवित नहीं था, इसलिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था ।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन किसी अपराध के अभाव में, विशेष न्यायाधीश द्वारा भारतीय दंड संहिता के अधीन अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए अपराधों का विचारण नहीं किया जा सकता । तथापि, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा आवेदन का यह कथन करते हुए विरोध किया गया कि भले ही एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो गई है, अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए अपराध का विशेष न्यायाधीश द्वारा विचारण किया जा सकता है ।

13. विशेष न्यायाधीश ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् निम्नलिखित आदेश पारित किया :–

> "9. उपरोक्त विनिश्चयाधारों का परिशीलन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि विशेष न्यायाधीश के समक्ष विचारण का सामना करने के लिए लोक सेवक की विद्यमानता आवश्यक है और उसके अभाव में विशेष न्यायालय द्वारा प्राइवेट व्यक्ति का विचारण नहीं किया जा सकता है । वर्तमान मामले में, एकमात्र लोक सेवक की इस मामले के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई है । आरोप विरचित नहीं किया गया है । अभियुक्त सं. 2 और 8 प्राइवेट व्यक्ति हैं जो भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के साथ पठित धारा 409 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए विचारण का सामना कर रहे हैं । उक्त अपराध मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय हैं । इसलिए मामला विधि के अनुसार विचारण करने के लिए मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के न्यायालय में भेजा जाना अपेक्षित है । इसके साथ मैं निम्नलिखित आदेश पारित करता हूं –

आदेश

> प्रकीर्ण आवेदन (प्रदर्श) मंजूर किया जाता है ।
>
> रजिस्ट्रार (एस) को 2001 के विशेष मामला सं. 88 के मामला कागजात मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट को विधि के अनुसार अभियुक्त का विचारण करने के लिए इस आदेश की तारीख से चार सप्ताह की अवधि के भीतर भेजने का निदेश दिया जाता है ।
>
> प्रकीर्ण आवेदन (प्रदर्श 18) का निपटारा किया जाता है ।

हस्ता. 5.2.09
(एस. पी. तावड़े)
केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के मामलों
के लिए विशेष न्यायाधीश

ग्रेटर मुम्बई ।"

14. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उक्त आदेश से व्यथित होकर मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष 2009 का पुनरीक्षण आवेदन सं. 389 फाइल किया । उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि विशेष न्यायाधीश को प्रदत्त अधिकारिता अभियुक्त की मृत्यु होने पर निर्निहित नहीं होती है । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर केवल उसी के विरुद्ध मामले का शमन होता है, शेष अभियुक्तों के विरुद्ध विशेष न्यायाधीश द्वारा कार्यवाही की जा सकती है, चूंकि जब एक बार न्यायालय में अधिकारिता निहित कर दी गई है, तो किसी लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर उससे निर्निहित नहीं किया जा सकता है । परिणामस्वरूप, विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किया गया आदेश अपास्त किया गया और विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, मुम्बई को मामले का विचारण जारी रखने का निदेश दिया गया । इससे व्यथित होकर, अभियुक्त-2 द्वारा 2011 की दांडिक अपील सं. 161 फाइल की गई है ।

15. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से दांडिक अपील सं. 943 में हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महा-सालिसिटर, श्री पी. पी. मल्होत्रा ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) और 4(1) को निर्दिष्ट किया और यह दलील दी कि इस बात को विचार में लिए बिना कि धारा 3(1) में वर्णित अपराध किसी लोक सेवक द्वारा या किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत तौर पर या संयुक्त रूप से कारित किया गया था, विचारण ऐसे विशेष न्यायाधीश द्वारा चलाया जा सकता है जिसे यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अधिकारिता प्रदत्त की गई है । श्री मल्होत्रा ने यह दलील दी कि किसी लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर विशेष न्यायाधीश में एक बार निहित की गई अधिकारिता को निर्निहित नहीं किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, यह भी उल्लेख किया गया कि जब लोक सेवक की मृत्यु हो जाती है, तो केवल उसके विरुद्ध ही आरोप का उपशमन होगा, किंतु न्यायालय की अधिकारिता निर्निहित नहीं होगी । यह कहा गया कि उच्च न्यायालय द्वारा जारी किया गया निदेश कानूनी उपबंधों और विधि के स्थिर सिद्धांतों के प्रतिकूल है और अपास्त किया जाना चाहिए ।

16. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से 2011 की दांडिक अपील सं. 161 में हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री के. राधाकृष्णन् ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों पर विशेष बल दिया

और यह दलील दी कि जब एक बार किसी विशेष न्यायाधीश पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम तथा भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध का विचारण करने की अधिकारिता प्रदत्त की गई है, तो इसे पक्षकारों के कृत्य द्वारा, यहां तक कि किसी लोक सेवक की मृत्यु होने पर भी, निर्निहित नहीं किया जा सकता है ।

17. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल और न्याय-मित्र श्री वी. गिरि ने यह दलील दी कि जब एक बार किसी विशेष न्यायाधीश पर अधिकारिता प्रदत्त की गई है, तो इसे पश्चात्वर्ती घटनाओं द्वारा निर्निहित नहीं किया जा सकता है और लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर केवल उसके विरुद्ध ही आरोप का उपशमन होगा, किंतु विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता निर्निहित नहीं होगी ।

18. प्रत्यर्थियों की ओर से 2008 की दांडिक अपील सं. 943 में हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री कवल नैन ने भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 सपठित धारा 13(1)(घ)(i)(ii) और भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के प्रति विनिर्दिष्ट निर्देश करते हुए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के विधायी पूर्ववृत्त तथा संहिता के अधीन साधारण दांडिक न्यायालय की अधिकारिता का वर्णन किया । विद्वान् काउंसेल ने यह उल्लेख किया कि लोक सेवक के विरुद्ध धारा 13(1)(घ)(i)(ii) के अधीन आरोप का उसकी मृत्यु हो जाने पर उपशमन हो गया है, परिणामस्वरूप, विशेष न्यायाधीश के लिए प्रत्यर्थियों के विरुद्ध किसी अपराध का विचारण करना संभव नहीं होगा, चूंकि दोनों अंतर्निहित रूप से परस्पर संबद्ध हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह उल्लेख किया कि षड्यंत्र का अपराध सिद्ध करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 120-क में उल्लिखित अनुसार दो या अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है ।

19. अपीलार्थी की ओर से 2011 की दांडिक अपील सं. 161 में हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री आर. बसंत ने यह आधार लिया है कि विशेष न्यायाधीश को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(3) के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के साथ पठित धारा 409 के अधीन दंडनीय अपराधों का विचारण करने की अधिकारिता नहीं है, चूंकि अभियुक्तों की सूची में कोई लोक सेवक नहीं है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि यह उपधारणा कर ली जाए कि विशेष न्यायाधीश को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(3) के अधीन अधिकारिता नहीं है, तो भी विशेष न्यायाधीश को यह विनिश्चय

करने का विवेकाधिकार है कि उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 के अधीन विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी अपराध का विचारण करना चाहिए या नहीं । यह उल्लेख किया गया कि धारा 3(क) और (ख) के अधीन विनिर्दिष्ट अपराधों का विचारण करने की विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता केवल भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराधों की बाबत ही नहीं है, अपितु भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(3), जो कि एक समर्थकारी उपबंध है, को ध्यान में रखते हुए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों की बाबत भी है । इसके अतिरिक्त, यह भी उल्लेख किया गया कि जब विशेष न्यायाधीश पर धारा 3(1)(क) और (ख) के अधीन लोक सेवक के साथ-साथ प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध अपराधों का विचारण करते हुए अनन्य अधिकारिता प्रदत्त की गई है, तो विशेष न्यायाधीश को धारा 4(3) के अधीन प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए भी विवेकाधिकार प्रदत्त किया गया है । उपरोक्त विधिक आधार-वाक्यों के आधार पर विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह उल्लेख किया कि प्रस्तुत मामले में चूंकि लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन कोई आरोप विरचित नहीं किए गए हैं और लोक सेवक जीवित नहीं है, इसलिए विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(3) के अधीन प्रयोग किए गए विवेकाधिकार में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए था ।

20. हम, पक्षकारों द्वारा दी गई विरोधी दलीलों की परीक्षा करने से पूर्व, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम को अधिनियमित करने के उद्देश्यों और कारणों पर विचार कर सकते हैं । भारतीय दंड संहिता में रिश्वत और भ्रष्टाचार के अपराध के लिए, यहां तक कि लोक सेवकों के विरुद्ध भी, दंड का उपबंध किया गया है । संसद् ने अपनी प्रज्ञा से यह अवेक्षा की कि दंड संहिता समय की अत्यावश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है और समाज से रिश्वत और भ्रष्टाचार की बुराई का उन्मूलन करने की दृष्टि से एक विशेष विधान पुरःस्थापित करने की आवश्यकता महसूस की गई । परिणामस्वरूप, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 अधिनियमित किया गया, जिसे संथानम समिति की सिफारिशों के आधार पर वर्ष 1964 में संशोधित किया गया । संसद् ने फिर महसूस किया कि भ्रष्टाचार निरोध विधियों को, उनकी व्याप्ति में विस्तार और शास्तियों में वृद्धि करके तथा कार्यवाहियों में तीव्रता लाने के लिए, अधिक प्रभावी बनाया जाना चाहिए और इसलिए

1988 का अधिनियम अधिनियमित किया गया ।

21. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम का अध्याय 2 विशेष न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में है और अध्याय 3 में अपराधों और शास्तियों का उपबंध किया गया है । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 विशेष न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति के संबंध में है, जिसे सुलभ निर्देश के लिए इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "**3. विशेष न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे क्षेत्र या क्षेत्रों के लिए या ऐसे मामलों या मामलों के समूह के लिए, जैसा कि अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, निम्नलिखित अपराधों की सुनवाई के लिए उतने विशेष न्यायाधीश, जो आवश्यक हों, नियुक्त कर सकेगी, अर्थात –
>
> (क) इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध ; और
>
> (ख) खंड (क) में विनिर्दिष्ट अपराधों के कारित करने के लिए षड्यंत्र करने या करने का प्रयत्न या कोई दुष्प्रेरण ।
>
> (2) कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन विशेष न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करने के लिए तब तक अर्हित नहीं होगा, जब तक कि वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन सेशन न्यायाधीश, अपर सेशन न्यायाधीश या सहायक सेशन न्यायाधीश न हो या न रहा हो ।"

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 विशेष न्यायाधीशों द्वारा विचारणीय मामलों का उपबंध करती है । इस धारा को भी नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "4. **विशेष न्यायाधीशों द्वारा विचारणीय मामले** – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, धारा 3 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अपराधों का विचारण केवल विशेष न्यायाधीशों द्वारा किया जाएगा ।
>
> (2) धारा 3 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रत्येक अपराध उस क्षेत्र के विशेष न्यायाधीश द्वारा जिसमें वह अपराध किया गया है या जहां ऐसे क्षेत्र के लिए एक से अधिक विशेष न्यायाधीश हैं वहां उनमें

से ऐसे न्यायाधीश द्वारा जो इस निमित्त केंद्रीय सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाएगा उस मामले के लिए नियुक्त किए गए विशेष न्यायाधीशों द्वारा विचारणीय होगा ।

(3) किसी मामले का विचारण करते समय, विशेष न्यायाधीश धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी ऐसे अपराध का भी विचारण कर सकेगा जिससे अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन उसी विचारण में आरोपित किया जा सकता है ।

(4) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, विशेष न्यायाधीश, यावत्शक्य, अपराध का विचारण दिन-प्रतिदिन के आधार पर करेगा ।"

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 विशेष न्यायाधीश की प्रक्रिया और शक्तियों के संबंध में है । इस धारा की भी कुछ सुसंगतता है और सुलभ निर्देश के लिए नीचे उद्धृत की जाती है :–

"5. **प्रक्रिया और विशेष न्यायाधीश की शक्तियां** – (1) विशेष न्यायाधीश अभियुक्त के विचारणार्थ सुपुर्द किए गए बिना भी अपराधों का संज्ञान कर सकता है, और वह अभियुक्त व्यक्ति के विचारण में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में मजिस्ट्रेटों द्वारा वारंट के मामलों के लिए विहित प्रक्रिया का अनुसरण करेगा ।

(2) विशेष न्यायाधीश किसी ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य प्राप्त करने की दृष्टि से जिसका प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः किसी अपराध से संपृक्त होना या संसर्गी होना अनुमित है, विशेष न्यायाधीश ऐसे व्यक्ति और प्रत्येक अन्य संपृक्त व्यक्ति को, चाहे वह उस अपराध के किए जाने में मुख्य रहा हो या दुष्प्रेरक रहा हो उसके अपराध से संबंधित अपनी जानकारी की सभी परिस्थितियों का पूर्ण और सत्य प्रकटन करने की शर्त पर क्षमा प्रदान कर सकता है और इस प्रकार दी गई क्षमा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 308 की उपधारा (1) से (5) के प्रयोजनों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 307 के अधीन प्रदत्त की गई समझी जाएगी ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) में यथा उपबंधित के सिवाय, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबंध जहां तक वे इस अधिनियम से असंगत नहीं है, विशेष न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाहियों को लागू होंगे; और उक्त उपबंधों के प्रयोजनार्थ, विशेष

न्यायाधीश का न्यायालय सेशन न्यायालय समझा जाएगा और विशेष न्यायधीश के समक्ष अभियोजन का संचालन करने वाला व्यक्ति लोक अभियोजन समझा जाएगा ।

(4) विशिष्टतया, और उपधारा (3) में अंतर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 320 और धारा 475 के उपबंध, जहां तक हो सके, विशेष न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाही को लागू होंगे, और उक्त उपबंधों के प्रयोजनार्थ विशेष न्यायाधीश मजिस्ट्रेट समझा जाएगा ।

(5) विशेष न्यायाधीश उसके द्वारा दोषसिद्ध व्यक्ति को कोई भी दंडादेश दे सकता है जो उस अपराध के लिए जिसके लिए ऐसे व्यक्ति दोषसिद्ध हैं, विधि द्वारा प्राधिकृत है ।

(6) इस अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराधों का विचारण करते समय विशेष न्यायाधीश दंड विधि संशोधन अध्यादेश, 1944 (1944 का अध्यादेश संख्यांक 38) के अधीन जिला न्यायाधीश द्वारा प्रयोक्तव्य सभी सिविल शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करेगा ।"

22. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को ऐसे क्षेत्र या क्षेत्रों के लिए या ऐसे मामलों या मामलों के समूह के लिए, जो शासकीय राजपत्र में जारी की जाने वाली अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाएगा, उतने विशेष न्यायाधीश, जितने आवश्यक हों, नियुक्त करने की शक्ति प्रदत्त करती है । विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1)(क) के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण करने के लिए पर्याप्त रूप से सशक्त है । विशेष न्यायाधीश धारा 3(1)(ख) के अधीन खंड (क) में विनिर्दिष्ट किसी अपराध को कारित करने के लिए किसी षड्यंत्र या प्रयत्न या दुष्प्रेरण का विचारण करने के लिए भी सशक्त है । इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) की परिधि के अंतर्गत निम्नलिखित अपराध आएंगे :–

(1) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध ।

(2) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध को कारित करने के लिए कोई षड्यंत्र ।

(3) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध को कारित करने का कोई प्रयत्न ।

(4) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का कोई दुष्प्रेरण ।

23. अब इस बात की परीक्षा करते हैं कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के खंड (क) में विनिर्दिष्ट कौन-कौन से अपराध हैं, जिनके प्रति भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अध्याय 3 में निर्देश किया जाना है ।

24. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 उन अपराधों को निर्दिष्ट करती है जो लोक सेवक द्वारा अपने पदीय कृत्य की बाबत वैध पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण लेने के संबंध में है । धारा 10 किसी लोक सेवक द्वारा धारा 8 और 9 में परिभाषित अपराधों के दुष्प्रेरण के लिए दंड के संबंध में है । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 11 लोक सेवक के उस अपराध को निर्दिष्ट करती है जो ऐसे लोक सेवक द्वारा की गई कार्यवाही या कारबार में संबद्ध व्यक्ति से प्रतिफल के बिना मूल्यवान चीज अभिप्राप्त की गई है । धारा 7, 10 और 11 के अधीन अपराध केवल लोक सेवक द्वारा कारित किए जा सकते हैं, हालांकि धारा 7 के अधीन अपराध लोक सेवक होने की प्रत्याशा रखते हुए व्यक्ति द्वारा भी कारित किया जा सकता है । धारा 7 या 11 के अधीन अपराध किसी गैर-लोक सेवक द्वारा भी दुष्प्रेरित किया जा सकता है, जिसके लिए दंड भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 12 में विहित किया गया है । धारा 8 लोक सेवक पर भ्रष्ट या विधिविरुद्ध साधनों द्वारा प्रभाव डालने के लिए परितोषण लेने के संबंध में है । धारा 9 लोक सेवक पर वैयक्तिक प्रभाव डालने के लिए परितोषण लेने के संबंध में है । धारा 8 और 9 के अधीन अपराध ऐसे व्यक्ति द्वारा कारित किए जा सकते हैं, जिसका आवश्यक रूप से लोक सेवक होना आवश्यक नहीं है । धारा 8, 9 और 12 के अधीन अपराध किसी लोक सेवक द्वारा या किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा या दोनों के संयोजन से कारित किया जा सकता है । धारा 13 किसी लोक सेवक द्वारा किए गए आपराधिक अवचार के संबंध में है, जोकि अनन्य रूप से लोक सेवक के विरुद्ध आपराधिक अवचार से संबंधित अपराध है । धारा 13 के अधीन अपराध को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 15 के अधीन दंडनीय बनाया गया है । उपरोक्त चर्चा से यह उपदर्शित होता है कि लोक सेवक के साथ-साथ कोई गैर-लोक सेवक व्यक्ति भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम

के अधीन दंडनीय अपराध कारित कर सकता है ।

25. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अध्याय 3 में निर्दिष्ट अपराध की प्रकृति पर निर्भर रहते हुए अनन्य रूप से किसी लोक सेवक के विरुद्ध और किसी गैर-लोक सेवक के विरुद्ध भी अनन्य रूप से कार्यवाही करने की अधिकारिता है । विशेष न्यायाधीश को किसी गैर-लोक सेवक के विरुद्ध ऐसे अपराध, जो अभिकथित रूप से उसके द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अध्याय 3 के अधीन कारित किया गया है, के लिए कार्यवाही करने के लिए किसी लोक सेवक का संबद्ध होना आवश्यक नहीं है । जैसा कि पहले उपदर्शित किया गया है, धारा 8 और 9 के अधीन अपराध किसी गैर-लोक सेवक द्वारा कारित किया जा सकता है और उसके विरुद्ध किसी लोक सेवक के संयोजन के बिना भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन कार्यवाही की जा सकती है ।

उदाहरण के लिए :–

- अधिनियम की धारा 7 में "जो कोई, लोक सेवक होते हुए, या होने की प्रत्याशा करते हुए" .... शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

- अधिनियम की धारा 10 और 11 में "जो कोई, लोक सेवक होते हुए .... " शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

- धारा 13 में "लोक सेवक .... करने वाला कहा जाता है" शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

26. इस प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7, 10, 11 और 13 के अधीन अपराध किसी लोक सेवक द्वारा कारित किए जा सकते हैं, यद्यपि धारा 7 के अधीन अपराध "लोक सेवक होने की प्रत्याशा करते हुए" व्यक्ति द्वारा भी कारित किया जा सकता है । दूसरी ओर :–

- धारा 8 में किन्हीं अन्य विशेषित शब्दों का प्रयोग किए बिना, केवल "जो कोई.... " शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

- इसी प्रकार, धारा 9 और 12 में भी केवल "जो कोई.... " शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

27. इस प्रकार, धारा 8, 9 या 12 के अधीन आने वाला अपराध किसी भी व्यक्ति द्वारा कारित किया जा सकता है, उसका आवश्यक रूप से एक लोक सेवक होना आवश्यक नहीं है । इसलिए, ऐसा कोई अपराध

किसी लोक सेवक द्वारा या किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा या दोनों के संयोजन से कारित किया जा सकता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध या तो किसी लोक सेवक द्वारा या किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा या दोनों के संयोजन से कारित किया जा सकता है और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(1), सपठित इसकी धारा 3(1), की आज्ञा को देखते हुए ऐसे अपराधों का विचारण केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा ही किया जा सकता है ।

उदाहरण के लिए :–

- कोई प्राइवेट व्यक्ति किसी लोक सेवक को रिश्वत की प्रस्थापना करता है तो वह अधिनियम की धारा 12 के अधीन अपराध कारित करता है । इस अपराध का विचारण, इस बात के होते हुए भी कि मामले में केवल प्राइवेट व्यक्ति अभियुक्त है और उस मामले में अभियुक्त के रूप में कोई लोक सेवक नामित नहीं है, केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जा सकता है ।

- कोई प्राइवेट व्यक्ति उक्त अधिनियम की धारा 8 या 9 के अधीन अपराध में एकमात्र अभियुक्त हो सकता है और यह आवश्यक नहीं है कि उसी मामले में अभियुक्त के रूप में किसी लोक सेवक को भी विनिर्दिष्ट रूप से नामित किया जाना चाहिए । इस बात के होते हुए भी कि धारा 8 या धारा 9 के अधीन अपराध में कोई प्राइवेट व्यक्ति एकमात्र अभियुक्त है, उसका विचारण केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जा सकता है ।

28. इस प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की स्कीम से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि यहां तक कि कोई प्राइवेट व्यक्ति, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) में वर्णित अपराध में अंतर्ग्रस्त है, का विचारण भी केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाना आवश्यक है, किसी अन्य न्यायालय द्वारा नहीं । इसके अतिरिक्त, यह आवश्यक नहीं है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन प्रत्येक अपराध में किसी लोक सेवक का आवश्यक रूप से अभियुक्त होना आवश्यक है । दूसरे शब्दों में, विशेष न्यायालय के समक्ष विचारण का सामना करने के लिए किसी लोक सेवक की विद्यमानता आवश्यक नहीं है और मामले के तथ्यों पर निर्भर करते हुए उसके अभाव में भी प्राइवेट व्यक्तियों का भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए विचारण किया जा सकता है ।

29. इसलिए हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह विधि नहीं है कि विशेष न्यायाधीश प्राइवेट व्यक्तियों, जिन्होंने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए हैं, के विरुद्ध कार्यवाही पक्षकारों की सूची में किसी लोक सेवक के संयोजन के साथ ही कर सकता है ।

30. यह उल्लेखनीय है कि धारा 3(1)(क) और (ख) केवल भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराधों के संबंध में हैं न कि भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(1) से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है ।

31. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(1) में एक सर्वोपरि खंड प्रयुक्त किया गया है । इस धारा में यह उपबंध है, "दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के अंतर्विष्ट होते हुए भी, धारा 3 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अपराधों का विचारण केवल विशेष न्यायाधीशों द्वारा किया जाएगा" । परिणामस्वरूप, धारा 3(1) में निर्दिष्ट अपराधों का विचारण साधारण दांडिक न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता है, चूंकि इसकी अधिकारिता विनिर्दिष्ट रूप से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश को प्रदत्त की गई है । धारा 4 की उपधारा (2) में भी इस बात को स्पष्ट किया गया है, जिसमें यह उपबंध है कि धारा 3 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रत्येक अपराध का विचारण उस क्षेत्र के लिए नियुक्त विशेष न्यायाधीश, जिसके भीतर वह अपराध कारित किया गया था, द्वारा किया जाएगा, या यथास्थिति, उस मामले के लिए नियुक्त विशेष न्यायाधीश, या जहां ऐसे क्षेत्र के लिए एक से अधिक विशेष न्यायाधीश हैं, उनमें से ऐसे एक विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा, जैसा कि केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट किया जाए । धारा 3(1) का पठन धारा 4(1) और (2) के साथ संयुक्त रूप से करने पर यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि किसी लोक सेवक या किसी गैर-लोक सेवक द्वारा अकेले या संयुक्त रूप से कारित किए गए धारा 3 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अपराधों का विचारण करने की अधिकारिता केवल विशेष न्यायाधीश को है ।

32. अब हम भष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) की परिधि की परीक्षा कर सकते हैं, जो यह उपदर्शित करती है कि "किसी मामले का विचारण करते हुए", जिससे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1)(क) और (ख) में निर्दिष्ट अपराधों से संबंधित

किसी ऐसे मामले का विचारण करते हुए, जिसके लिए विशेष न्यायाधीश को अनन्य अधिकारिता प्रदत्त की गई है, अभिप्रेत है । विशेष न्यायाधीश अनन्य अधिकारिता का प्रयोग करते समय, अर्थात् भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1)(क) और (ख) के अधीन अपराधों से संबंधित किसी मामले का विचारण करते हुए, धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी ऐसे अपराध का भी विचारण कर सकता है जिससे अभियुक्त को उसी विचारण में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन आरोपित किया जा सकता है । किसी प्रस्तुत मामले में, अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता के अधीन कारित किए गए अपराध के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध के लिए आरोपित किया जा सकता है । विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले आपराधिक मामलों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधान के अधीन आने वाले आरोपों के लिए भी विचारण किया जा सकता है । कोई अपराध करने का षड्यंत्र चाहे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन हो या भारतीय दंड संहिता के अधीन हो, एक अलग-अलग अपराध है और अलग-अलग आरोपित तथा विचारण किया जाना चाहिए । उदाहरण के लिए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने का षड्यंत्र स्वतः ऐसा अपराध है जो केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा विचारण किया जाने वाला अपराध है । **अजय अग्रवाल** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "………कोई अपराध कारित करने का षड्यंत्र स्वतः एक मूल अपराध के रूप में दंडनीय है और षड्यंत्र के अनुसरण में कारित किया गया प्रत्येक व्यष्टिक अपराध अलग और सुभिन्न अपराध होता है, जिसके लिए अलग-अलग अपराधी, षड्यंत्र के अपराध से निरपेक्ष, दंड के लिए दायी होते हैं ……… ।"

33. **शनिचर साहनी** बनाम **बिहार राज्य**[2] और **मोहम्मद आरिफ** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली)**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है ।

---

[1] (1993) 3 एस. सी. सी. 609.

[2] (2009) 7 एस. सी. सी. 198.

[3] (2011) 13 एस. सी. सी. 621.

34. दूसरे शब्दों में, कोई अभियुक्त व्यक्ति, लोक सेवक है या गैर-लोक सेवक, जिसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन अपराध के लिए आरोपित किया गया है, को भारतीय दंड संहिता के अधीन भी आरोपित किया जा सकता है और उस स्थिति में लोक सेवक के विरुद्ध अपराधों तथा किसी गैर-लोक सेवक के विरुद्ध अपराधों का विचारण करने की अधिकारिता विशेष न्यायाधीश को है । **विवेक गुप्ता** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो और एक अन्य**[1] वाले मामले के निर्णय द्वारा भी इस न्यायालय द्वारा विधिक स्थिति को तय किया गया है, जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि लोक सेवक, जिसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के उपबंधों के अधीन अपराध के लिए आरोपित किया गया है, को विशेष न्यायाधीश द्वारा उसी विचारण में भारतीय दंड संहिता के अधीन किसी अपराध के लिए भी आरोपित किया जा सकता है, यदि ऐसा अपराध संहिता की धारा 220 के अधीन अनुध्यात रीति में कारित किया गया है । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यदि किसी गैर-लोक सेवक को, हालांकि केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 420 और धारा 420 के साथ पठित धारा 120-ख के अधीन अपराधों के लिए ही आरोपित किया गया है, विशेष न्यायाधीश द्वारा उसका विचारण भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) की सहायता से किया जा सकता है । हम इस मत से पूरी तरह सहमत हैं ।

35. तथापि, 2011 की दांडिक अपील सं. 161 में हमारा सरोकार ऐसी स्थिति से है जहां लोक सेवक के विरुद्ध, उसके जीवित रहने के समय, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था और न ही धारा 3(1) के अधीन किसी प्राइवेट व्यक्ति के अधीन कोई आरोप विरचित किया गया था । इसलिए विशेष न्यायाधीश के पास न तो किसी लोक सेवक और न ही किसी प्राइवेट व्यक्ति के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन "किसी मामले का विचारण करने" का अवसर था, जिससे कि धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी अपराध का विचारण कर सके, इसका यह अर्थ है कि अपीलार्थी जैसे प्राइवेट व्यक्ति के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन न आने वाले अपराधों का विचारण करने का अवसर नहीं था ।

---

[1] (2003) 8 एस. सी. सी. 628.

36. धारा 3(1) के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन न आने वाले अपराध का विचारण करने के लिए धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है । इसलिए, विशेष न्यायाधीश द्वारा धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी अपराध का विचारण करने के लिए अधिकारिता का प्रयोग करने हेतु विशेष न्यायाधीश द्वारा धारा 3(1) के अधीन किसी मामले का विचारण करना अत्यावश्यक है । इसलिए, विशेष न्यायाधीश द्वारा धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न किसी अपराध का विचारण करने की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए धारा 3(1) के अधीन "किसी मामले का विचारण करते हुए" शब्द एक अधिकारिता का तथ्य है ।

37. जहां तक भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों का संबंध है, साधारण दांडिक न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4(1) के अधीन स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया है, यह अपवर्जन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन न आने वाले अपराधों के संबंध में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) में नहीं है । इसके अतिरिक्त, विशेष न्यायाधीश के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन न आने वाले अपराधों का विचारण करना आबद्धकर नहीं है । अभिव्यक्ति "का भी विचारण कर सकता है" विशेष न्यायाधीश को एक विवेकाधिकार देती है, जो प्रत्येक मामले के तथ्यों तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराधों और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के बीच अंतःसंबंध पर निर्भर करेगा ।

38. विशेष न्यायाधीश से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह प्रत्याशित नहीं है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले किसी अपराध से पूरी तरह से असंबद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों का विचारण करे और ऐसी स्थिति में जब विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन आने वाले किसी अपराध का विचारण नहीं कर रहा है, तो विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों का विचारण करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया गया है, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराध का विचारण करना धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्तियों का प्रयोग

करने के लिए एक अधिकारिता का तथ्य है । इसलिए, विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता को निर्निहित नहीं किया गया है, किंतु अधिकारिता का प्रयोग भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराध का विचारण करने के लिए अधिकारिता के तथ्य पर निर्भर करता है । इसलिए हमारा सरोकार अधिकारिता के प्रयोग से है न कि विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता की विद्यमानता से ।

39. **करोना लिमिटेड** बनाम **पार्वती स्वामीनाथन एंड संस**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिव्यक्ति "अधिकारिता का तथ्य" के अर्थ और अंतर्वस्तु पर विचार किया गया था और यह अवेक्षा की गई कि जहां किसी न्यायालय या अधिकरण की अधिकारिता विशिष्ट वस्तुस्थिति पर निर्भर है, वहां उस वस्तुस्थिति को विवाद्यक के गुणागुण के प्रारंभिक, या सामूहिक रूप में वर्णित किया जा सकता है । इस प्रकार, अधिकारिता के तथ्य की विद्यमानता किसी न्यायालय द्वारा अधिकारिता को ग्रहण करने की अत्यावश्यक या पूर्ववर्ती शर्त है । **रमेश चन्द्र सांकला** बनाम **विक्रम सीमेंट और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिकारिता के तथ्य की गलती से विद्यमानता मानकर कोई न्यायालय अपने पर उस अधिकारिता को प्रदत्त नहीं कर सकता है जो अन्यथा उसके पास नहीं है ।

40. हमने पहले ही यह उपदर्शित किया है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों का विचारण करने के लिए अधिकारिता का तथ्य भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन "किसी मामले का विचारण करते हुए" शब्द हैं । जैसी कि इस न्यायालय द्वारा **रती लाल भांजी मिथानी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामले में अवेक्षा की गई है, किसी वारंट मामले का विचारण आरोप विरचित होने के साथ आरंभ होता है । इससे पूर्व की कार्यवाहियां केवल जांच होती हैं । न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "एक बार आरोप विरचित हो जाने पर मजिस्ट्रेट को धारा 227 अथवा संहिता के किसी अन्य उपबंध के अधीन उस आरोप को रद्द करने के लिए और धारा 253 के प्रक्रम पर कार्यवाहियों को उलटने

---

[1] (2007) 8 एस. सी. सी. 559.

[2] (2008) 14 एस. सी. सी. 58.

[3] [1979] 4 उम. नि. प. 25 = (1979) 2 एस. सी. सी. 179.

की शक्ति नहीं है और वह अभियुक्त को उन्मोचित नहीं कर सकता है । किसी वारंट मामले में विचारण, आरोप विरचित करने के साथ आरंभ होता है । इससे पूर्व कार्यवाहियां जांच मात्र हैं । आरोपों के विरचित करने के पश्चात् यदि अभियुक्त दोषी होने का अभिवाक् नहीं करता है तो मजिस्ट्रेट के लिए धारा 254 से 258 तक में उपबंधित रीति से मामले की तर्कसंगत समाप्ति तक विचारण में आगे कार्यवाहियां करने के लिए अपेक्षित है । किसी वारंट मामले में एक बार आरोप विरचित हो जाने पर, चाहे वह परिवाद पर या पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित किया गया हो, मजिस्ट्रेट के पास अभियुक्त को उन्मोचित करने की संहिता के अधीन कोई शक्ति नहीं है और तत्पश्चात् वह अभियुक्त को दोषमुक्त या दोषसिद्ध कर सकता है जब तक कि वह 1882 की संहिता की धारा 349 और 562 (जो 1973 की संहिता की धारा 325 और 360 के समान हैं) के अधीन कार्यवाही करने का विनिश्चय नहीं कर लेता है ।"

41. अब हम इस बात की परीक्षा कर सकते हैं कि क्या इन दोनों अपीलों में उपरोक्त कसौटी का समाधान हो गया है । पहले हम 2008 की दांडिक अपील सं. 943 पर विचार कर सकते हैं । जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया गया है, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने इस अपील में अभियुक्त-1, जो कि लोक सेवक है, के विरुद्ध और गैर लोक सेवकों के विरुद्ध अपराधों के लिए तारीख 1 नवम्बर, 2001 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया था । विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने तारीख 25 मार्च, 2003 को अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 471 और 420 के साथ पठित धारा 120-ख के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के अधीन और लोक सेवकों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467 और 471 के अधीन मूल अपराधों तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के अधीन मूल अपराधों के लिए भी आरोप विरचित किए । अतः, विशेष न्यायाधीश द्वारा तारीख 25 मार्च, 2003 को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराधों तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों की बाबत अभियोजन पक्ष और प्रतिरक्षा पक्ष के काउंसेलों को सुनने के पश्चात् लोक सेवकों तथा गैर-लोक सेवकों के विरुद्ध आरोप विरचित किए । जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया गया है, धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन विशेष न्यायाधीश जब किसी मामले का विचारण कर रहा है, धारा 3 में विनिर्दिष्ट अपराध से भिन्न अन्य अपराध का भी विचारण कर सकता है और उसी

विचारण में आरोपित कर सकता है । वर्तमान मामले में विशेष न्यायाधीश ने लोक सेवक तथा गैर-लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 471 और 420 के साथ पठित धारा 120-ख के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए हैं और इसलिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अधिकारिता के तथ्य, अर्थात् "किसी मामले का विचारण करते हुए," का समाधान किया गया है ।

42. विशेष न्यायाधीश ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए आरोप विरचित करने के पश्चात् मामले को अभियोजन साक्षियों की परीक्षा के लिए सूचीबद्ध किया और उसके पश्चात् एकमात्र लोक सेवक की तारीख 2 जून, 2003 को मृत्यु हो गई । प्रस्तुत मामले में, विशेष न्यायाधीश ने इससे पूर्व भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन भी अपनी शक्तियों का प्रयोग किया था और इसलिए उसे गैर-लोक सेवक के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए अधिकारिता से निर्निहित नहीं किया जा सकता है, भले ही आरोप विरचित होने के पश्चात् लोक सेवक की मृत्यु हो गई थी । लोक सेवक की मृत्यु हो जाने पर, केवल उसके विरुद्ध ही आरोप का उपशमन हुआ है और चूंकि विशेष न्यायाधीश ने पहले ही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया था, इसलिए वह अधिकारिता एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु के कारण निर्निहित नहीं हो सकती है ।

43. हम ऐसी स्थिति की कल्पना कर सकते हैं जहां किसी लोक सेवक की विचारण के अंतिम भाग में मृत्यु हो जाती है और उस समय तक कई साक्षियों की परीक्षा की जा चुकी हो और यह अभिनिर्धारित किया जाए कि एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु के कारण संपूर्ण विचारण दूषित हो जाएगा, इससे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, जो भ्रष्टाचार के प्रभावी रोकथाम और भ्रष्टाचार तथा रिश्वत से संबंधित मामलों को शीघ्रता से निपटाने के लिए अधिनियमित किया गया है, का संपूर्ण उद्देश्य और प्रयोजन निष्फल हो जाएगा । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम का प्रयोजन कार्यवाहियों में तीव्रता लाने के लिए भ्रष्टाचार निरोधक विधियों को अधिक प्रभावी बनाना, मामलों का दिन-प्रतिदिन विचारण करने के लिए उपबंध करना, रोकादेश मंजूर के संबंध में पारदर्शिता और अंतर्वर्ती आदेशों पर पुनरीक्षण की शक्तियों के प्रयोग का भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में

उपबंध किया गया है । परिणामस्वरूप, जब एक बार विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाले अपराधों के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्ति का प्रयोग किया गया है, तब केवल यह तथ्य कि धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के पश्चात् एकमात्र लोक सेवक की मृत्यु हो गई है, इस बात से विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता निर्निहित नहीं होगी या उसके समक्ष की कार्यवाहियां दूषित नहीं होंगी ।

44. अतः, हम 2008 की दांडिक अपील सं. 943 मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त करते हैं तथा विशेष न्यायाधीश को मामलों का विचारण छह मास की अवधि में पूर्ण करने का निदेश देते हैं ।

45. अब हम 2001 की दांडिक अपील सं. 161 की परीक्षा कर सकते हैं, जिसमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 2 जुलाई, 1996 को दर्ज की गई थी और विशेष न्यायाधीश के समक्ष भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) और 13(1) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख और 420 के अधीन आरोप पत्र तारीख 14 सितम्बर, 2001 को फाइल किया गया था । विशेष न्यायाधीश को आरोप पत्र भेजने से पूर्व ही अभियुक्त 9 और 10 की मृत्यु हो गई थी । एकमात्र लोक सेवक के विरुद्ध भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आरोप विरचित नहीं किए जा सके थे, चूंकि उसकी तारीख 18 फरवरी, 2005 को मृत्यु हो गई थी । विशेष न्यायाधीश ने गैर-लोक सेवकों के विरुद्ध भी कोई आरोप विरचित नहीं किया । जैसा कि पहले उपदर्शित किया गया है, विशेष न्यायाधीश धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन न आने वाले अपराधों के लिए केवल तभी विचारण कर सकता है जब भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध से संबंधित "किसी मामले का विचारण कर रहा हो" । प्रस्तुत मामले में, किसी भी गैर-लोक सेवक द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन आने वाला ऐसा अपराध कारित नहीं किया गया है जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत आ सके । परिणामस्वरूप, विशेष न्यायाधीश के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों से संबंधित किसी मामले का विचारण करने का कोई अवसर नहीं था । जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया गया है, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए किसी लोक

सेवक या गैर-लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन किसी मामले का विचारण किया जाना अत्यावश्यक है । प्रस्तुत मामले में, चूंकि किसी भी गैर-लोक सेवक द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध कारित नहीं किया गया है और लोक सेवक, जब वह जीवित था, के विरुद्ध कोई आरोप विरचित नहीं किए गए हैं, इसलिए विशेष न्यायाधीश के लिए उनमें से किसी के विरुद्ध भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन किसी मामले का विचारण करने का कोई अवसर नहीं था, चूंकि लोक सेवक की मृत्यु से पूर्व कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था । जहां तक इस अपील का संबंध है, अधिकारिता का तथ्य, जैसी कि पहले ही ऊपर चर्चा की गई है, विद्यमान नहीं है जिससे कि विशेष न्यायाधीश द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम से इतर अपराधों के लिए अधिकारिता का प्रयोग किया जा सके ।

46. परिणामस्वरूप, हम विशेष न्यायाधीश, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, बृहत्तर मुम्बई द्वारा 2001 के विशेष मामला सं. 88 के मामला कागजातों को मामले का विधि के अनुसार विचारण करने के लिए मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अग्रेषित करने के लिए अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई गलती नहीं पाते हैं । परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश अपास्त किया जाता है । सक्षम न्यायालय, जिसे 2001 का विशेष मामला सं. 88 अग्रेषित किया गया है, को निदेशित किया जाता है कि मामले का छह माह की अवधि में निपटारा करे । तद्नुसार, 2011 की दांडिक अपील सं. 161 मंजूर की जाती है ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

जस.

संसद् के अधिनियम

पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, 1960

(1960 का अधिनियम संख्यांक 59)

[26 दिसम्बर, 1960]

पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या यातना पहुंचाने के निवारणार्थ और उस प्रयोजन के लिए पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण संबंधी विधि का संशोधन करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के ग्यारहवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :–

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, 1960 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे, और विभिन्न राज्यों के लिए तथा इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के लिए विभिन्न तारीखें[1] नियत की जा

---

[1] 1 अप्रैल, 1961 : पंजाब राज्य और अंडमान और निकोबार द्वीप संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 823, तारीख 1 अप्रैल, 1961 भारत का राजपत्र, 1961, भाग 2 खंड 3 (ii), पृ. 806 ।

1 सितम्बर, 1961 : असम, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, केरल, मद्रास, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल राज्यों तथा दिल्ली, मणिपुर और त्रिपुरा संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में अध्याय I आध्य II के लिए देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 2061, तारीख 25 अगस्त, 1961, भारत का राजपत्र, 1961, भाग 2, खंड 3 (ii), पृ. 2154 ।

2 अक्तूबर, 1961 : हिमाचल प्रदेश संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में अध्याय I और II के लिए देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 2286, तारीख 15 सितम्बर, 1961, भारत का राजपत्र, भाग 2, खंड 3 (ii) पृ. 2397 ।

26 जनवरी, 1962 : राजस्थान राज्य के संबंध में अध्याय I और II के लिए देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 21, तारीख 28 दिसम्बर, 1961, भारत का राजपत्र, भाग

2, खंड 3(ii), पृ. 11 ।

सकती हैं ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "पशु" से अभिप्रेत है वह जीवित प्राणी जो मनुष्य से भिन्न है ;

[1][(ख) "बोर्ड" से धारा 4 के अधीन स्थापित और धारा 5क के अधीन समय-समय पर यथापुनर्गठित बोर्ड अभिप्रेत है ;]

(ग) "बंधुआ पशु" से अभिप्रेत है कोई पशु (जो पालतू पशु न हो) जो चाहे स्थायी रूप से अथवा अस्थायी रूप से बंधुआ हालत में हो या परिरोध में हो, या जिसे बंधुआ हालत अथवा परिरोध में से उसके निकल भागने में रुकावट डालने या निकल भागने की रोकथाम करने के प्रयोजनार्थ कोई साधित्र या यंत्र लगाकर रखा गया हो, या जिसे बांधकर रखा गया हो, या जो विकलांग कर दिया गया हो या विकलांग हो गया प्रतीत होता हो ;

(घ) "पालतू पशु" से ऐसा पशु अभिप्रेत है जो सधाया हुआ है ;

---

15 जुलाई, 1963 : असम, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, केरल, मद्रास, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल राज्यों तथा दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा संघ राज्यक्षेत्रों के संबंध में अध्याय 4 के लिए देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 2000, तारीख 11 जुलाई, 1963, भारत का राजपत्र, भाग 2, खंड 3(ii), पृ. 2242 ।

20 नवम्बर, 1963 : असम, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, केरल, मद्रास, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्यों तथा दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा संघ राज्यक्षेत्रों के संबंध में अध्याय III और VI के लिए देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 3160, तारीख 29 अक्तूबर, 1963, भारत का राजपत्र, भाग 2, खंड 3(ii), पृ. 3098 ।

24 मई, 1977 : देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 1902, तारीख 24.5.1977, इस अधिनियम के अध्याय 5 के उपबंध, सभी राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों (जम्मू-कश्मीर के सिवाय) पर, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार किया गया है, प्रवृत्त होंगे ।

इस अधिनियम का विस्तार –

गोवा, दमण और दीव पर 1963 के विनियम सं. 11 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा, तथा पांडिचेरी में 1963 के विनियम सं. 7 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा (1.10.1963 से) किया गया ;

यह अधिनियम दादरा और नागर हवेली पर 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1.7.1965 से) तथा सिक्किम राज्य पर (1.3.1993 से) प्रवृत्त हुआ ।

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 2 द्वारा खंड (ख) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

या जो मनुष्य के काम आने के लिए किसी प्रयोजन की पूर्ति के निमित्त पर्याप्त रूप से सधाया गया है या सधाया जा रहा है, या जो, भले ही वह न तो इस प्रकार सधाया गया हो और न सधाया जा रहा हो और न ही उसका इस प्रकार सधाया जाना आशयित हो, वस्तुत: पूर्णत: या अंशत: सधाया हुआ है या हो गया है ;

(ङ) "स्थानीय प्राधिकारी" से नगरपालिका समिति, जिला बोर्ड या अन्य ऐसा प्राधिकारी अभिप्रेत है, जिसमें किसी विनिर्दिष्ट स्थानीय क्षेत्र में किन्हीं मामलों का नियंत्रण और प्रशासन विधि द्वारा तत्समय निहित है ;

(च) "स्वामी" के अंतर्गत, जब कि उसका प्रयोग किसी पशु के प्रति निर्देश से किया गया हो, न केवल स्वामी किन्तु कोई ऐसा अन्य व्यक्ति भी है जिसके कब्जे में या जिसकी अभिरक्षा में वह पशु, चाहे स्वामी की सहमति से या उसके बिना, तत्समय हो ;

(छ) "फूका" या "डूम देव" के अंतर्गत दुधारू पशु की योनि में वायु या किसी अन्य पदार्थ को इस उद्देश्य से प्रविष्ट करने की प्रक्रिया है जिससे कि उस पशु से दूध का कोई स्राव निकाला जा सके ;

(ज) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(झ) "मार्ग" के अंतर्गत कोई ऐसा रास्ता, सड़क, गली, चौक, आंगन, वीथी, पथ या खुला स्थान आता है, चाहे वह आम रास्ता हो या न हो, जिस तक जनता की पहुंच हो ।

3. **उन व्यक्तियों के कर्तव्य जिनके भारसाधन में पशु है** – ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का, जिसकी देखरेख या भारसाधन में कोई पशु है, यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसे पशु का कल्याण सुनिश्चित करने तथा उसे अनावश्यक पीड़ा या यातना पहुंचाने का निवारण करने के लिए सभी समुचित उपाय करें ।

अध्याय 2

[1][भारतीय पशु-कल्याण बोर्ड]

4. **कल्याण बोर्ड की स्थापना** – (1) साधारणतया पशु-कल्याण के

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 3 द्वारा शीर्षक के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

संवर्धन के लिए तथा विशिष्टतया अनावश्यक पीड़ा या यातना से पशुओं की संरक्षा करने के प्रयोजनार्थ केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् यथाशक्यशीघ्र, एक बोर्ड की स्थापना करेगी, जो [1][भारतीय पशु-कल्याण बोर्ड] कहलाएगा ।

(2) बोर्ड शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा वाला एक निगमित निकाय होगा और उसे, इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन करने की शक्ति होगी और जो अपने नाम से वाद ला सकेगा तथा उस पर वाद लाया जा सकेगा ।

(5) **बोर्ड का गठन** – (1) बोर्ड में निम्नलिखित व्यक्ति होंगे, अर्थात् :–

(क) भारत सरकार का वन महानिरीक्षक, पदेन ;

(ख) भारत सरकार का पशुपालन आयुक्त, पदेन ;

[2][(खक) दो व्यक्ति, जो क्रमशः गृह और शिक्षा से संबंधित केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों का प्रतिनिधित्व करेंगे, केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाएंगे ;

(खख) एक व्यक्ति, जो भारतीय वन्य प्राणी, बोर्ड का प्रतिनिधित्व करेगा, केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा ;

(खग) तीन व्यक्ति, जो केन्द्रीय सरकार की राय में पशु-कल्याण कार्य में सक्रिय रूप से लगे हैं या लगे रहे हैं और सुविख्यात लोकोपकारक हैं, केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ;]

(ग) एक व्यक्ति, जो पशु चिकित्सा व्यवसायियों के किसी ऐसे संगम का प्रतिनिधित्व करेगा, जिसका केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व होना चाहिए और वह व्यक्ति विहित रीति से उस संगम द्वारा निर्वाचित किया जाएगा ।

(घ) दो व्यक्ति, जो आधुनिक और देशी चिकित्सा प्रणाली के व्यवसायियों का प्रतिनिधित्व करेंगे, केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 4 द्वारा ''पशु-कल्याण बोर्ड'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 5 द्वारा अंतःस्थापित ।

किए जाएंगे ;

[1][(ङ) एक-एक व्यक्ति, जो ऐसे दो नगर निगमों में से, जिनका केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व होना चाहिए ; प्रत्येक का प्रतिनिधिनित्व करेगा, विहित रीति से उक्त निगमों में से प्रत्येक के द्वारा निर्वाचित किए जाएंगे ;

(च) एक-एक व्यक्ति, जो उन तीनों संगठनों में से प्रत्येक का, जो पशु-कल्याण कार्यों में सक्रिय रूप से रुचि रखने वाले हों और जिनका, केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व होना चाहिए, प्रतिनिधित्व करेगा ; और ये व्यक्ति विहित रीति से उक्त प्रत्येक संगठन द्वारा चुने जाएंगे ;

(छ) एक-एक व्यक्ति, जो उन तीनों सोसाइटियों में से प्रत्येक का, जो पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण करने के कार्य से संबंधित हों और जिनका केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व होना चाहिए ; प्रतिनिधित्व करेगा ; और ये व्यक्ति विहित रीति से चुने जाएंगे ;

(ज) तीन व्यक्ति जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ;

(झ) छह संसद् सदस्य, जिनमें से चार लोक सभा द्वारा निर्वाचित किए जाएंगे और दो राज्य सभा द्वारा निर्वाचित किए जाएंगे ।

(2) उपधारा (1) के खंड (क) [2][या खंड (ख) या खंड (खक) या खंड (खख)] में निर्दिष्ट व्यक्तियों में से कोई भी व्यक्ति बोर्ड की किसी भी बैठक में हाजिर होने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को प्रतिनियुक्त कर सकेगा ।

[3][(3) केन्द्रीय सरकार बोर्ड के सदस्यों में से एक सदस्य को बोर्ड का अध्यक्ष और बोर्ड के एक अन्य सदस्य को बोर्ड का उपाध्यक्ष नामनिर्दिष्ट करेगी ।]

[4][**5क. बोर्ड का पुनर्गठन** – (1) केन्द्रीय सरकार, इस दृष्टि से कि बोर्ड का अध्यक्ष और अन्य सदस्य एक ही तारीख तक पद धारण करें और

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 5 द्वारा खंड (ङ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 5 द्वारा "या खंड (ख)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 5 द्वारा उपधारा (3) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 6 द्वारा अंतःस्थापित ।

उनकी पदावधियां उसी तारीख को समाप्त हों, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बोर्ड का पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण (संशोधन) अधिनियम, 1982 के प्रवृत्त होने के पश्चात्, यथाशक्यशीघ्र, पुनर्गठन कर सकेगी ।]

(2) उपधारा (1) के अधीन पुनर्गठित बोर्ड, उपधारा (1) के अधीन अपने पुनर्गठन की तारीख से प्रत्येक तीसरे वर्ष के अवसान पर समय-समय पर पुनर्गठित किया जाएगा ।

(3) उपधारा (1) के अधीन पुनर्गठित बोर्ड के सदस्यों में वे सभी व्यक्ति सम्मिलित किए जाएंगे जो उस तारीख के ठीक पहले, जिसको ऐसा पुनर्गठन प्रभावशील होना है, बोर्ड के सदस्य हैं, किन्तु ऐसे व्यक्ति उस अवधि के, अनवसित भाग के लिए ही जिसके लिए वे, यदि ऐसा पुनर्गठन न किया गया होता तो, पद धारण करते, पद धारण करेंगे और उनके बोर्ड के सदस्य न रह जाने के परिणामस्वरूप पैदा होने वाली रिक्तियां इस प्रकार पुनर्गठित बोर्ड की अवशिष्ट कालावधि के लिए आकस्मिक रिक्तियों के रूप में भरी जाएंगी :

परन्तु इस उपधारा की कोई भी बात किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में लागू नहीं होगी जो पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण (संशोधन) अधिनियम, 1982 की धारा 5 के खंड (क) के उपखंड (ii) द्वारा धारा 5 की उपधारा (1) में किए गए संशोधन के फलस्वरूप बोर्ड का सदस्य नहीं रह जाता है ।]

[1][**6. बोर्ड के सदस्यों का कार्यकाल और उनकी सेवा की शर्तें** – (1) वह अवधि जिसके लिए बोर्ड की धारा 5क के अधीन पुनर्गठन किया जा सकेगा, पुनर्गठन की तारीख से तीन वर्ष होगी और इस प्रकार पुनर्गठित बोर्ड का अध्यक्ष और अन्य सदस्य उस अवधि के अवसान तक पद धारण करेंगे जिसके लिए बोर्ड का इस प्रकार पुनर्गठन किया गया है ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, –

(क) पदेन सदस्य की पदावधि तब तक बनी रहेगी जब तक यह उस पद को धारण किए रहता है जिसके आधार पर वह ऐसा सदस्य है ;

(ख) व्यक्तियों के किसी निकाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए धारा 5 के खंड (ग), खंड (ङ), खंड (च), खंड (छ), खंड (ज) या

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 7 द्वारा धारा 6 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

खंड (झ) के अधीन निर्वाचित या चुने गए सदस्य की पदावधि जैसे ही वह सदस्य उस निकाय का, जिसने उसे निर्वाचित किया था या जिसकी बाबत वह चुना गया था, सदस्य नहीं रह जाता है, समाप्त हो जाएगा ;

(ग) किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए नियुक्त, नामनिर्दिष्ट, निर्वाचित या चुने गए सदस्य की पदावधि उस सदस्य की अवशिष्ट पदावधि के लिए होगी जिसके स्थान पर वह नियुक्त, नामनिर्दिष्ट या निर्वाचित किया गया है या चुना गया है ;

(घ) केन्द्रीय सरकार किसी सदस्य को, उसके प्रस्थापित हटाए जाने के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने का उसे उचित अवसर देने के पश्चात् उन कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, किसी भी समय हटा सकेगी और ऐसे हटाए जाने से हुई कोई रिक्ति खंड (ग) के प्रयोजन के लिए आकस्मिक रिक्ति मानी जाएगी ।

(3) बोर्ड के सदस्य ऐसे भत्ते, यदि कोई हों, पाएंगे जिनके लिए बोर्ड केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन के अधीन रहते हुए, इस निमित्त बनाए गए विनियमों द्वारा, उपबंध करें ।

(4) बोर्ड द्वारा किए गए किसी भी कार्य या कार्यवाही को केवल इसी कारण प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि बोर्ड में कोई रिक्ति थी अथवा उसके गठन में कोई त्रुटि थी तथा विशिष्टतया और पूर्वगामी भाग की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उस अवधि की समाप्ति, जिसके लिए बोर्ड की धारा 5क के अधीन पुनर्गठन किया गया है और उस धारा के अधीन उसके आगे पुनर्गठन के बीच की कालावधि के दौरान, बोर्ड के पदेन सदस्य बोर्ड की सभी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करेंगे ।]

7. **बोर्ड के सचिव तथा अन्य कर्मचारी** – (1) केन्द्रीय सरकार [1]*** बोर्ड का सचिव नियुक्त करेगी ।

(2) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, बोर्ड उतने अन्य अधिकारी और कर्मचारी नियुक्त कर सकेगा जितने उसकी शक्तियों का प्रयोग और उसके कृत्यों का निर्वहन

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 8 द्वारा "अपने अधिकारियों में से एक को" शब्दों का लोप किया गया ।

करने के लिए आवश्यक हों और ऐसे अधिकारियों और कर्मचारियों की सेवा के निबन्धनों और शर्तों को, केन्द्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन से, अपने द्वारा बनाए गए विनियमों द्वारा, अवधारित कर सकेगा ।

8. **बोर्ड की निधियां** – बोर्ड की निधियों में वे अनुदान जो सरकार द्वारा उसे समय-समय पर दिए गए हों और किसी स्थानीय प्राधिकारी या अन्य व्यक्ति द्वारा उसे दिए गए अंशदान, संदान, अभिदान, वसीयत-संपत्ति, दान और इसी प्रकार की प्राप्तियां सम्मिलित होंगी ।

9. **बोर्ड के कृत्य** – बोर्ड के निम्नलिखित कृत्य होंगे –

(क) पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण करने के लिए भारत में प्रवृत्त विधि का बराबर अध्ययन करते रहना और ऐसी किसी विधि में समय-समय पर किए जाने वाले संशोधनों के संबंध में सरकार को सलाह देना ;

(ख) इस अधिनियम के अधीन नियम बनाने के संबंध में केन्द्रीय सरकार को इस दृष्टि से सलाह देना कि पशुओं के प्रति अनावश्यक पीड़ा या यातना का साधारणतया और, विशिष्टतया तब जब वे एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाए जा रहे हों या जब उनका उपयोग करतब दिखाने वाले पशुओं के रूप में किया जा रहा हो या जब वे बंधुआ हालत में या परिरोध में रखे गए हों, निवारण किया जा सके ;

(ग) सरकार को या किसी स्थानीय प्राधिकारी या अन्य व्यक्ति को यह सलाह देना कि यानों के डिजाइनों का सुधार इस प्रकार किया जाए जिससे कि भार ढोने वाले पशुओं पर बोझ कम किया जा सके ;

(घ) सायबानों, चरहियों और वैसी ही चीजों के निर्माण को प्रोत्साहन देकर अथवा उनकी व्यवस्था करके तथा पशुओं के लिए पशु चिकित्सा सहायता की व्यवस्था करके [1][पशुओं की बेहतरी] के लिए ऐसे सभी उपाय करना जिन्हें बोर्ड ठीक समझे ;

(ङ) वधशालाओं के डिजाइन तैयार करने अथवा उन्हें बनाए रखने के अथवा पशु के इस प्रकार वध के संबंध में, कि पशुओं के प्रति वध-पूर्व प्रक्रमों में अनावश्यक शारीरिक या मानसिक पीड़ा या

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

यातना को, जहां तक संभव हो समाप्त किया जा सके और पशुओं का, जहां कहीं आवश्यक हो, यथासंभव दयालु ढंग से वध किया जा सके, सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी अथवा किसी अन्य व्यक्ति को सलाह देना ;

(च) यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसे पशुओं को, जिनकी जरूरत नहीं रह गई है, या तो तत्क्षण, या पीड़ा अथवा यातना के प्रति उन्हें संज्ञाहीन बनाकर, स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा, जब कभी वैसा करना आवश्यक हो, नष्ट कर दिया जाए, सभी ऐसे उपाय करना जिन्हें बोर्ड उचित समझे ;

(छ) [1][पिंजरापोलों, बचावगृहों, पशुआश्रयों, पशुवनों और वैसे ही अन्य स्थानों के, जहां पशु और पक्षी बूढ़े और बेकार हो जाने पर, या जब उन्हें संरक्षण की आवश्यकता हो, तब शरण पा सकें, निर्माण या स्थापना को] वित्तीय सहायता प्रदान करके अथवा अन्यथा, प्रोत्साहन देना ;

(ज) पशुओं के प्रति अनावश्यक पीड़ा या यातना के निवारण के प्रयोजनार्थ अथवा पशु-पक्षियों की संरक्षा के लिए स्थापित संगमों या निकायों के साथ सहयोग करना और उनके कार्य का समन्वय करना ;

(झ) किसी स्थानीय क्षेत्र में कार्य कर रहे पशु कल्याण संगठनों को वित्तीय तथा अन्य सहायता देना, अथवा किसी स्थानीय क्षेत्र में किन्हीं ऐसे पशु कल्याण संगठनों के निर्माण को प्रोत्साहन देना जो बोर्ड के सामान्य अधीक्षण और मार्गदर्शन में कार्य करेंगे ;

(ञ) सरकार को चिकित्सीय देखरेख और परिचर्या की उन बातों के बारे में सलाह देना जिनकी व्यवस्था पशु अस्पतालों में की जाए और जब कभी बोर्ड पशु अस्पतालों को वित्तीय तथा अन्य सहायता देना आवश्यक समझे तब ऐसी सहायता देना ;

(ट) पशुओं के प्रति दयालुतापूर्ण बर्ताव करने की शिक्षा देना और पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या यातना पहुंचाने के विरुद्ध, तथा व्याख्यानों, पुस्तकों, पोस्टरों, चलचित्र प्रदर्शनों तथा अन्य वैसी ही बातों से पशु-कल्याण कार्यों को बढ़ावा देने के लिए, लोकमत तैयार करना ;

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ठ) पशु-कल्याण कार्यों अथवा पशुओं के प्रति अनावश्यक पीड़ा या यातना के निवारण से संबंधित बातों के बारे में सरकार को सलाह देना ।

10. **विनियम बनाने की बोर्ड की शक्ति** – बोर्ड अपने कार्यों को संपन्न करने तथा अपने कृत्यों को क्रियान्वित करने के लिए, केन्द्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन के अधीन रहते हुए, ऐसे विनियम बना सकेगा जैसे वह ठीक समझे ।

अध्याय 3

साधारण पशुओं के प्रति क्रूरता

11. **पशुओं के प्रति क्रूरता का व्यवहार** – (1) यदि कोई व्यक्ति –

(क) किसी पशु को पीटेगा, ठोकर मारेगा, उस पर अत्यधिक सवारी करेगा, अत्यधिक हांकेगा, उस पर अत्यधिक बोझा लादेगा, उसे यंत्रणा देगा, या अन्यथा उसके साथ ऐसे बर्ताव करेगा या करवाएगा जिससे उसे अनावश्यक पीड़ा या यातना होती है, या स्वामी होते हुए किसी पशु के प्रति इस प्रकार का बर्ताव करने देगा ; अथवा

(ख) [1][किसी कार्य या श्रम में या किसी अन्य प्रयोजन के लिए किसी ऐसे पशु को लगाएगा जो अपनी आयु या किसी रोग,] अंग-शैथिल्य, घाव, फोड़े के कारण अथवा किसी अन्य कारण से इस प्रकार लगाए जाने के अनुपयुक्त है, या स्वामी होते हुए ऐसे किसी अनुपयुक्त पशु को इस प्रकार लगाए जाने देगा ; अथवा

(ग) [1][किसी पशु को] जानबूझकर तथा अनुचित रूप से कोई क्षतिकारक औषधि या क्षतिकारक पदार्थ देगा या [1][किसी पशु को] जानबूझकर और अनुचित रूप से ऐसी कोई औषधि या पदार्थ, खिलवाएगा या खिलवाने का प्रयास करेगा ; अथवा

(घ) किसी पशु को किसी यान में, या यान पर, या अन्यथा ऐसी रीति से या ऐसी स्थिति में प्रवहित करेगा या ले जाएगा जिससे कि उसे अनावश्यक पीड़ा या यातना पहुंचती है ; अथवा

(ङ) किसी पशु को किसी ऐसे पिंजरे या अन्य पात्र में रखेगा या परिरुद्ध करेगा, जिसकी ऊंचाई, लम्बाई और चौड़ाई इतनी पर्याप्त

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

न हो कि पशु को उसमें हिल-डुल सकने का उचित स्थान प्राप्त हो सके ; अथवा

(च) किसी पशु को अनुचित रूप से छोटी या अनुचित रूप से भारी किसी जंजीर या रस्सी में किसी अनुचित अवधि तक के लिए बांधकर रखेगा ; अथवा

(छ) स्वामी होते हुए, किसी ऐसे कुत्ते को, जो अभ्यासतः जंजीर में बंधा रहता है या बन्द रखा जाता है, उचित रूप से व्यायाम करने या करवाने की उपेक्षा करेगा ; अथवा

(ज) [1][किसी पशु का] स्वामी होते हुए ऐसे पशु को पर्याप्त खाना, जल या आश्रय नहीं देगा ; अथवा

(झ) उचित कारण के बिना, किसी पशु को ऐसी परिस्थिति में परित्यक्त कर देगा जिससे यह संभाव्य हो कि उसे भुखमरी या प्यास के कारण पीड़ा पहुंचे ; अथवा

(ञ) किसी ऐसे पशु को, जिसका वह स्वामी है, जानबूझकर किसी मार्ग में छुट्टा घूमने देगा जब कि वह पशु किसी सांसर्गिक या संक्रामक रोग से ग्रस्त हो, या किसी रोगग्रस्त या विकलांग पशु को, जिसका वह स्वामी है, उचित कारण के बिना, किसी मार्ग में मर जाने देगा ; अथवा

(ट) किसी ऐसे पशु को बिक्री के लिए प्रस्तुत करेगा, या बिना किसी उचित कारण के अपने कब्जे में रखेगा, जो अंग विच्छेद, भुखमरी, प्यास, अतिभरण या अन्य दुर्व्यवहार के कारण पीड़ाग्रस्त हो ; अथवा

[2][(ठ) किसी पशु का अंग विच्छेद करेगा या किसी पशु को (जिसके अन्तर्गत आवारा कुत्ते भी हैं) हृदय में स्ट्रीक्नीन-अन्तःक्षेपण की पद्धति का उपयोग करके या किसी अन्य अनावश्यक क्रूर ढंग से मार डालेगा ; अथवा]

[3][(ड) केवल मनोरंजन के उद्देश्य से, –

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा "किसी बंधुआ पशु का" शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा खण्ड (ठ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा खण्ड (ड) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(i) किसी पशु को ऐसी रीति से परिद्ध करेगा या कराएगा (जिसके अन्तर्गत किसी पशु का किसी व्याघ्र या अन्य पशुवन में चारे के रूप में बांधा जाना भी है) कि वह किसी अन्य पशु का शिकार बन जाए ; अथवा

(ii) किसी पशु को किसी अन्य पशु के साथ लड़ने के लिए या उसे सताने के लिए उद्दीप्त करेगा, अथवा]

(ढ) पशुओं की लड़ाई के लिए या किसी पशु को सताने के प्रयोजनार्थ, किसी स्थान को [1]**** सुव्यवस्थित करेगा, बनाए रखेगा, उसका उपयोग करेगा, या उसके प्रबन्ध के लिए कोई कार्य करेगा या किसी स्थान को इस प्रकार उपयोग में लाने देगा या तदर्थ प्रस्ताव करेगा, या ऐसे किसी प्रयोजन के लिए रखे गए या उपयोग में लाए गए किसी स्थान में किसी अन्य व्यक्ति के प्रवेश से धन प्राप्त करेगा ; अथवा

(ण) गोली चलाने या निशानेबाजी के किसी मैच या प्रतियोगिता को, जहां पशुओं को बंधुआ हालत से इसलिए छोड़ दिया जाता है कि उन पर गोली चलाई जाए या उन्हें निशाना बनाया जाए, बढ़ावा देगा या उसमें भाग लेगा,

[2][तो वह प्रथम अपराध की दशा में, जुर्माने से, जो दस रुपए से कम नहीं होगा किन्तु जो पचास रुपए तक का हो सकेगा और द्वितीय या पश्चात्‌वर्ती अपराध की दशा में, जो पिछले अपराध के किए जाने के तीन वर्ष की अवधि के भीतर किया जाता है, जुर्माने से, जो पच्चीस रुपए से कम नहीं होगा किन्तु जो एक सौ रुपए तक का हो सकेगा, या कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, अथवा दोनों से, दण्डित किया जाएगा ।]

(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए किसी स्वामी के बारे में यह तब समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है जब वह ऐसे अपराध के निवारण के लिए समुचित देखरेख और पर्यवेक्षण करने में असफल रहा हो :

परन्तु जहां स्वामी केवल इसी कारण क्रूरता होने देने के लिए दोषसिद्ध किया जाता है कि वह ऐसी देखरेख और पर्यवेक्षण करने में असफल रहा है वहां वह जुर्माने के विकल्प के बिना कारावास का दायी

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा "अपने कारबार के लिए" शब्दों का लोप किया गया ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

नहीं होगा ।

(3) इस धारा की कोई भी बात निम्नलिखित को लागू नहीं होगी –

(क) विहित रीति से ढोरों के सींग निकालना, या किसी पशु को बधिया करना या उसे दागना या उसकी नाक में रस्सी डालना ; अथवा

(ख) आवारा कुत्तों को प्राणहर कक्षों में या [1][किन्ही अन्य ढंगों से, जो विहित किए जाएं] नष्ट करना ; अथवा

(ग) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के प्राधिकार के अधीन किसी पशु का संहार करना या उसे नष्ट करना ; अथवा

(घ) कोई विषय, जो अध्याय 4 में वर्णित है ; अथवा

(ङ) मनुष्यों के भोजन के रूप में किसी पशु को नष्ट करने या नष्ट करने की तैयारी के दौरान किसी कार्य का किया जाना या कोई कार्य-लोप, यदि ऐसे नाश या ऐसी तैयारी के समय उस अनावश्यक पीड़ा या यातना न पहुंची हो ।

12. **फूका या डूम देव करने के लिए शास्ति** – यदि कोई व्यक्ति किसी गाय या अन्य दुधारू [2][पशु पर "फूका" या "डूम देव" नामक क्रिया या दुग्ध स्रवण को बढ़ाने के लिए कोई अन्य ऐसी क्रिया (जिसके अन्तर्गत किसी पदार्थ का अन्तःक्षेपण भी है) करेगा जो उस पशु के स्वास्थ्य के लिए हानिकर है] या अपने कब्जे में या नियंत्रणाधीन ऐसे किसी पशु पर ऐसी क्रिया करने देगा तो वह जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, या कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा, और जिस पशु पर ऐसी क्रिया की गई है वह सरकार को समपहृत हो जाएगा ।

13. **यातनाग्रस्त पशुओं को नष्ट करना** – (1) जहां कि किसी पशु का स्वामी धारा 11 के अधीन किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है वहां, यदि न्यायालय का समाधान हो गया है कि पशु को जीवित रखना क्रूरता होगी तो, न्यायालय के लिए यह वैध होगा कि वह यह निदेश दे कि उस पशु को नष्ट कर दिया जाए और उस प्रयोजन के लिए उसे किसी

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 11 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

उपयुक्त व्यक्ति को सौंप दिया जाए, तथा जिस व्यक्ति को वह पशु इस प्रकार सौंपा जाए वह, उसे अनावश्यक यातना दिए बिना, यथासंभवशीघ्र नष्ट कर देगा या अपनी उपस्थिति में नष्ट करवा देगा तथा न्यायालय यह आदेश दे सकेगा कि उस पशु को नष्ट करने में जो भी उचित व्यय हुआ है वह उसके स्वामी से वैसे ही वसूल कर लिया जाए मानो वह जुर्माना हो :

परन्तु यदि स्वामी उसके लिए अपनी अनुमति नहीं देता है तो इस धारा के अधीन कोई भी आदेश, उस क्षेत्र के भारसाधक पशु चिकित्सा अधिकारी के साक्ष्य के बिना, नहीं दिया जाएगा ।

(2) जब किसी मजिस्ट्रेट, पुलिस आयुक्त या जिला पुलिस अधीक्षक के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी पशु के सम्बन्ध में धारा 11 के अधीन कोई अपराध किया गया है तो वह उस पशु के तुरन्त नष्ट किए जाने का निदेश दे सकेगा यदि उसे जीवित रखना उसकी राय में क्रूरतापूर्ण हो ।

(3) कांस्टेबल की पंक्ति से ऊपर का कोई पुलिस अधिकारी या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई व्यक्ति, जो किसी पशु को इतना रुग्ण या इतने गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त या ऐसी शारीरिक स्थिति में पाता है कि उसकी राय में उसे क्रूरता के बिना हटाया नहीं जा सकता है तो वह, यदि स्वामी अनुपस्थित है या उस पशु को नष्ट करने के लिए अपनी सहमति देने से इनकार करता है तो, तुरन्त उस क्षेत्र के भारसाधक पशु चिकित्सा अधिकारी को, जिसमें वह पशु पाया गया हो, आहूत कर सकेगा और यदि पशु चिकित्सा अधिकारी यह प्रमाणित करता है कि वह पशु घातक रूप से क्षतिग्रस्त है या इतने गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त है या ऐसी शारीरिक स्थिति में है कि उसे जीवित रखना क्रूरतापूर्ण होगा तो, यथास्थिति, वह पुलिस अधिकारी या प्राधिकृत व्यक्ति, मजिस्ट्रेट के आदेश प्राप्त करने के पश्चात् उस [1][क्षतिग्रस्त पशु को ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, नष्ट कर सकेगा या नष्ट करा सकेगा ।] ।

(4) पशु को नष्ट करने के संबंध में मजिस्ट्रेट के किसी आदेश के खिलाफ कोई भी अपील नहीं होगी ।

क्रमशः

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 12 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।